यजुर्वेद-भाष्य
में
'इन्द्र' एवं 'मरुत्'

चित्तरञ्जन दयाल सिंह कौशल 'मिमवाल'

निर्मल पब्लिकेशन्स

निर्मल पब्लिकेशन्स
१/९१९१, गली न० ४ वेस्ट रोहतास नगर
शाहदरा दिल्ली ११००३२

प्रथम संस्करण १९९३

मूल्य २०० ००

मुद्रक अमर प्रिंटिंग प्रेस, कबीर नगर, दिल्ली ११००९४
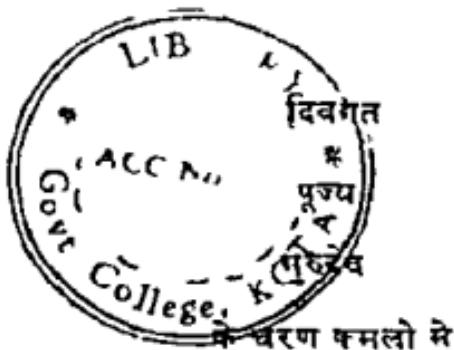
समर्पण

दिवंगत

पूज्य

गुरुदेव

के चरण कमलों में

सादर

समर्पित

'त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये ।।'

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृतियों में अपना विशेष स्थान रखती है। भारत-वर्ष में अनादिकाल से इस संस्कृति ने अनेक चरित्रवान् महापुरुषों को उत्पन्न किया है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात् इस देश में उत्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों से पृथिवी के सभी मानव अपने अपने चरित्र की शिक्षा लें।

वैदिक-मन्त्रों का ऋषियों ने सर्वप्रथम दर्शन किया। यह दर्शन सामान्य चर्म चक्षु से नहीं अपितु प्रातिभ चक्षु से किया गया था। 'ऋषिर्दर्शनात्' यह सुप्रसिद्ध वचन यही भाव स्पष्ट करता है। वास्तव में साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों की विशाल विमल शब्द राशि का ही नाम वेद है।

समय समय पर देश विदेशों के अनेक वैदिक विद्वानों ने वेदों का गाढ़ अनुशीलन किया। माधवभट्ट स्कन्दस्वामी नारायण, उद्गीथ वेंकटमाधव आनन्दतीर्थ ऋग्भाष्यकार भवस्वामी, गुहदेव क्षर भट्ट भास्कर मिश्र तैत्तिरीय संहिता के भाष्यकार, उवट और महीधर माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार, माधव, भरतस्वामी तथा गुणविष्णु सामवेद के भाष्यकार हुए। इन्होंने वेदों के अर्थों को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाया। सायण ने तो वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों व आरण्यकों पर यज्ञ परक अर्थ करते हुए पाण्डित्यपूर्ण भाष्यों की रचना की।

१८ वीं शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक अनुशीलन का कार्य प्रारम्भ किया। सर विलियम जोन्स ने बंगाल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। कोलब्रुक रुडाल्फ राथ मैक्समूलर, वेबर आफ्रेक्ट स्टीवेंसन ह्विटनी प्रो० हाग आदि ने वेदों पर उल्लेखनीय कार्य किया।

आधुनिक काल में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, शंकर पाण्डुरंग पण्डित शंकरबालकृष्ण दीक्षित विदेह महर्षि अरविन्द व स्वामी दयानन्द आदि भारतीय विद्वानों ने वेदों पर अपनी लेखनी उठाई और नवीन वेद व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

मन्त्रों के पारमार्थिक व व्यावहारिक अर्थों को प्रकट करके स्वामी दयानन्द ने वेद और वेदार्थ के सच्चे स्वरूप को संसार के सामने रखा। वेद प्रभु की पवित्र वाणी

है जो सृष्टि के आदि मे जीवों के कल्याणार्थ संसार के कर्मों की यथार्थ व्यवस्था के ज्ञानार्थ व तदनुसार आचरण करने के लिए परम-पवित्र ऋषियों द्वारा प्रदान की गई। स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य वेदापौरुषेयत्ववाद की अवधारणा के आधार पर है। इसमें लौकिक और वैदिक शब्दों के भेद का ध्यान में रखकर यास्क पाणिनि, पतञ्जलि आदि ऋषि मुनियों के आधार पर वेद के शब्दों के लिए समस्त वैदिक नियमों का अनुसरण किया गया है।

वस्तुत मध्ययुगीन और समकालीन बहुत से विद्वानों ने आर्ष प्रणाली का त्याग कर शास्त्र सम्मत सिद्धान्तों की परवाह किये बिना वेद मन्त्रों की व्याख्याएँ की। जिससे वैदिक रहस्य सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ गए। ऋग्वेदादि चारों वेदों में अग्नि, इन्द्र, मरुत मित्र, वरुण, सोम, वात विष्णु आदि देवताओं की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। इन देवताओं के स्वरूप, स्थान गुण कर्म और स्वभाव के सम्बन्ध में प्राचीन वैदिक वाङ्मय में पर्याप्त विचार किया गया है। किन्तु मध्यकाल में पौराणिक साहित्य में इन्हीं देवताओं का दूसरे रूप में चित्रण किया गया। इससे उत्पन्न पारस्परिक अर्थ विरोध को दूर करने के लिए तथा वेद के सत्यार्थ की स्थापना के लिए स्वामी दयानन्द ने वेदभाष्य का पुनीत कार्य प्रारम्भ किया।

आर्याणां मुमुक्षूणां या
    व्याख्यारीति सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था
    विधास्यन्ते तु नान्यथा॥
येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः॥
सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्॥

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के ईश्वर प्रार्थना विषय में स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य के पुनीत कार्य की पूर्णता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है। स्वामी जी ने अति उच्च भाव से वैदिक मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए वैदिक शब्दों व वैदिक देवताओं के बुद्धिगम्य व व्याकरण सम्मत मौलिक अर्थ प्रस्तुत किए।

विषय प्रवेश नामक प्रथम अध्याय में स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप विवेचन करने के पश्चात् यजुर्वेद भाष्यकार तथा स्वामी दयानन्द के बारे में प्रकाश डाला गया है।

'इन्द्र' एवं 'मरुत' शब्दों की व्युत्पत्ति निर्वचन एवम् अभिप्राय नामक द्वितीय अध्याय में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' की व्युत्पत्ति का निर्वचन करते हुए ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदादि में उनका अभिप्राय भी प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में पाश्चात्य एवं तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानों के अनुसार 'इन्द्र' एवम् 'मरुत' का स्थूल स्वरूप प्रदर्शित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं मरुत का पारमार्थिक स्वरूप तथा पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

'इन्द्र' एवं मरुत से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दु नामक षष्ठ अध्याय में श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एवम् मरुत' का अभिप्राय वृत्र वध' के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवम् व्यावहारिक संगति तथा असुर दस्यु, अनार्य अहि इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन तथा इस प्रसंग में इन्द्र शब्द के अभिप्राय की संगति प्रस्तुत की गई है।

सप्तम अध्याय उपसंहारात्मक है। परिशिष्ट में (क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण (ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण (ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची का भी समावेश किया गया है।

कृतज्ञता ज्ञापन के सन्दर्भ में प्रस्तुत के निर्देशक (दिवंगत) डा० कपिलदेव शास्त्री प्रोफेसर एवं निवर्तमान दयानन्द पीठाध्यक्ष (संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के प्रति मैं सर्वप्रथम हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनके कुशल निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ। अस्वस्थता एवं व्यस्तता होने हुए भी उन्होंने सहर्ष मेरा मार्ग दर्शन किया। डा० मानसिंह, आचार्य व अध्यक्ष संस्कृत विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र जिनकी सतत प्रेरणा मेरा निरन्तर मार्ग दर्शन करती रही, के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त उन सभी संस्थाओं विद्वानों व साथियों का भी मैं धन्यवादी हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता प्राप्त हुई।

अन्त में, निर्मल प्रकाशन का अनेकश धन्यवाद।

चितरञ्जन दयाल सिंह कौशल 'भिमवाल'

वसन्त पंचमी
१८ फरवरी, १९९१

पुरोवाक्

वेद ज्ञान भारतवर्ष की वह अनुपम सांस्कृतिक निधि है जिस को सारा विश्व ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है। वेद में अन्तर्निहित जीवन मूल्य इस देश की आम जनता के व्यवहार में ओत प्रोत हैं। धर्म उन सामाजिक सर्वहितकारी एवं व्यावहारिक आदान प्रदानों और जीवन सलीकों का नाम है जिनको देश और काल की परछाइयाँ आच्छादित नहीं करतीं। उन्हीं शाश्वत सत्यों का प्रस्तवन वैदिक-मन्त्रों के रूप में हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है। इस अमूल्य धरोहर पर उचित गर्व करने में संकोच कैसा ?

उन्नसवीं शताब्दी में जब आम भारतीय मानसिकता गुलामी की जंजीरों में जकड़ी सिसक रही थी तथा पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से चुंधियाई भारतीय दृष्टि दिग्भ्रमित हो रही थी, उसी समय पदार्पण हुआ उस निर्भीक, सत्य-समर्पित, सर्वशास्त्र-पारंगत विद्वान् एवं वाग्मी संन्यासी दयानन्द का जिसने 'वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक', घोषित किया तथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' (ऋग्० भा० भू०) का प्रणयन करके वास्तविक वेद व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया। उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर सम्पूर्ण यजुर्वेद एवं ऋग्वेद (अपूर्ण) का भाष्य भी प्रस्तुत किया। दयानन्द ने ईश्वर को सत्यस्वरूप माना है, ईश्वर के ज्ञान को सत्यविद्या कहा है और सत्य अर्थ के प्रकाश को ही वेद भाष्य रचना का प्रयोजन बतलाया है। अपने अमर-ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका तथा अनुभूमिकाओं में सभी मत मतान्तरों के विद्वानों से आग्रह किया है कि वे सब पक्षपात छोड़कर समाज के लिए अनुकरणीय एवं मानवीय सिद्धान्तों का सत्यासत्य के आधार पर निर्णय करें ताकि सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो सके। ऐसा निर्भ्रान्त निःस्वार्थी और सर्वत्यागी महामानव स्वयं विष पीकर संसार को वेद का यथार्थ ज्ञान रूपी अमृत पिला गया तथा मानव समाज के उपकार के लिए सर्वस्व आहूत कर गया और प्रस्तुत कर गया एक जीवन-दर्शन जिससे सारी मानवता का कल्याण हो सकता है।

ऋषि दयानन्द ने वेदों को अनादि और नित्य माना है। उनका मन्तव्य है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति अर्थात् आविर्भाव हुआ है। प्रलयकाल में भी वेद ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान रहते हैं और प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर पहले सर्गों के समान ही वेदों की रचना कर देता है। फलतः वर्तमान सृष्टि के आधार पर वेदों की उत्पत्ति कह दी जाती है और सृष्टि प्रलय के प्रवाह की दृष्टि से वेदों को नित्य माना जाता है। वेद नित्यता के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द की सबसे बड़ी

सुविन है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान या विद्या है और ईश्वर के ज्ञानादि गुणो के नित्य होने के कारण वेद की नित्यता म सदेह का अवकाश नही है।

ऋषि का मानना है कि वेदो मे सभी सत्य विद्याएँ मूलरूप मे विद्यमान हैं। वेदो का प्रतिपाद्य विषय केवल याज्ञिक कमकाण्ड ही नहीं है अपितु व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन क सभी सद्व्यवहारो का निरूपण वैदिक कर्मकाण्डो के माध्यम से हुआ है। मनुष्य के व्यक्तिगत अभ्युदय सम्बन्धी नतिक एव सामाजिक क्तव्या का निर्देश इनमें स्पष्ट रूप से पाया जाता है। इस प्रकार वेद किसी विशेष पूजा-पद्धति एव मान्यता का निरूपित करने वाला रूढ़िवादी ग्रन्थ नही है अपितु एक आदर्श जीवन-पद्धति को प्रस्तुत करने वाला सविधान है जिसके अनुसार आचरण करके सम्पूर्ण मानवता अपना कल्याण कर सकती है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्पराओ म चार्वाक बौद्ध और जैन ऐसी परम्पराएँ हैं जो वेदो की प्रामाणिकता को नकारती हैं। इस सम्बन्ध म ऋषि दयानन्द का स्पष्टीकरण है कि जिन बुराइयो की प्रतिक्रिया के रूप मे इन मतो का प्रादुर्भाव हुआ था, व बुराइया वेद के आधार पर नही अपितु वेद के भाष्यकारो क आधार पर प्रस्तुत की गई हैं। अत दोष वेद का न मानकर अप्रामाणिक भाष्यकारो का माना जाना चाहिए। ऋषि का यह भी कहना है कि वेद का अप्रामाणिक मानने वाले इन सभी मतावलम्बियो का वेद का अनुशीलन करके सत्यासत्य का निर्णय करना चाहिए था केवल भाष्यो के आधार पर बुराई करना बुद्धिमत्ता नहीं। इसी प्रकार चार्वाको बौद्धो और जैनियों ने वेदो म जो अश्लीलता असभव विधान, पशु बलि तथा जीविकाजन क लिए किये गये अनक पाखण्ड और मिथ्या विश्वास आदि दोष दिखलाये हैं उनको स्वामी जी ने वेद प्रतिपादित नही माना है।

स्वामी दयानन्द ने मात्र चार मूल सहिताओ—ऋग्वेद (शाकल), यजुर्वेद (वाजसनेयि), सामवेद (कौथुमी) और अथववेद (शौनकीय) को ही वेद माना है। शाखाओ और ब्राह्मण ग्रन्थो को वेद नहीं माना है। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास म वे लिखते हैं—"ब्राह्मण-पुस्तको में बहुत से ऋषि, महर्षि और राजादि क इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसक जन्म के पश्चात होता है। वेदो म किसी का इतिहास नही किन्तु विशेष जिस जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी मनुष्य की सज्ञा व विशेष कथा का प्रसग वेदों मे नहीं है।'

ऋषि दयानन्द ने वेद को ईश्वरोक्त होने के कारण स्वत प्रमाण माना है। वे लिखते हैं— "वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सवज्ञ सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिवाला है। इस कारण से उनका कथन भी निर्भ्रम और स्वत प्रमाण क योग्य है। जैसे सूय और दीपक अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होकर सब क्रिया वाले द्रव्यों को

प्रकाशित कर देते हैं, वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित होके अन्य ग्रन्थों का भी प्रकाश करते हैं।" (ऋग०भा०भू०,ग्रन्थप्रा०)

वेदों की रचना का प्रयोजन बतलाते हुए स्वामी जी ने लिखा है—"जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है। जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्याविज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।" (सत्यार्थ० सप्तम समु०)

ऋषि दयानन्द ने वेद व्याख्या करने के लिए व्यक्ति विशेष की योग्यता का निर्धारण किया है। मनु का प्रमाण उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि अर्थ और काम में न फँसता हुआ विद्वान् ही वेदवेत्ता हो सकता है। साक्षात्कृतधर्मा विद्वान ही वेदार्थ का यथार्थ रूप में समझकर अन्यों को समझा सकता है। वेदार्थ ज्ञान के लिए इस मानसिक संयम के अतिरिक्त जिन-जिन ग्रन्थों को हृदयंगम करना आवश्यक है उनका वर्णन करते हुए लिखते हैं—'मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिए अध्ययोजना सहित व्याकरण अष्टाध्यायी, धातुपाठ उणादिसूत्र गणपाठ और महाभाष्य, शिक्षा, कल्प निघण्टु निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अंग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपांग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक ठीक जाना जाता है तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़के अथवा जिन्होंने इन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़के जो सत्य सत्य वेदव्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत जान लेवें (ऋग०भा०भू० पठन पाठन)। यहाँ महर्षि ने वेदांग, उपांग और चार ब्राह्मण अर्थात १६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वेद व्याख्याता को प्रथमतः इन ग्रन्थों को हृदयंगम करना आवश्यक है। अपने वेद भाष्य के प्रणयन का उद्देश्य और उपयोगिता बतलाते हुए उन्होंने लिखा है—'यह भाष्य प्राचीन आचार्यों के भाष्य के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण उव्वट, सायण और महीधरादि के भाष्य बनाए हैं वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी और जो यह मेरा भाष्य बनता है वह वेदांग, ऐतरेय, शतपथ—ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार है क्योंकि वेदों के जो सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है यही इसमें अपूर्वता है। और दूसरा इसके अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो-जो भाष्य उव्वट, सायण, महीधरादि के बनाए हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेदव्याख्यानों से विरुद्ध हैं, तथा जो जो इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी, जर्मनी, दक्षिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेद व्याख्यान बने हैं वे भी अशुद्ध हैं।" (ऋग०भा०भू०,भा० समा०)

जिस समय में वेदों का सत्य सत्य अर्थ न जानने के कारण पाश्चात्य विद्वान् इनको गड़रियों के गीत घोषित कर रहे थे और वेदों का पठन पाठन समाप्त हो जाने के कारण वेदों के नाम से मिथ्यावादी छली प्रपंची और कपटी लोगों ने अपने माया-जाल में लोगों को फँसाने के लिए मनमाने मन्त्र और मिथ्याचार फैला रखे थे। ऐसे घोर अन्धकारपूर्ण समय में ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या तथा परमेश्वर की अनन्य आराधना वेदों के प्रति असीम आस्था तथा गुरु विरजानन्द की आर्ष शिक्षाओं के प्रबल सामर्थ्य से वेदों के सत्यार्थ को जाना तथा वेद ज्योति की प्रज्ज्वलित मशाल हाथ में लेकर मिथ्याडम्बरों एवं अन्ध विश्वासों को भस्मसात् किया।

महर्षि के वेद भाष्य की अनुपम शैली है। उन्होंने सर्वप्रथम अपनी दिव्यदृष्टि से सभी मन्त्रों के प्रारम्भ में तत्तद् मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का 'मन्त्र भूमिका' के नाम से उल्लेख किया है। पढ़ने वालों को सरलता से सर्वप्रथम यह बोध हो जाता है कि उस-उस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय क्या है जिससे मन्त्रार्थ अत्यन्त सरलता से समझ में आ जाता है। ऋषि ने मन्त्रों का भाष्य उससे सम्बद्ध देवता के अनुरूप किया है। मन्त्र में विद्यमान विशेषणों के आधार पर मन्त्र के देवतार्थ को सुस्पष्ट व्याख्यात किया है। इन्होंने मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय अर्थात् देवता को मन्त्रार्थभूमिका पदार्थ, अन्वय तथा भावार्थ आदि में कहीं भी ओझल नहीं होने दिया है। भाष्य के लिए वेदार्थ की शैली प्रतिपादित करते हुए महर्षि ने वेद व्याख्या के दो महत्त्वपूर्ण पक्षों को प्रस्तुत किया है वे कहते हैं— 'इस वेद भाष्य में जिस जिस मन्त्र का पारमार्थिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का अर्थ होना सम्भव है। उसका दोनों प्रकार का अर्थ किया जायगा। परन्तु किसी भी मन्त्र में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं।' ऋषि ने इन दोनों प्रकार के अर्थों का भी सर्वत्र स्वीकार नहीं किया है। जहां जहां सम्भव है वहीं-वहीं दोनों प्रकार का अर्थ हो सकता है सर्वत्र नहीं। उन्होंने भाष्य में कहीं कहीं श्लेषालङ्कार से द्विविध अर्थ प्रस्तुत भी किये हैं। पारमार्थिक पक्ष में, एकदेववाद की महत्त्वपूर्ण परम्परा के प्रतिपादन की दृष्टि से परम तत्त्व से सम्बद्ध वेदार्थ का प्रस्तुत किया है। प्राचीन व्याख्याकारों के आध्यात्मिक पक्ष को ही ऋषि ने पारमार्थिक नाम दिया। दूसरे पक्ष यानी व्यावहारिक पक्ष में ऋषि ने व्यक्ति समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व की सुव्यवस्था समृद्धि तथा शांति की दृष्टि में मंगलमयी भावनाओं को प्रकाशित करने वाले अर्थ प्रस्तुत किये हैं। स्थान स्थान पर सायणादि भाष्यकारों की व्याकरण छन्द तथा प्रकरण आदि के विरुद्ध प्राप्त होने वाले दोषों का उल्लेख भी किया है।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक शब्दों का अर्थ यौगिक प्रक्रिया के आधार पर किया है। उनकी यौगिक प्रक्रिया ब्राह्मण ग्रन्थ निरुक्त व्याकरण आदि के आधार पर प्रतिष्ठित होकर भी अपना एक विशेष स्थान रखती है। अपने नवीन एवं अद्भुत विचारों की स्थापना ऋषि दयानन्द ने इसी यौगिक प्रक्रिया की सहायता से की है।

ऋग०भा०भू० (सृष्टिविद्या) मे उ होने "अवध्नन पुरुष पशुम्" का अथ किया है—"पशु सर्वद्रष्टार सर्वे पूजनीय देवा विद्वास (अवध्नन) ध्यानन बध्नन्ति"—अर्थात पशु सबको देखने वाले सबके पूजनीय परमेश्वर को विद्वान् लोग ध्यान मे बाधते हैं। इस प्रकार के क्रान्तदर्शी नवीन अथ स एक ओर तो यज्ञ मे पशुबलि के समथक उव्वट आदि के वेद का अपमान करने वाले अथ निराकृत हा जाते हैं दूसरी ओर वैदिक यज्ञो मे पशुहिंसा का विरोध करने वाले दयानन्द के विचारो की स्थापना भी हा जाती है। यौगिक पद्धति के आधार पर जमदग्नि और कश्यप आदि पदो के अथ चक्षु और प्राण आदि किये हैं। इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों म जो ऐतिहासिक नाम जैसे प्रतीत हाते हैं उनके अथ यौगिक व्याख्या के अनुसार ही किय हैं। वदिक कोप निघण्टु मे विष्णु का अथ सूय तथा समुद्र का अथ अन्तरिक्ष किया है। इसी आधार पर आकाश म सूय के सामान्य विचरण का कथन हो जाता है। किन्तु सायणादि भाष्यकारो ने लौकिक अर्थों के आधार पर पौराणिक कथाओ की कल्पना कर ली कि विष्णु समुद्र मे शयन करता है। इसी प्रकार देवराज इन्द्र और अहल्या की कथा गढी हुई है कि इन्द्र न गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के साथ जारकम किया। परन्तु निरुक्त मे स्पष्ट रूप से इन्द्र का अथ सूय गौतम का चन्द्र और अहल्या का रात्रि किया है। रात्रि और चन्द्र का स्त्री पुरुष क समान रूपकालकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियो को आनन्द कराता है और उस रात्रि का जार गदि य है अर्थात् सूय के उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाता है। इस प्रकार वेदा म प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। सामान्य व्यक्ति की सामान्य बुद्धि इन प्रतीको का समभन म पूणतया सक्षम नहीं हा पाती है। ऋषि दयानन्द ने अपन भाष्य म इन सभी रहस्या का उदघाटन किया है।

आधुनिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान के विकास के साथ वैदिक भाषा का अन्याय इरानी और यूरोपीय भाषाओ के साथ पुरातन सम्बन्ध उदघाटित हुआ है। उसक आधार पर वेदो की व्याख्या प्रस्तुत करने की बात की जाती है। अनक पाश्चात्य विद्वानो ने इस प्रकार के प्रयत्न किय भी हैं। परन्तु तुलनात्मक भाषा विज्ञान शब्दा के बाह्य स्वरूप की समानता के विश्लेषण तथा शब्दो के प्रसिद्ध अथ के तुलनात्मक अध्ययन तक ही सीमित रहता है। शब्दा के निगूढ तथा प्रतीकात्मक अर्थों पर इसविद्या का प्रभाव नगण्य है। इन आधुनिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा तुलनात्मक देवशास्त्र की नई खोजो के वाकवितात्मक तर्कों से सज्जित पाश्चात्य विचारक व उनके अनुयायी भारतीय विद्वान अद्यावधि वेद क बाह्य शरीर की ही चीर फाड करत रहे हैं। परन्तु वेद की आत्मा का यदि किसी न स्पश करने का प्रयास किया है तो वे हैं ऋषि दयानन्द। ऋषि की ऋग्०भा०भू० मे इन रहस्यो का तथ्यात्मक प्रमाणो के अनुसार विवेचन मिलता है जिज्ञासुओ को इसका लाभ उठाना चाहिए।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द की वद व्याख्या पद्धति एव सत्यानुकूल वेद व्याख्या क लिए ऋषि द्वारा निर्धारित सिद्धान्ता और मानदण्डो का यहाँ सकेत मात्र किया

गया है। परन्तु ये संकेत महर्षि दयानन्द के भाष्य को पढ़ने और समझने के लिए आवश्यक है। योगी अरविन्द ने दयानन्द के इन सिद्धान्तों का समर्थन किया है तथा व्यावहारिक रूप में इनका प्रयोग भी किया है।

वर्तमान ग्रन्थ यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र एवं 'मरुत्' में विद्वान प्राध्यापक डॉ० चित्तरञ्जन दयानसिंह कौशल विश्वविद्यालय महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र ने अत्यन्त परिश्रम-पूर्वक स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य का मन्थन किया है। यजुर्वेद के अन्य उपलब्ध भाष्यकारों की दृष्टि और शैली को तर्क की कसौटी पर कसकर स्वामी जी के भाष्य के साथ तोला है। एक निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रह से मुक्त दृष्टिकोण से मण्डन डा० कौशल ने ऋषि दयानन्द के भाष्य के साथ न्याय करने का पूरा प्रयत्न किया है। इन्द्र' "मरुत" शब्दों का शाब्दिक विवेचन करने के पश्चात पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों के एतद् विषयक अद्यावधि शोधों को सार रूप में प्रस्तुत करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की है। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद में 'इन्द्र' व "मरुत" सम्बन्धी मन्त्रों की जो पारमार्थिक व व्यावहारिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, उनको पृथक् पृथक् अध्यायों में अनुस्यूत करके स्वामी जी के अनुसार इन्द्र' और मरुत' के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन किया है। पारमार्थिक दृष्टि से इन्द्र परमात्मा व जीवात्मा है। व्यावहारिक दृष्टि से योगी, राजा, सम्राट् सेनापति सभापति, विद्वान, अध्यापक, उपदेशक शूरवीर ऐश्वर्यशाली पुरुष सूर्य विद्युत वा वायु आदि है। मरुतों का स्वरूप अध्यात्म में प्राण अधिदैवत में वायु तथा अधिभूत में मानवों में वीर है। व्यावहारिक दृष्टि में मरुत के विद्वान अतिथि ऋत्विक्, गृहस्थ वायु, मनुष्य, सेनापति, राजा प्रजा आदि अर्थ किये गये हैं। इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द के भाष्य सिद्धान्तों का अन्वय किया गया है। मैं विद्वान लेखक के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। आशा है यह ग्रन्थ वेदाध्ययन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रिय सुहृद चित्तरञ्जन कौशल को पुष्ट संस्कार विरासत में मिले हैं। संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित यह नवयुवक संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार में विशेष योगदान प्रस्तुत करेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

होलिकोत्सव
फाल्गुन पूर्णिमा
वि० २०४६

डा० रणवीर सिंह
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र-१३२११९

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे 'इन्द्र एवं मरुत' देव के स्वरूप के विषय में विचार करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि स्वामी दयानन्द ने अपने वेद भाष्य के आधार रूप में जिन मान्यताओं और सिद्धान्तो को अपनाया, उनका विवेचन किया जाए। वेद और वेदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध मे प्राचीन एवं परम्परागत मान्यताओ और सिद्धान्तो का समीक्षण एवं परीक्षण अनिवार्य सा हो जाता है। *प्रस्तुत पुस्तक के विषय प्रवेश नामक प्रथम अध्याय मे इसी दृष्टि से स्वामी जी* की दृष्टि मे वेद और वेदार्थ का स्वरूप, यजुर्वेद के भाष्यकार तथा प्रसगानुसार वैदिक संहिताओ के मन्त्रो के ऋषि व देवता आदि पर भी विचार किया गया है।

(क) स्वामी दयानन्द की दृष्टि मे वेद और वेदार्थ का स्वरूप

नवभारत के पुनर्जागरण व पुनरुत्थान मे स्वामी दयानन्द का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी जी ने पाश्चात्य जगत व विदेशी सभ्यता के चाकचिक्य से अभिभूत भारतीय दृष्टि को आत्म निरीक्षण की प्रेरणा दी। उन्होने भारतीय जनता के निराश हृदयो मे आत्मसम्मान व आत्मगौरव का भाव उत्पन्न किया। स्वामी जी ने वेद को सब सत्यविद्याओ की पुस्तक सिद्ध किया। वेद सब सत्यविद्याओ का पुस्तक है यह सिद्धान्त स्थापित किया व 'लौटो वेदो की ओर' का उद्घोष किया। स्वामी जी की दृष्टि से वेद केवल कर्मकाण्ड के ग्रन्थ नही हैं अपितु वेदो मे जीवन निर्माण की सभी शिक्षायें विद्यमान हैं। वैदिक मन्त्रो का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म या परमात्मा है। वेद समस्त आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज्ञान का भण्डार है। स्वामी दयानन्द ने वेद को आधार बनाकर प्राचीनतम परम्परा तथा बौद्धिकता का समन्वय करते हुए अपने मार्ग को प्रशस्त करने के लिए वेदो के भाष्य किए और एक विपुल वाङ्मय का निर्माण किया।[1] ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थो मे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का महत्त्व सबसे अधिक है। इस ग्रन्थ मे वेद के उन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो और वेदार्थ की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है, जिस पर स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य आधृत है।[2] स्वामी जी की दृष्टि मे मूल वेद के स्वरूप पर विचार करते

---

१ द्र०—दयानन्द दर्शन एक अध्ययन, प्राक्० पृ० १

२ द्र०—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० १

हुए वेद शब्द का व्याकरणिक विवेचन, व्युत्पत्ति, अभिप्राय, मूल वेद की संख्या, वैदिक ऋषि व देवता आदि विषयों का विश्लेषण भी अनिवार्य हो जाता है।

'वेद' शब्द का व्याकरणिक विवेचन

वेद', शब्द 'विद धातु से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय द्वारा तथा भाव में 'अच' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है।[1] 'घञ' से निष्पन्न वेद अन्तोदात्त है तथा 'अच प्रत्यय द्वारा प्रत्यय निष्पन्न 'वेद' शब्द आद्युदात्त है।[2] करण कारक में 'घञ प्रत्यय द्वारा निष्पन्न अन्तोदात्त 'वेद' शब्द का पाणिनि मुनि द्वारा अपने गणपाठ के ऊञ्छादिगण में पाठ किया गया है।[3] इसकी व्युत्पत्ति है—'वेत्ति येन स वेद ' अर्थात 'जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाए वह ग्रन्थ विशेष'। भाव अर्थ में 'अच प्रत्यय द्वारा निष्पन्न आद्युदात्त वेद' शब्द का वृषादिगण में पाठ किया गया है। इसकी व्युत्पत्ति है—'वेदन वेद ' अर्थात 'ज्ञान की प्रक्रिया' जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाए।[4] अन्तोदात्त 'वेद शब्द वेदरूप ग्रन्थ विशेष का वाचक है तथा आद्युदात्त 'वेद' शब्द ज्ञान की प्रक्रिया का वाचक है।

अन्तोदात्त 'वेद शब्द का ऋग्वेद और सामवेद में प्रयोग नहीं मिलता है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में उसका प्रयोग किया गया है।

> वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो
> वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः ।[5]

महीधर के अनुसार 'वेद' पद का अर्थ 'ऋग आदि रूपवेद वा' जानने वाला है।[6] स्वामी दयानन्द के मत में 'चराचर को जानने वाला जगदीश्वर' या 'जिसमें लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं वह ऋग्वेदादि' यह वेद शब्द का अर्थ है।[7] श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

---

१ द्र०—ऋषि दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन, पृ० २

२ द्र०—वही

३ पाणिनीय गणपाठ, ६ १ १६० वेदवेगवेष्टबन्धा करणे

४ वही ६ १ २०३

५ यजुर्वेद, २ २१

६ यजुर्वेदभाष्य (महीधर) २ २१
त्वं वेदोसि ऋगाद्यात्मकोऽसि यद वा वेत्ति, इति वेद ज्ञाताऽसि।

७ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २ २१
(वेद) वेत्ति चराचर जगत स जगदीश्वर,
विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा।

कृत यजुर्वेद-भाष्य विवरण मे व्याकरण प्रक्रिया मे वेद शब्द को चित्वात अर्थात चित होन से अन्तोदात्त माना है।[1]

'वद स्वस्तिदु घण स्वस्ति ' इस स्थल पर अन्तोदात्त 'वेद ' 'शब्द का अर्थ सायण के अनुसार 'दममुष्टि ' किया गया है।[2] 'ब्रह्म प्रजापतिधाता लोका वेदा सप्त ऋषयोऽग्नय'' इस स्थल मे अन्तोदात्त' वेदा ' शब्द का अथ सायण ने 'चार वेद' किया है।[3] 'पुराण' वेद विद्वासमभितो वदन्ति' स्थल मे आद्युदात्त 'वेद' शब्द प्रयुक्त है।[4] इसी प्रकार अथर्ववेद में 'वेदमाता' व वेदम्' और आद्युदात्त 'वेदा ' शब्द भी वेद के अथ म प्रयुक्त मिलते हैं।[5] भट्टभास्कर 'वेद' शब्द को 'लभ्यते अनेन इति करणे घञ' कहकर उञ्छादिगण के द्वारा उसे अन्तोदात्त सिद्ध करते हैं।

देवो के द्वारा वेद से ज्ञेय को जानन की बात कही गई है।[6] जिससे धर्म का ज्ञान होकर वह वेद है।[7] यह ज्ञान किसी अन्य प्रमाण से प्राप्त नही किया जा सकता। प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से मानव कल्याण का जो उपाय नही जाना जा सकता उसे वेद स जान लिया जाता है।[8]

---

१ यजुर्वेद-भाष्य विवरण, प० २०६
(वेद) विद्धातो पचाद्यच् प्रत्यय प्रथमार्थ (अ०३ १ १३४)
चित्त्वादन्तोदात्त । द्वितीयार्थे हलश्च (अ० ३ ३ १२१), इति करणे घन प्रत्यय ।
उञ्छादीना च (अ०६ १ १६०) इत्यन्तोदात्त ॥

२ अथववेद, ८ २६ १

३ अथववेद भाष्य, ७ २६ १ वेदो नामदममुष्टि ।

४ अथववद, १६ ६ १२

५ अथववेद भाष्य, १६ ६ १२, साङ्गाश्चत्वारो वेदा ।

६ अथववेद, १० ८१७

७ (क) वही, १६ ७१ १, स्तुता मया वरदा वेदमाता ।
(ख) वही, १६ ६८ १, अव्यसश्च व्यचसश्च बिल विष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥
(ग) वही १६ ७२ १, यस्मात कोशादुदभराम वेदम ।
(घ) वही, ४ ३५ ६, यस्मिन वेदा निहिता विश्वरूपा ।

८ तत्तिरीय सहिता, १ ४ २०, वेदेन वै देवा—वेद्यमविन्दन्त ।

९ (क) अमरकोश' १ ५ ३, क्षीरस्वामी विदन्त्ययेन धमवेद ।
सर्वानन्द विदन्ति धर्मादिकमनेनेतिवेद ॥
(ख) मनुस्मति, २६

१० अथववद, १६ ७२ १ सायण भाष्य
प्रत्यक्षेणानुमित्या वायस्तूपायो न बुध्यते ।
एन विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदना ॥

ऋषि, आम्नाय, श्रुति आदि शब्द वेद के पर्याय हैं। वेद अतीन्द्रिय अर्थ का द्रष्टा होने के कारण 'ऋषि' कहा जाता है।[1] वेद बार बार अभ्यास, प्रवचन, पठन-पाठन आदि किये जाने के कारण आम्नाय' कहा जाता है।[2] वेद को श्रवण परम्परा से प्राप्त होने के कारण, उपदेश या अध्ययन-अध्यापन किये जाने के कारण 'श्रुति' कहा जाता है।[3]

स्वामी जी ने ज्ञान सत्ता, लाभ व विचार अर्थ वाली चतुर्विध 'विद' धातुओं से करण और अधिकरण कारक मे वेद' शब्द को निष्पन्न माना है। 'विद ज्ञाने'[4] विदसत्तायाम्[5], विदलृ लाभे[6], विद विचारणे[7], एतम्यो हलश्च[8] इति सूत्रेण करणाधिकरणकारकयोघञ प्रत्यये कृते वेदशब्द साध्यते।[9] 'श्रु श्रवणे'[10] धातु से करण कारक में क्तिन प्रत्यय द्वारा श्रुति' शब्द सिद्ध होता है। जिनके पढने से यथार्थ विद्या का ज्ञान होता है जिनको पढकर विद्वान बनते है, जिससे सब सुखो का लाभ व प्राप्ति होती है और जिनमे ठीक ठीक सत्यासत्य का विचार होता है उन ऋग्वेदादि को वेद कहते है। सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त और ब्रह्मादि से लेकर अब तक जिससे सब सत्य विद्याओ को सुनते आते है, इससे वेदो को श्रुति' भी कहते हैं।[11]

वेदो की अपौरुषेयता

भारतीय संस्कृति मे आस्था एव श्रद्धा रखने वाले विद्वान् तथा वदिक परम्परा के ज्ञाता पुरातन काल से यही मत स्वीकार करते आये है कि वदिक मन्त्र मानव द्वारा

---

१ अष्टाध्यायी ३ २ १८६, कर्तरि चर्षिदेवतयो, ऋषिवेद
(पदमजरी व सिद्धान्तकौमुदी)

२ (क) मीमासासूत्रपाठ १ २ १, आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद
(ख) दशकुमारचरित १२०, अधीतीचतुर्ष्वाम्नायेषु
(ग) उत्तररामचरित ४ आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतार

३ वाक्यपदीय, १ १२०—शब्दस्य परिणामो य नित्याम्नायविदो विदु ।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद विश्व व्यवतत ॥

४ धातुपाठ २ ५७

५ वही ४ ६०

६ वही, ६ १४१

७ वही ७ १३

८ अष्टा०, ३ ३ १२१

९ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० २३

१० धातुपाठ १ ६७८

११ विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वासश्च भवन्ति ते वेदा । तथादि सृष्टिम आरम्य अद्यपर्यन्त ब्रह्मादिभि सर्वा सत्यविद्या श्रूयन्ते अनया सा 'श्रुति'
—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० २३ २४

स्वच्छित शब्दावली मे नही रचे गए, अपितु यह वेदरूप ज्ञान अनादि और अनन्त है।[1] प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ म परमात्मा के नि श्वास भूतमन्त्र महर्षियो की दिव्य मनीषा मे स्वत स्फूर्त होते है तथा उनके माध्यम से अभिव्यक्त होते है।[2] यह परमदेव का शाश्वत ज्ञान रूप एक ऐसा दिव्य काव्य है जो न कभी नष्ट होता है, न कभी पुराना ही होता है।[3] उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, पूर्णब्रह्म परमेश्वर म ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए। परमेश्वर ने ही वेदो का प्रकाश किया।[4]

'तस्मै नूनमभिद्यव वाचा विरूप नित्यया वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्'।[5] इस मन्त्र मे वेदवाणी को नित्य कहा गया है। इसका भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है कि हे महर्षि! उत्पत्ति रहित मन्त्ररूप वेद वाणी के द्वारा स्तुति किया कर।[6] यास्क मुनि न पुरुष की विद्या अनित्य होने से वेद को ही सम्पूर्ण कर्मों का बोधक माना है।[7] वेद वाणी नित्य है तथा उसकी आनुपूर्वी भी नित्य होती है उसम किसी प्रकार का न्यूनाधिक्य सम्भव नही।[8] पाणिनि तथा पातञ्जलि मुनि भी वेद को नित्य मानते हैं। 'तेन प्रोक्तम्',[9] सूत्र का भाष्य करते हुए पातञ्जलि न कठ कालाप पैप्पलादादि शाखा ग्रन्थो की आनुपूर्वी को अनित्य माना है किन्तु वेद की आनुपूर्वी को नित्य स्वीकार किया है।[10]

---

१ वाक्यपदीय, १ १४ ५, अनादिमव्यवच्छिन्ना श्रुतिमाहुरकर्तृकाम।

२ शतपथ १४ ५ ४ १०, एव वा अरस्य महतो भूतस्य नि श्वसितम् एतद् यद्।
ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस।

३ ऋ० १० ५५ ५, देवस्य पश्य काव्य महित्वा द्या ममार स ह्य समान।
अथर्ववेद, १० ८ ३२, देवस्य पश्य काव्य न ममार न जीर्यते।

४ ३१ ७, तस्माद् यज्ञात् सर्व हुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

५ ऋग्वेद ८ ७५ ६,

६ ऋग्वेद भाष्य (सायण), ८ ७५ ६।
नित्यया उत्पत्तिरहितया वाचा मन्त्ररूपया सुष्टुर्ति नूनमिदानीं चोदस्व स्तुहि

७ निरुक्त, १ २, पुरुषविद्या नित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रोवेदे।

८ निरुक्त १, १६, नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति।

९ अष्टाध्यायी, ४ ३ १०१

१० महाभाष्य, ४ ३ १०१, या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या। तद्भेदाच्चैतद् भवति काठक कालापक मौदक पैप्पलादकमिति।
महाभाष्य, ५ २ ५९, स्वरोनियतआम्नाये स्ववामन्द स्यावर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाय नियता स्यवामशब्दस्य॥

मनु महाराज के अनुसार वेद ज्ञानी, विद्वान और मनुष्यों का सनातन चक्षु है, इसको कोई व्यक्ति बना नहीं सकता।[1] चारो वर्ण, तीनो लोक, चारो आश्रम तथा भूत, वर्तमान और भविष्य की सब व्यवस्थाएं, वेद से ही ससार में प्रचलित होती हैं।[2] सर्वकाल से वर्तमान सनातन वेदशास्त्र द्वारा सम्पूर्ण जीवो का धारण का पोषण होता है। प्राणि मात्र के लिए वेद को मैं (मनु) परम साधन मानता हूँ।[3] सेनापत्य, राज्य तथा दण्डादि की सब व्यवस्था और सब लोकों पर आधिपत्य (=राज्य) करने के लिए वेद शास्त्र का ज्ञाता सबसे मुख्य अधिकारी होना है।[4] वेद से भिन्न (=विपरीत) अनेक ग्रन्थ बनते रहते हैं और नष्ट होते रहते हैं। व मत प्राचीन परम्परा के अनुसार न होने से निष्फल और असत्यपूर्ण होते हैं।[5] वेद में सब धर्मों (=नियमो) का प्रतिपादन किया गया है, क्योंकि वेद सर्वज्ञान का स्रोत है।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स[6]।

ऋग् यजु व साम अग्नि वायु व रवि (=सूर्य) ऋषियो के द्वारा प्रकाशित हुए।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु सामलक्षणम ॥[7]

इस श्लोक की टीका करते हुए कुल्लूकभट्ट लिखते हैं— 'वेदापौरुषेयत्वपक्ष एव मनोरभिमत। पूर्वकल्पे य वेदास्त एव परमात्ममूर्त्तेब्रह्मण सर्वज्ञस्य स्मृत्यारूढा। तानेव कल्पादौ अग्निवायुरविभ्य आचकर्ष —।[8]

अर्थात मनु ने वेदो को अपौरुषेय ही माना है। जो वेद पूर्वकल्प में विद्यमान थे वही वेद वर्तमान में विद्यमान हैं।

---

१ मनुस्मृति १२ ९४, पितृदेवमनुष्याणा वेदश्चक्षु सनातनम।
अशक्य चाप्रमेय च वेदशास्त्रमिति स्थिति ।

२ वही १२ ९७, चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक्।
भूत भवत भविष्य च सर्व वेदात प्रसिध्यति ॥

३ वही, १२ ९९

४ वही, १२ १०० सेनापत्य च राज्य च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्य च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

५ वही १२ ९६ उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित।
तान्यर्वाक् कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥

६ वही, २ ७

७ वही १ २३

८ यजुर्वेद भाष्य विवरण भूमिका, पृ० २२

सृष्टि के प्रारम्भ मे स्वयम्भू परमात्मा के द्वारा ऐसी वेदरूपा वाणी का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका आदि अन्त नही, जो नित्य है, जिसका कभी विनाश सम्भव नहीं जो दिव्य है, जिससे ससार मे सब प्रवृत्तिया चलती हैं।[1]

वेद ईश्वरोक्त है, उनमे सत्यविद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर नित्य है अत उसका वचन भी नित्य होने से प्रमाण है।

'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'।[2] अर्थात ईश्वर का वचन होने से वेद की प्रामाणिकता सिद्ध है।

आप्तो द्वारा सदा स प्रामाण्य स्वीकार करते आने के कारण वेद का प्रामाण्य मानना चाहिए, जिस प्रकार मन्त्र (=विचार) और आयुर्वेद का प्रमाणत्व स्वीकार करना पडता है।[3] वेद किसी पुरुष के बनाये हुए नही क्योकि उनका बनाने वाला आज तक दृष्टिगोचर नही हुआ। वेद की उत्पत्ति प्रवाह से अनादि है।[4]

ईश्वर की स्वाभाविक शक्ति द्वारा प्रकाशित होने के कारण वेद स्वत प्रमाण है।[5] पतञ्जलि मुनि क्लेश, कर्म विपाक व आशय से रहित पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं।[6] व्यासकृत योगभाष्य मे कहा गया है कि उत्कर्ष का निमित्त शास्त्र है। शास्त्र का निमित्त क्या है? प्रकृष्ट सत्व (=सर्वोत्कृष्ट ज्ञान) शास्त्र का निमित्त है। ईश्वर के ज्ञान मे वर्तमान इस शास्त्र और सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का सम्बन्ध अनादि है। इस कारण से वह सदा ऐश्वर्य वाला तथा सदैव मुक्त कहा जाता है।[7] ऋग्वेदादि-शास्त्र का कारण होनेसे ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है।

---

१ महाभारत (शान्ति पर्व,) अध्याय २३२ २४

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी, दिव्या यत सर्वा प्रवृत्तय ॥

२ वैशेषिक दर्शन, १ १ ३

३ न्यायशास्त्र, २ १ ६७ मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च।
तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।

४ सांख्यशास्त्र, ५ ४ ६, न पौरुषेयत्व तत्कर्तु पुरुषस्याभावात।

५ वही, ५ ५, निजशक्त्यभिव्यक्ते स्वत प्रामाण्यम।

६ योगशास्त्र, १ २४
क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर।

७ योग भाष्य, १ २४, पृ० २८, २९
तस्य शास्त्र निमित्तम्। शास्त्र पुन किन्निमित्तम्? प्रकृष्टसत्वनिमित्तम् एतयो शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्वे वर्तमानयोरनादि सम्बन्ध। एतस्मादेतद भवति सदैवेश्वर सदैव मुक्त इति ॥

'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्र के भाष्य में श्री स्वामी शङ्कराचार्य लिखते हैं—'महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थविद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति।'

अर्थात् अनेक विद्याओं से परिपूर्ण, प्रदीप के समान सब पदार्थों का प्रकाश करने वाले महान् ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म ही है। सर्वज्ञ ब्रह्म को छोड़कर और दूसरा कौन है जो ऐसे शास्त्र को बना सकता हो? परब्रह्म से प्रकाशित होने से वेद नित्य हैं।[1] वेदों के प्रमाण और नित्य होने में सूत्रकार शास्त्रों के प्रमाण का साक्षी के समान ही मानना चाहिए। क्योंकि वेद अपने ही प्रमाण में नित्य सिद्ध हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है अन्य का नहीं। जैसे सूर्य स्वप्रकाशक है और पर्वत से लेकर त्रसरेणुपर्यन्त पदार्थों का भी प्रकाशक है वैसे वेद भी स्वप्रकाशक हैं और सब सत्यविद्याओं के प्रकाशक हैं।[4]

ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व—इन चारों वेदों को ईश्वरकृत माना गया है जिसका ज्ञान, बल और क्रिया नित्य है।[5] श्रीमद्भगवद्गीता में आए 'ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्' का अभिप्राय भी यही है कि वेद की उत्पत्ति अविनाशी तत्त्व से ही हुई है। कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।[6] सृष्टि के अन्त में अन्तर्हित वेदों को अगली सृष्टि के प्रारम्भ में अपने तप से महर्षि लोग प्राप्त कर लेते हैं। वेद कभी उत्पन्न नहीं होते और न ही वेद कभी नष्ट होते हैं।[7]

---

१ वेदान्त सूत्र १ १ ३

२ वेदान्त सूत्र (शांकर भाष्य), १ १ ३

३ वेदान्तसूत्र, १ ३ २९

४ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ४२

५ श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६ ८ २ न तस्य कार्यकरणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च॥

६ श्रीमद्भगवद्गीता ३ १५

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

७ युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।

लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥

वेदान्तसूत्र (शांकर भाष्य), १ ३ २९ सूत्र के भाष्य में उद्धृत महाभारत का श्लोक

'ऋत च सत्यञ्चाभीद्धात तपसो ध्यजायत"[1] अर्थात अत्यन्त प्रदीप्त तेज म ऋत और सत्य प्रकट हुआ।

यह कथन भी वेद म वर्णित ऋत (=पारमार्थिक) और सत्य (=व्याव हारिक) रूप तथ्या की दृष्टि से ही कहा गया है।

लुई जैकालियर नामक पाश्चात्य वैदिक विद्वान के अनुसार यह आश्चयजनक सत्य है कि एक हिन्दुआ का ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है, जिसमे वर्णित सष्टि रचना विषयक सिद्धान्त आधुनिक विनान की मान्यताओ के अनुरूप है।[2] यूनाइटिड स्टटस के सुप्रीम कोट ने अपन एक निणय म ऋग्वेद के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि वेद प्राचीन आचार्यों का एक एसा ज्ञान है जिस पर समय का कोई प्रभाव नही पडता। ससार के प्राचीन पिरामिडस ढह गय। दुनिया की और सभी प्राचीन वस्तुए समयानुसार जीण शीण होकर नष्ट हो गइ, परन्तु वेद आज भी अखण्ड प्रवाह के रूप म आने वाली सन्तति को माग दिखा रहा है। भारतीय वदिक परम्परा के अनुसार वेदा से ही वेदा का रहस्य अनावृत होता है। विश्वसभ्यता क स्थायी स्तम्भ के रूप मे यह भारतीया का महान योगदान है। वेद के ऋषियो और कविया के द्वारा दृष्ट सत्य भावी सन्तति के लिए एक विशेष भाषा मे निबद्ध किए गए। इसमे किसी प्रकार का कोई आक्षेप अथवा मिश्रण सम्भव नहीं। यह वैदिक ज्ञान बहुत समय तक श्रवणपरम्परा से प्राप्त होता रहा है। आज भी इसके समकक्ष व समान स्तर का कोई लिखित स्रोत उपलब्ध नही। यह प्राचीन धम और सभ्यता का असाधारण कीतिस्तम्भ है।[3]

वेद ज्ञान का प्रकाश व आद्य चार वैदिक ऋषि

सग के प्रारम्भ मे ईश्वर न जीवा के कल्याण के लिए जहां अनक प्रकार पदार्थों की रचना की वहां ससार मे सभी काय कलापा के निर्वाह के लिए व सब पदार्थों से लाभ प्राप्त करने के लिए ज्ञान का प्रकाश भी किया। इसी ईश्वरीय ज्ञान को 'वेद' कहा जाता है। सृष्टि के आदि मे समस्त वाणिया की मूलरूप सष्टिगत पदार्थों के नामा को धारण करने वाली, जिस वाणी को विद्वान लोग उच्चारण करत हैं जो सबसे श्रेष्ठ और दोष शून्य होती है वह वाणी ऋषिया की गुहा (=बुद्धि) मे धारण की हुई ईश्वर की प्रेरणा स प्रकाशित होती है।[4]

---

१ ऋग्वेद, १० १९ १

२ वदमीमामा पृ० ४९

३ वैदिक प्रेमप्टस, आर०पी० पाठक के प्रारम्भ मे प्रकाशित, श्री रामपजी शास्त्री का लख—'ऋग्वद एण्ड दि सुप्रिम कोट ऑफ दि यूनाइटड स्टेटस'

४ बृहस्पत प्रथम वाचो अग्र यत प्ररत नामधेय दधाना ।
यदेषा श्रेष्ठ यदरिप्रमासीत प्रेणा तदेषा निहित गुहावि ।
—ऋग्वेद १० ७१ १

वेद सृष्टि के आदि मे होने वाली वाणी है । इस ससार मे जितनी मानव वाणिया हैं उन सबका आदि स्रोत वेद है । वेदवाणी स ही सब भाषायें निकली हैं । वेद वाणी ही सष्टि के समस्त पदार्थों का नामधारण करती है । आदि सष्टि मे जब पदार्थों के नाम रखने की आवश्यकता होती है तब यह वाणी सहायक होती है । इसस ही सृष्टि के पदार्थों की सज्ञा तथा शब्दार्थ का निर्धारण होता है।[1] वेदवाणी सर्वश्रेष्ठ बडी विस्तृत व विशाल है, केवल मानव बुद्धि मे आने वाले व्याकरण के सकुचित नियमा मे बँधी हुई नहीं है । इसका प्रवाह नर्सागक है व दिव्य रूप है । दोषरहित है । सम्पूण ससार के लिए एक सी है । गुहा (=बुद्धि) मे निहित है तथा भगवान की प्रेरणा स प्रकाशित होती है ।

यज्ञेन वाच पदवीयमायन्
तामन्वविन्दनृषिषु प्रविष्टाम् ।[2]

अर्थात् सष्टि के प्रारम्भ मे यज्ञ रूप परमात्मा के द्वारा वाणी की प्राप्ति के योग्य हुए ऋषियो मे प्रविष्ट हुई वदवाणी को मनुष्य पीछे प्राप्त करते हैं । वेदवाणी का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ म पहले ऋषियो के अन्त करण म परमात्मा प्रकाशित करता है ।

सष्टि के प्रारम्भ म ज्ञान मिलना आवश्यक प्रतीत होता है । इसके बिना ससार की कोई व्यवस्था नहीं चल सकती । प्राणिजगत का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि चाहे पशु-पक्षी हो या मनुष्य, सबमे स्वाभाविक ज्ञान की मात्रा विद्यमान रहती है फिर भी मनुष्य का व्यवहार बिना किसी के सिखाये नहीं चल सकता । आदि सष्टि मे प्राप्त इस नैमित्तिक ज्ञान को ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान कहा जाता है । परमेश्वर ने प्रकृति से इस दश्यमान सम्पूण काय जगत् की रचना की और वद ज्ञान का प्रकाश भी ऋषियो के हृदय मे कर दिया ।

---

१ (क) मनुस्मृति १ २१ सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ।
　　वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् सस्थाश्च निममे ॥
　(ख) तन्त्रवार्तिक (कुमारिलभट्ट), पृ० २०६
　　　　वेद एव हि सर्वेषामादश सवदा स्थित ।
　　　　शब्दाना तत उद्धृत्य प्रयोग सम्भविष्यति ॥
　(ग) महाभारत (शान्तिपर्व), २३२ २५
　　　　ऋषीणा नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टया ।
　　　　नानारूप च भूताना कमणा च प्रवतनम् ॥
　(घ) वही, २३२ २६
　　　　वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वर ।
　　　　रावयन्ते सुजातानाम यम्यो विदधात्यज ॥

२ ऋग्वेद १० ७१ ३

'पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्' ।[1]

अर्थात परमात्मा ही सबका आदि गुरु व आदि उपदष्टा है। उसी ने वेद ज्ञान का उपदेश किया। प्रत्येक सृष्टि के आदि में वे वेद रूप परमात्मा के निःश्वासभूत मन्त्र समाधि अवस्था में विद्यमान महर्षियों की दिव्य मनीषा में स्वतः स्फूर्त होकर उन्हीं के माध्यम से, अभिव्यक्ति को प्राप्त होते हैं। इस वेदरूप अप्रतिम वाणी ने अनन्त अप्रज्ञात एवं असीम से निकल कर दिव्य दृष्टि से युक्त व परमदेव से अभिन्न ऋषियों की आन्तर गुहा में प्रवेश किया।[2] वेदों के माध्यमभूत ऋषि अज्ञानान्धकार को लांघ चुके थे।[3] वेदों के अधिष्ठान परमव्योम से उन ऋषियों का साक्षात सम्बन्ध स्थापित हो गया था।[4]

उन ऋषियों का ज्ञान साधारण लोगों के लिए अतीन्द्रिय था।[5] उन ऋषियों ने ब्रह्म का सायुज्य भी प्राप्त कर लिया था।[6] सर्वोत्तम ज्योति को भी वे प्राप्त कर चुके थे।[7] ऋषित्व की इस विशिष्ट अवस्था को न पाने वाले उन दिव्य मन्त्रों के दर्शन नहीं कर सकते।[8] शब्द ब्रह्म के विवर्तभूत इन ऋषियों ने स्वप्नदर्शन के समान ही मन्त्र दर्शन किया। जैसे स्वप्न में इन्द्रियनिरपेक्ष दर्शन का[9] अनुभव होता है वैसे ही ऋषियों को समाधि की उदात्त अवस्था में वेद मन्त्रों का साक्षात्कार हुआ।[10]

---

१ योगदर्शन, १ २६

२ ऋग्वेद, १० ७१ ३, तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम् ।

३ वही, १ ९२ ६,१ १८३ ३, अतारिष्म तमसः पारमस्य ।

४ वही, १ १६४ ३९, ऋचो अक्षरे परमेव्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वेनिषेदुः ।
यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमेसमासते ॥

५ वाक्यपदीय, १ ३८,
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥

६ तैत्तिरीय आरण्यक २ ९ २, ब्रह्मणः सायुज्यमृषयो गच्छन् ।

७ ऋग्वेद १ ५ १०, अगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।

८ बृहद्देवता ८ १२९, न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम् ।

९ वाक्यपदीय, १ १४५, अविभागाद् विवृत्तानामभिख्या स्वप्नवच्छ्रुतौ ॥

१० वाक्यपदीय १ १४५ (वृषभ देव की टीका),
विवृत्तानाम् इति—ब्रह्मैव ऋषिरूपेण विवर्तत इति स्थितम् ।—स्वप्नवत्'—यथा स्वप्ने श्रोत्रनिरपेक्षम् अननुकृत बाह्यविषयं मानसं ज्ञानम् तथा तेषाम् ऋषीणां वेदे इति ।

यस्माद्‌चो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[1]

जो सर्वशक्तिमान परमेश्वर है, उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए। रूपकालङ्कार से वेदों की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि अथर्ववेद ईश्वर के मुख के समतुल्य, सामवेद लोम के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण के समान है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि चार मूल वेदों के चार ऋषि हैं जिन पर वेद प्रकट हुए। अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन मनुष्य देहधारी ऋषियों के द्वारा परमेश्वर ने वेदों का प्रकाश किया।[2] प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन मानव ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।[3] शतपथ ब्राह्मण की व्याहृत्युत्पत्तिकथनम् नामक आख्यायिका में कहा गया है कि पहले प्रजापति अकेला था। उसने चाहा कि मैं सन्तान वाला होऊं। उसने तपस्या की जिससे पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यौ-तीन लोक उत्पन्न हुए। प्रजापति ने तीनों लोकों को तपाया और अग्नि वायु, सूर्य—तीन ज्योतियां उत्पन्न हुई। इन तीन ज्योतियों को भी तपाया गया जिससे तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से ऋग्वेद वायु से यजुर्वेद व सूर्य से सामवेद।[4] इन तीनों वेदों से क्रमशः भूः भुवः स्वः नामक तीन व्याहृतियां उत्पन्न हुई।[5] इस आख्यायिका में अग्नि वायु और आदित्य को ज्योति माना है। ऐतरेय ब्राह्मण[6] और गोपथ ब्राह्मण[7] में इन्हें वेदों का देवता स्वीकार किया है। छान्दोग्य उपनिषद् में उपलब्ध आख्यायिका में कहा गया है कि प्रजापति ने लोकों को तपाया और उनके रस के रूप में पृथिवी से अग्नि को अन्तरिक्ष से वायु को और आकाश से आदित्य को ग्रहण किया। इन देवताओं को तपाने से सार रूप में क्रमशः ऋग, यजु व साम

---

१ अथर्ववेद, १०.७.२०
२ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० १६
अग्निवाय्वादित्याङ्गिरामनुष्यदेहधारिजीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिवेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम् ।
३ सत्यार्थप्रकाश (शताब्दी संस्करण बहालगढ़, १६०२), पृ० २६६
४ शतपथ ब्राह्मण, ११.५.८.१-२
५ वही ११.५.८.३
तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेः ऋग्वेदः वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।
६ शतपथ ब्राह्मण ११.५.८.४
७ ऐतरेय ब्राह्मण ५.३२
८ गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग, १.२६

निकले। प्रजापति के द्वारा इस त्रयी विद्या को तपाय जाने पर क्रमश भू, भुव और स्व व्याहृतिया उत्पन्न हुइ।[1]

मनुस्मृति में ऋक्, यजुष् व सामवेद का स्थान

मनुस्मृति मे भी अग्नि, वायु और रवि द्वारा ऋक्, यजुष व साम इन तीन वेदा की उत्पत्ति का उल्लेख है। अग्नि, वायु और आदित्य का मानवीय ऋषि के रूप म उल्लेख नही है।[2] मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूकभट्ट ने अपनी टीका मे स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा न इन तीना वेदा को अग्नि, वायु और रवि से आकृष्ट किया। पूवकल्प म य वेद ब्रह्मा की स्मृति मे आरूढ थे। उन वेदा को ही सष्टि के प्रारम्भ मे अग्नि, वायु और आदित्य द्वारा आकष्ट किया गया।[3] इससे भी अग्नि, वायु और आदित्य का मानवीय ऋषि होना पूणतया स्पष्ट नहीं होता। सायण के द्वारा इन तीनो को जीव विशेष कहे जाने के आधार पर ही इन्ह मानवीय ऋषि माना है।[4]

अङ्गिरा और अग्नि—दोना ऋग्वेद मे अभिन्न रूप से उल्लिखित हैं।[5] अत दोना भिन्न भिन्न वेदा के ऋषि कैसे? 'अध्यापयामास पितन शिशुराङ्गिरस कवि'[6] इसमे भी यही ज्ञात होता है कि अङ्गिरस नामक कोई कवि (=ऋषि)

---

१ छान्दोग्योपनिषद्, ४ १७ १-३

२ मनुस्मृति, १ २३

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजु सामलक्षणम॥

(ख) वही, २ १५१,

अध्यापयामास पितन शिशुराङिगरस कवि॥

३ वही १ २३ (कुल्लूकभट्ट टीका)

ब्रह्मा ऋग्यजु साममम वेदत्रय अग्निवायुरविभ्य आकृष्टवान।
पूवकल्पे ये वेदास्त एव परमात्मभूर्तं ब्रह्मण सवनस्य स्मत्यारूढा। तानेव कल्पादौ अग्निवायु रविभ्य आचकष।

४ ऋग्वेद (सायण भाष्य प्रारम्भ), पूना सस्करण भा० १, पृ० ३

जीवविशेषरग्निवादित्यवेदानामुत्पादितत्वात।

५ (क) ऋग्वेद, ४ ३ १५,

उत ब्रह्माण्यङिगरो जुषस्व

(ख) वही, ५ ८ ४, स नो जुषस्व समिधानो अङिगरो।
देवो मतस्य यशसा सुदीतिभि।

(ग) वही, १० ६२ ५, त अङ्गिरस सूनवस्त अग्ने परि जज्ञिरे।

६ मनुस्मृति, २ १५१

था । कुल्लूकभट्ट ने टीका म लिखा है कि बालक, कवि तथा विद्वान् अङ्गिरा न अपने पितरो को, अध्यापन करते हुए, पुत्र कहकर सम्बोधित किया । इस सबसे यह सिद्ध नही हो पाता कि अङ्गिरा ने अथववेद के मन्त्रो का दशन किया । वेदा मे ब्राह्मण-ग्रन्थो मे वे अन्यत्र भी चारो ऋषियो का क्रमश चारो वेदो के साथ द्रष्टा रूप म सम्बन्ध का उल्लेख नही मिलता । सम्भवत अथववेद मे अथर्वा और अङ्गिरा ऋषिया के मन्त्र अधिक आन से अथववेद को अङ्गिरावेद भी कहा जाने लगा ।

वेदो का विभाग व मूल वेद की सख्या

सामान्यतया ज्ञान कम उपासना और विज्ञान के भेद से क्रमश ऋग, यजु, साम और अथव नामक वेद के चार विभाग सुप्रसिद्ध हैं ।[1] ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकमस्वभावम अनया सा ऋक्' अर्थात् पदार्थों के गुण कम स्वभाव की इसस स्तुति की जाती है, वह ऋक । भाव यह है कि पदार्थों के गुण कम स्वभाव बतान वाला ऋग्वेद है ।

यजन्ति येन मनुष्या ईश्वर धार्मिकान विदुषश्च पूजयन्ति, शिल्पविद्या-सङ्गति-करण च कुर्वन्ति, शुभविद्यागुणदान च कुर्वन्ति तद् यजु । जिससे मनुष्य ईश्वर से लेकर पृथिवी पयन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानो का सङग, शिल्पक्रिया सहित विद्याओ की सिद्धि, श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुणो का दान करे वह यजुर्वेद है ।

जिससे कर्मों की समाप्ति द्वारा कमबन्धन छूट जाए, वह सामवेद है । जिससे सशया की निवृत्ति हो वह अथववेद है ।[2] वेदो मे भी वेदा की सख्या चार ही पाई जाती है ।[3] किन्तु दुग, भट्ट भास्कर, महीधरादि वैदिक विद्वाना के मतानुसार ब्रह्मा से परम्परा द्वारा प्राप्त एक वेद के चार विभाग महर्षि व्यास ने किये ।[4] पुराण

---

१ (क) निरुक्त, १३ ७, यदनमग्भि शसन्ति, यजुभियजन्ति, सामभि स्तुवन्ति ।
 (ख) काठकसहिता, ४० ७ (ब्राह्मण)
 ऋग्भि नसन्ति यजुर्भियजन्ति सामभि स्तुवन्ति अथवभिजयन्ति ।

२ यजुर्वेदभाष्य विवरण भूमिका, पृ० ३०
 स्यति कर्माणाति सामवेद, थर्वतिश्चरतिकर्मा तत प्रतिषेध (निरुक्त) ११
 १८ षर सगये (चुरादि) सशयराहित्य सम्पाद्यते येनेत्यथर्वनम् ।

३ ऋग्वेद १० ९१
 (ख) यजुर्वेद ३१ ७, तस्माद्यज्ञात्सवहुत ऋच सामानि जज्ञिरे ।
 छन्दासि जज्ञिरे यस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।
 (ग) अथववेद, १० ७ २० तस्मादचो आपातक्षन
 यजुर्यस्मादपाकषन सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसोमुखम ।
 स्कम्भ त ब्रूहि कतम स्विदेव स ।।

४ वदिक वाङमय का इतिहास, भाग १ पृ०९१

साहित्य मे भी यह उल्लेख है कि द्वापर के आदि मे एक ही (चतुष्पाद) वेद चारो भागा मे विभक्त किया जाता है ।[1]

प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च
तस्यवेदो महर्षिभि ।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव
समाम्नात पृथक पृथक् ॥

भत हरि के इस श्लोक से भी ज्ञात होता है कि महर्षियो ने एक वेद का पृथक पथक समाम्नान किया ।[2]

पहले वेद एक ही था अथवा वेद तीन हैं अथवा एक वेद के चार विभाग किए गए—इन सब मा यताओ का कोई स्पष्ट आधार नही मिलता। सम्भव है वे व्यास ने वेद की भि न भि न बहुत सी शाखाए बन जाने के कारग ब्राह्मण और श्रातादि का सम्ब घ निश्चय कर दिया हो या वेद की कुछ शाखाओ का प्रवचन किया हो अथवा व्यवस्था की हो । व्यास जी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने चारो वेद पढे थे ।[3] जहाँ भी वेद के तीन भेद माने गए हैं, वहाँ विद्या भेद से ही माने गए हैं ।

'त्रयी वै विद्या ऋचो यजूषि सामानि इति ।"[4] अर्थात् त्रयी नाम ऋग, यजु और साम का विद्या के कारण है ।

'ऋक' शब्द स पादबद्ध ऋचाओ को ग्रहण किया गया है । गान विधायक म त्रो को 'साम' कहा गया है तथा शेष मे 'यजु ' का व्यवहार किया जाता है । यानिक प्रक्रिया मे पारिभाषिक रीति से वेदम त्र तीन प्रकार के माने गए हैं ।[5] मुण्डक उपनिषद् मे अपरा विद्या का परिगणन करते हुए वेदो की सख्या चार ही उल्लिखित है ।[6] महाभाष्य म भी चार वेद माने गए हैं ।

---

१ (क) विष्णु पुराण, ३ ३ १९ २०
(ख) मत्स्य पुराण १४४ ११

२ वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड), १ ५

३ सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास, प० ४९६

४ शतपथ ब्राह्मण, ४ ३ ७ १

५ (क) मीमासा, २ १ ३५, तेषामग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ।
(ख) वही, २ १ ३६, गीतिषु समाख्या ।
(ग) वही, २ १ ३७, शेषे यजु शब्द ।

६ मुण्डकोपनिषद् १ १ ५, तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथववेद ।
शिक्षा कल्पो व्यारकण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति ।

चत्वारो वेदा साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेद एक विंशतिधा बाह्वृच्य नवधाथर्वणो वेदः।[1]

हरिवंश पुराण में भी अथर्वमन्त्रों के लिए 'छन्दांसि' पद प्रयुक्त है।[2] ऋग्वेद के 'चत्वारिवाक् परिमिता पदानि'[3] तथा 'चत्वारि शृङ्गा'।[4] आदि मन्त्रों की व्याख्या करते हुए यास्क ने चारों वेदों को ग्रहण किया है।[5]

मूल वेद की संख्या वास्तव में चार मानना ही उचित है। यही प्राचीन परम्परा रही है।

मूल वैदिक संहिताएं

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की निम्न मूल चार वैदिक संहिताओं को वेद माना जाता है। वर्तमानकाल में जो ग्रंथ ऋग्वेद के रूप में प्रसिद्ध हैं वह शाकल या 'शाकल संहिता' के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने इसे 'शाकलक संहिता' कहा है।[6] सर्वप्रथम शाकल ऋषि द्वारा सम्पूर्ण ऋचाओं का अध्ययन करके संहिता रूप प्रदान किया गया। तत्पश्चात् अन्य शाखाकारों ने भी उसका प्रवचन किया। ऋक्प्रातिशाख्य के नाम से उद्धृत श्लोक में 'पठितं शाकलेनादौ' से भी स्पष्ट हो जाता है कि इससे पूर्व कोई शाखा विद्यमान नहीं थी।[7] शिशिर, बाष्कल, शाङ्ख, वात्स्य और आश्वलायन ये शाकल की शिष्य परम्परा के पञ्च आचार्य प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में शाकल और बाष्कल ऋग्वेद की दो शाखायें उपलब्ध हैं। शाकल शाखा ही ऋग्वेद के रूप में प्रसिद्ध है।

वाजसनेयि-माध्यन्दिन संहिता

आदित्य सम्प्रदाय और ब्रह्म सम्प्रदाय के भेद से यजुर्वेद क्रमशः शुक्ल एवं कृष्ण यजुर्वेद के नाम से जाना जाता है। महाभाष्य में यजुर्वेद की सौ शाखाओं का उल्लेख हुआ है। अब केवल तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एवं कपिष्ठल चार शाखाएं

---

१ महाभाष्य (पस्पशाह्निक), पृ० ६५

२ वैदिक सम्पत्ति पृ० ४४ पर उद्धृत।
ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदा सरहस्याः सविस्तराः॥

३ ऋग्वेद, १.१६४.४५

४ वही ४.५८.३

५ निरुक्त १३.७, चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः।

६ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १ पृ० ११६

७ वैदिक सम्पत्ति, पृ० ४४६
ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितं शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्॥

ही पाई जाती हैं। तैत्तिरीय संहिता तैत्तिरीया की तथा कठ और मैत्रायणी संहिताएं चरकों की मानी गई है। इन संहिताओं में ब्राह्मणों का काफी सम्मिश्रण है।[1] याज्ञवल्क्य ऋषि ने आदित्य से यजु का अध्ययन करके शतपथ ब्राह्मण नामक एक व्याख्यात्मक ग्रंथ की रचना की। वाजसनेय याज्ञवल्क्य के द्वारा प्रोक्त होने के कारण इसे वाजसनेयि संहिता भी कहा जाता है।[2] वाजसनेयि संहिता के पन्द्रह भेदों में से माध्यन्दिन और काण्व--दो शाखाएं ही उपलब्ध हैं। काण्व संहिता की अपेक्षा माध्यन्दिन संहिता अधिक मौलिक व पाठ-भेद से रहित मानी जाती है।[3]

इस पर माधव, उवट, महीधर एवं स्वामी दयानन्द ने अपने भाष्य लिखे।

सामवेद कौथुमी संहिता

सामवेद की एक सहस्र शाखाओं में से केवल एक कौथुमी शाखा ही अवशिष्ट है। सामवेद के मन्त्र गेय हैं अतएव सामगीति है। सामवेद के ७२ अथवा ७५ मन्त्र ही ऐसे हैं जो इतरवेदसंहिताओं में अनुपलब्ध हैं। शेष मन्त्र शेष तीन वेदों में भी पाये जाते हैं। सामवेद में १८७५ मन्त्र हैं। विषय भेद से एवं प्रकरण भेद से ये विभिन्न अर्थों के बोधक बनते हैं।[4]

अथर्ववेद शौनक संहिता

अथर्ववेद की नौ शाखाओं में से शौनक और पैप्पलाद शाखाएं ही उपलब्ध है। शौनक संहिता प्राचीन है व इसके पूर्ण रूप से बीस काण्ड उपलब्ध है। ब्रह्मा से उत्पन्न बीस ऋषियों ने बीस काण्ड देखे।[5]

स्वामी दयानन्द ने अथर्ववेद को २० काण्डों से युक्त स्वीकार किया है। सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो, तो हमारे पास आओ, आदि से पूर्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदीय के पास बीस काण्ड युक्त मंत्रसंहिता अथर्ववेद को देख लो।[6] शौनक संहिता को अथर्ववेद[7], ब्रह्मवेद[8], अङ्गिरा

---

१ (क) वैदिक सम्पदा, पृ० ४४७-४८
   (ख) वैदिक साहित्य, पृ० १८६

२ शतपथ ब्राह्मण, १४ ९ ५ ३३
   आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।

३ वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० २४१ ४६

४ सामवेद हिन्दी भाष्य, पृ० ३-५ (पूर्वपीठिका)

५ गोपथ ब्राह्मण, १ ५
   ब्रह्मणो विंशति ऋषयः सम्बभूवुस्तविंशति काण्डानि दृष्टानि।

६ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १४, पृ० ६१७

७ गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग), १ २९

८ अथर्ववेद, १५ ६ ८

वेद,[1] अथर्वाङिगरोवेद,[2] भृग्वङ्गिरोवेद[3] क्षत्रवेद[4], भैषज्यवेद[5] इत्यादि अनेक नामो से सम्बोधित किया गया है।

ऋग्वेद की शाकल सहिता यजुर्वेद की वाजसनेयि माध्यन्दिन सहिता, सामवेद की कौथुमी सहिता और अथववेद की शौनक सहिता—ये चार सहिताए ही स्वामी दयानन्द की दृष्टि मे ईश्वर कृत मूलवेद के रूप म मानी जाती हैं।[6]

ऋक् यजु साम अथव का अभिप्राय

प्रथम सष्टि के आदि मे परमात्मा ने अग्नि, वायु आदित्य और अङिगरा—इन मानव ऋषियो की आत्मा म एक एक वेद का अर्थात क्रमश ऋक्, यजु, साम व अथव का प्रकाश किया।[7] स्वामी जी ने अपनी मौलिक दृष्टि मे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मे यह स्पष्ट कर दिया है कि ऋग्वेद की ऋचाओ के द्वारा स्तुति की जाती है। ऋग्वेद म सब पदार्थो के गुणो का प्रकाश किया गया है जिसस उनमे प्रीति बढ कर उपकार लेन का ज्ञान प्राप्त हो सके। क्याकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के सस्कार और प्रवत्ति का आरम्भ नही हो सकता और आरम्भ क बिना यह मनुष्य जन्म व्यथ ही चला जाता है। इसलिए ऋग्वेद की गणना प्रथम की है।[8]

ऋक् शब्द ऋच स्तुतौ धातु से करण कारक म क्विप्' प्रत्यय लगाकर बनता है। 'ऋच्यन्त स्तुयत अनया इति ऋक्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिन मन्त्रो से स्तुति की जाए वे ऋक् कहलाते हैं।[9] सामान्य रूप से ऋग्वेद मे छन्दोबद्ध मन्त्रो का सकलन है, जिनके द्वारा स्तुति व प्रार्थना की गयी है। 'ऋक्' का अथ अचनी भी किया है।[10] 'अचनी' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ऋग्वेद की ऋचाओ का 'ऋक्' इसलिए कहते हैं कि उनमे देवताओ की स्तुति की जाती है।[11]

---

१ शतपथ ब्राह्मण १३ ४ ३ ८
२ अथववेद १० ७ २०
३ गोपथ ब्राह्मण, ३ ४
४ शतपथ ब्राह्मण १४ ८ २ ४
५ अथववेद ११ ६ १४
६ ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य मे अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन (प्रकाशनाधीन)।
७ सत्यार्थप्रकाश (शताब्दी सस्करण) पृ० २६६
८ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ११८
९ वही पृ० ३५६
१० निरुक्त १ ८
११ निरुक्त भाष्य टीका (स्कन्द स्वामि महेश्वर विरचिता), भाग १, पृ० ७२, ऋक् अचनी तया ह्यच्यन्ते स्तूयन्ते देवता।

यजु शब्द 'यज' धातु से निष्पन्न है। यज' धातु के अर्थ तीन हैं—देवपूजा, सङगतिकरण तथा दान। इस त्रिविध अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए यजु शब्द जगत के लिए उपयोगी, सम्पूर्ण क्रिया कलापों से सम्बद्ध माना है। जैसे ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं से ठीक ठीक विचार करने से संसार में व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है जिनसे लोगों को नाना प्रकार से सुख मिले, क्योंकि जब तक कोई क्रिया विधिपूर्वक न की जाय तब तक उसका अच्छी प्रकार कोई भेद नहीं खुल सकता। यजुष शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि जगत का उपकार मुख्य रूप से दो ही प्रकार का होता है—एक आत्मा और दूसरा शरीर का। अर्थात विद्यादान से आत्मा का और श्रेष्ठ नियमों से उत्तम पदार्थों की प्राप्ति करके शरीर का उपकार होता है। इसलिए ईश्वर ने ऋग्वेदादि का उपदेश किया है कि जिनसे मनुष्य लोग ज्ञान और क्रिया काण्ड को पूर्णरीति से जान लेवें।[1] 'यजुष' शब्द केवल मात्र तथाकथित वदिक कर्मकाण्ड से ही सम्बन्ध नहीं रखता। 'यजु शब्द यज्ञ अर्थ को सूचित करता है। यज्ञ को 'अध्वर' भी कहते हैं। इसीलिए यजुर्वेद अध्वरवेद या अध्वयुवेद भी कहा जाता है।

यजुर्वेद में छन्दोबद्ध मन्त्र नहीं मिलते। ऋग्वद के ही कई छन्दोबद्ध मन्त्र कुछ परिवर्तित रूप में यजुर्वेद में पाए जाते हैं।[3]

यजुर्वेद में मन्त्रों के गद्यात्मक रूप के उपलब्ध होने से 'गद्यात्मको यजु' अर्थात् 'गद्य रूप मन्त्र ही यजु है' यह प्रसिद्धि हुई। मन्त्रों में नियत अक्षर पर अवसान न होने से 'अनियताक्षरावसानो यजु' भी कहा जाता है। सायण ने वृत्त (छन्द)तथा गीति(—गान)—दोनों से रहित प्रश्लिष्ट रूप में पठित मन्त्रों को माना है।[4]

'साम' शब्द 'साम सान्त्वप्रयोग धातु से व्युत्पन्न होता है। स्वामी दयानन्द के मत में इसका अर्थ ज्ञान और आनन्द की उन्नति है। सामवद में मन्त्र गेय रूप और

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३५८

२ वही, पृ० ३५९

३ (क) ऋग्वद, ६ १६ १३, त्वामग्न पुष्करादध्ययवा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥

(ख) यजुर्वेद, ११ ३२
पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।
त्वामग्न पुष्करादध्यथवा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥

४ ऋग्वद भाष्यभूमिका (सायण), पृ० ७१

गानात्मक रूप मे उपलब्ध होते है। ऋक् मन्त्रो के ऊपर गाये जाने वाले गान ही 'साम' कहलाते हैं। उदगातानामक ऋत्विज स्तुतिपरक मन्त्रो को विविध स्वरो मे गाता है। ऋक् मन्त्र ही सामगान का आधार है।[1]

'साम' की व्युत्पत्ति करते हुए सा' अर्थात 'ऋक' के साथ किया गया 'अम' अर्थात गान्धार आदि स्वर प्रधान गायन-अम किया जाता है।[2] जिन ऋचाओ पर सामगान किया जाता है उन ऋचाओ को 'सामयोनि' कहा है। इसीलिए सामवेद की संहिताओ में सामगानोपयोगी ऋचाओ का ही सकलन है।[3]

मीमासा दर्शन के अनुसार उन मन्त्रो को ऋक् कहते हैं, जिनमे प्रयोजनवश पाद (चरण) की व्यवस्था है अर्थात मन्त्र छन्दोबद्ध हैं। गानात्मक मत्र साम कहे गए है। गानात्मकता रहित और छन्दोबद्धता रहित मन्त्र 'यजु' कहे गये है। मन्त्रो की त्रिविधरूपता के कारण 'वदत्रयी' शब्द भी वेदो के लिए सुप्रसिद्ध है।[4]

अथर्व शब्द सशयार्थक 'थर्व धातु से निष्पन्न है। अथर्ववेद से सब सशयो का निवारण होता है।[5]

अथर्वन् शब्द की व्युत्पत्ति (१) अथ पूर्वक 'ऋ (गतौ) धातु से वनिप् प्रत्यय द्वारा, (२) थर्व सशयार्थक धातु से 'अच प्रत्यय व नञ समास से और (३) अथ पूर्वक अर्वाग् (—निश्चल व मङ्गल शील)[6] द्वारा की गई है। अथ को अग्नि का वाचक भी कहा गया है। 'दूरे दृश गृहपतिमथर्यु म'[7] मन्त्र मे अग्नि को 'अथर्यु' कहा है। थर्व धातु का अर्थ सशय कुटिल आचरण और हिंसा मानने पर अथर्वा से निस्सन्देह निश्चल व हिंसारहित व्यक्ति अभिप्रेत है। अथर्ववेद मे रोगो को

---

१ (क) छान्दोग्योपनिषद् १ ६ १ ऋचि अध्यूढ साम।
　(ख) मीमासा (शाबर भाष्य), ७ २ १
　　ऋचिगीतौ साम शब्दो अभियुक्त उपजयते तथा स्तोतादिविशिष्टाऋक साम।
२ (क) ऐतरेय ब्राह्मण ३ २३
　　यद वै तत सा चामरच समभवता तत सामाभवत तत साम्न सामत्वम।
　(ख) गोपथ ब्राह्मण, २ ३ २०, सव नामर्गासीत।
　　　　　　　　अमो नाम साम॥
३ वदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० १६३ ६५
४ शतपथ ब्राह्मण ६ ५ ३ ४, त्रेधा विहिता वाक्।
५ निरुक्त ११ १८ थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेध।
६ गोपथ ब्राह्मण क्षेमकरणदासत्रिवेदी वाराणसी, द्वितीय सस्करण, प० ८
७ ऋग्वेद, ७ १ १

दूर करन के लिए दुष्टनाश के लिए व सुख प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रार्थनाएं व उपाय वर्णित किए गए हैं। कुछ विद्वानो के मतानुसार सूत्रकाल से पूर्व अथर्ववेद का उल्लेख नही मिलता।[1]

स्वामी जी ने अथर्ववेद के बारे म कहा है कि इसका प्रकाश ईश्वर ने इसलिए किया कि जिससे तीनो वेदा की अनेक विद्याओ के सब विघ्नो का निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके। अनेक स्थलो पर 'थर्व धातु का हिंसा परक मानते हुए अथर्व शब्द का अहिंसक अर्थ किया गया है।[2] ज्ञानकाण्ड के लिए ऋग्वेद, क्रिया काण्ड के लिए यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिए सामवेद और शेष अन्य रक्षाओ के प्रकाश करने के लिए अथर्ववेद का प्रयोजन है।

वेद का मूल स्वरूप एव शाखाओं व ब्राह्मण ग्रन्थों का अवेदत्व

कुछ विद्वानो के मतानुसार केवल मन्त्रसंहितायें ही वेद है।[3] कुछ समय पश्चात् संहिताओ के अनेक शाखा ग्रन्थ, प्रवचन भेद और पाठभेद आदि के आधार पर प्रकट हुए। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद की ११२७ शाखाएँ वेदार्थ का व्याख्यान करने वाली हैं। वेदानुकूल होने पर ही वे प्रमाण मानने योग्य हैं।[4] वेद परमेश्वर कृत माने जाते हैं और शाखाओ का ऋषियो के द्वारा कृत माना जाता है। शाखाओ मे मन्त्रो के प्रतीक लेकर व्याख्या की गई है किन्तु वैदिक संहिताओ मे कहीं कोई प्रतीक लेकर व्याख्या नही की गई है।[5] शाखा ग्रन्थों की आनुपूर्वी अनित्य है। काठक, कालापक, मौदक व पैप्पलादक शाखा ग्रन्थ हैं।[6] पतञ्जलि वेद की आनुपूर्वी को नित्य मानते हैं।[7] शाखा ग्रन्थ ऋषि प्रोक्त हैं। महाभाष्यकार ने 'अनुवादे

---

१ वैदिककोश, डा० सूर्यकान्त, पृ० ११

२ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० २६

३ वैदिक सिद्धान्त मीमासा, पृ० १५७—केचिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० २८७
तथैवैकादशशतानि सप्तविंशतिश्च वेदशाखा वेदार्थव्याख्याना अपि वेदानुकूलतयैव प्रमाणमर्हन्ति।

५ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७, पृ० ३०१

६ या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या।
महाभाष्य, ४ ३ १०१

७ स्वरो नियत आम्नायेऽस्यवामशब्दस्य, वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता अस्य वामशब्दस्य।
महाभाष्य ५ २ ५६

चरणानाम" के भाष्य मे स्पष्ट लिखा है कि कठ कलाप क प्रवचन का अनुवाद करता है।[२]

न्यासकार न 'तेन प्रोक्तम'[३] सूत्र का अर्थ करते हुए स्पष्ट किया है कि कठ, कलाप, पप्पलाद आदि शाखायें वेदा के व्याख्यान रूप ग्रन्थ हैं।[४] शाखा का अभिप्राय भाग अग इत्यादि नही अपितु प्रवचन अध्ययन की शैली या ऋचाओ के पाठ का क्रम है। व्याकरण महाभाष्य के वार्तिक म चरण शब्द शाखा के लिए प्रयुक्त किया गया है।[५] कयट के अनुसार यह 'चरण' शब्द कठ आदि शाखाओ का ही वाचक है।[६] प० सत्यव्रत सामश्रमी के मतानुसार वेद की शाखाए न तो वृक्ष की शाखाओ के समान हैं और न नदी की शाखाओ के समान। पठन-पाठन के भेद से उत्पन्न सम्प्रदाय विशेष के रूप मे उन्हें स्वीकार किया गया है।[७] शाखाओ के लिए भेद, विधि, वत्म, वा आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है।[८] इन शब्दो का अर्थ खण्ड, भाग, प्रकरण अश आदि नही लिया जा सकता। इससे शाखा ग्रन्थो का अवेदत्व ही सिद्ध होता है। वाक्यपदीय के अनुसार भी शाखा ग्रन्थो का मूल वेद से भेद ही स्पष्ट होता है।[९] पाठ भेद के कारण शाखा ग्रन्थो का

---

१ अष्टाध्यायी २ ४ ३

२ महाभाष्य, २ ४ ३, अनुवदते कठ कलापस्य।

३ अष्टाध्यायी, ४ ३ १०१

४ वही ४ ३ १ १, न्यास।
तेन व्याख्यात तदध्यापित वा प्रोक्तमित्युच्यत।

५ महाभाष्य, ४ २ १३८
चरणसम्बन्धेन निवासलक्षणो ण।

६ प्रदीप टीका, चरणा कठादय, महाभाष्य, ४ २ १३८

७ वदिक सम्पत्ति, पृ० ४४५

८ महाभाष्य भाग १, प० ६
एकशतमध्वयुशाखा सहस्र वर्त्मा सामवेद ।
एकविशतिवा बाह्वृच्य नवधा थवणोवेद ॥

९ वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड) १ ६
भेदाना बहुमागत्व कमण्यकत्र चाङगता ।
शब्दानामित शक्तित्व तस्य शाखासु दश्यते ॥

प्रादुर्भाव हुआ।[1] किसी संहिता का पाठ भेद के साथ प्रवचन ही शाखा का रूप धारण करता है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय काठक, मत्रायणी, काण्व इत्यादि संहिताए इसके उदाहरण हैं।

वेदों के स्वरूप निर्धारण में यह तथ्य ध्यातव्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं माने जा सकते। ब्राह्मण ग्रन्थ तो वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हैं। स्वामी दयानन्द ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थ मानते हैं।[1] अपनी व्याख्यान रूपता के कारण ही ब्राह्मण ग्रन्थों को पराथ माना गया है।[2]

विधि रूप मन्त्रों की स्तुति करने वाले ग्रन्थ को शेष अर्थात ब्राह्मण कहा जाता है। तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका मे आचाय सायण ने ब्राह्मण ग्रन्थों की व्याख्यान रूपता को स्वीकार किया है।[3] ब्राह्मण ग्रन्थों का इतिहास पुराण, कल्प, गाथा और नाराशसी शब्दों मे भी उल्लेख किया गया है।[4] ब्राह्मणवाक्य अथवाद के रूप में मन्त्रों का अनुवाद ही प्रस्तुत करते हैं।[5] स्तुति निन्दा प्रकृति और पुराकल्प आदि इन्ही के भेद हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानने की प्रवृत्ति का प्रबल रूप से निराकरण करने के लिए विद्वानों ने अनेक तक दिए हैं।[6] वेदों के परिगणन के समय वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों मे ब्राह्मणों का नाम परिगणित नहीं किया गया।[7] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सात अक्षरों वाला ब्रह्म अर्थात वेद माना गया है। ऋक् (एक), यजु (दो) साम (दो) और अथव (दो)। इन विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८६
ब्राह्मणानि तु वेद व्याख्यानान्येव सन्ति, नैव वेदाख्यानीति। कुत ? "इषे त्वोर्जे त्वेति" (शतपथ १ ७ १ २) इत्यादीनि मन्त्र प्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदाना व्याख्यानकारणात्।

२ मीमासा, ३ १ २—शेष पराथत्वात।

३ तैत्तिरीय संहिता पृ० ७ (आनन्द आश्रम, पूना),
यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वात।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८०
न ब्राह्मणाना वेद सज्ञा भवितुमर्हति। कुत ? पुराणेतिहाससज्ञकत्वाद मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति।

५ वही, पृ० ८५

६ न्यायदर्शन, २ १ ६३

७ वैदिक सिद्धान्त मीमासा, पृ० १५६-१६६, तथा मीमासा भाष्य, विमर्शिनी व्याख्या युधिष्ठिर मीमासक, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ७३-७७

८ ऐतरेय आरण्यक, ५ ५ ७ तथा बृहदारण्यक २ ४ १०

कि शतपथ ब्राह्मण के मत में ऋक्, यजु, साम और अथर्व—इन चार को ही वेद माना गया है।[1] पाणिनि के अनुसार मन्त्र दृष्ट हैं तथा शाखाएं व ब्राह्मण प्रोक्त।[2] वेदों की अनुक्रमणियां होती हैं ब्राह्मण ग्रन्थों की नहीं। कृष्ण-यजुर्वेद, जिनकी संहिताओं में ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित है, की अनुक्रमणी में ब्राह्मण भाग के ऋषि आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्[3] अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों वेद हैं—यह सूत्र कृष्ण-यजुर्वेद शाखा के आपस्तम्ब सत्याषाढ आदि श्रौतसूत्रों में ही उपलब्ध होता है। ऋग्वेद व सामवेद के श्रौतसूत्रों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इन संहिताओं में ब्राह्मणों का मिश्रण न होने से इस वाक्य की आवश्यकता नहीं हुई। ब्राह्मणों और शाखाओं का अवेदत्व इस युक्ति से भी सिद्ध किया जा सकता है कि व्याख्येय तथा व्याख्यानभूत ग्रन्थ कभी भी एक नहीं माने जा सकते। यथा महाकविकालिदास कृत रघुवंश की मल्लिनाथ कृत व्याख्या रघुवंश नहीं मानी जा सकती। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यान हैं वेद नहीं।[4] वैदिक विषय से सम्बद्ध होने के कारण गौण रूप से इन ग्रन्थों पर वेदत्व का आरोप कर लिया जाता है किन्तु वस्तु तत्व की दृष्टि से मूल वेदों के रूप में मूल चार वैदिक संहिताओं को ही वेद मानना होगा।

वेद का स्वरूप विवेचन करते हुए यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से ही वेद शब्द का प्रयोग होता रहा है। वेद शब्द का यौगिक अर्थ है ज्ञान या विचार अथवा ज्ञान या विचार का साधन अथवा आधार।[5] इस यौगिक अर्थ का बोध व्याकरण व निरुक्त आदि के आधार पर होता है। किन्तु लोक में अनेक आधारों पर शब्द का लोक प्रचलित अर्थ प्रसिद्ध हो जाता है। व्यवहार की प्रमुखता के कारण वेद शब्द किन्हीं विशेष ग्रन्थों के लिए रूढ़ हो गया। उन ग्रन्थों को लोक प्रसिद्ध विशेषताओं के कारण कोषकारों ने वेद शब्द का अर्थ प्रस्तुत किया।

---

१ शतपथ ब्राह्मण, १०।२।४।६

२ पाणिनि ४।२।८ तथा ४।३।१०१, १०५

३ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, २४।१।३१ सत्याषाढ श्रौतसूत्र, १।१।७ कात्यायनपरिशिष्ट-प्रतिज्ञासूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र २।६।३, मन्त्रब्राह्मण वेद इत्याचक्षत तथा कौशिक-सूत्र, १।३ आम्नाय पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च। (वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण तथा आरण्यक भाग, पृ० १०३)।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८६
ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति, नव वेदाख्यानीति।

५ विद ज्ञान व विद विचारणे आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय करके वेद शब्द व्युत्पन्न होता है।

अमरकोष मे श्रुति, वेद, आम्नाय और त्रयी—ये वेद के नाम बतलाए गए हैं। ऋक् साम और यजु ये तीन वेद त्रयी कहलाते हैं।[1] वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, पवित्र ज्ञान, पवित्रशिक्षा और हिन्दुओ का धर्मग्रन्थ भी है।[2] प्राचीनकाल मे त्रयी के अन्तर्गत ऋक्, यजु और साम को ही गिना जाता था, बाद मे अथर्ववेद को भी गिना जाने लगा।[3] कई अथर्ववेद को भी अन्य वेदो के समान प्राचीन मानते हैं।[4] ऋक साम और यजुष् त्रिविध मन्त्रो के कारण वेदत्रयी शब्द प्रचलित हुआ किन्तु इससे चारो वेदो का बोध हो जाता है।[5] स्वामी दयानन्द ने युक्ति और प्रमाणो के आधार पर वेद की इयत्ता निर्धारित करने का प्रयास किया। चारो मन्त्र संहिताए ही वेद हैं। अन्य कोई ग्रन्थ वेद नही। शाखाओ व ब्राह्मणो को वेद कहना अप्रामाणिक है। स्वामी जी के शब्दो मे वेद का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है—जो ईश्वरोक्त सत्यविद्याओ से युक्त ऋक संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यो को सत्यासत्य का ज्ञान होता है उनको वेद कहते हैं।[5]

वेद नित्यता तथा स्वामी दयानन्द

वेद के स्वरूप पर विचार करने के पश्चात् यह भी विचार करने योग्य है कि वेद नित्यता के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है।

व्याकरण के अनुसार नि उपसर्ग से त्यप् प्रत्यय करके नित्य शब्द की निष्पत्ति की जाती है।[6] 'नित्य' शब्द सदा कूटस्थ पदार्थों के लिए ही नहीं प्रयुक्त किया जाता अपितु आभीक्ष्ण्य (=निरन्तर, सतत) अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। यथा नित्य-प्रहसित नित्यप्रजल्पित।[7] नित्य शब्द का नियत शब्द के समान अर्थ मे भी प्रयोग पाया जाता है।[8] अमरकोष के अनुसार सतत अनारत, अश्रान्त सन्तत, अविरत,

---

१ अमरकोष
श्रुति स्त्री वेद आम्नायस्त्रयीधर्मस्तुतद्विधि।
स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी॥

2 V S Apte, Sanskrit—English Dictionary

3 Monier William Sanskrit English Dictionary,
Subsequently a fourth deda was added called the Atharvaveda

४ जयन्तभट्ट, न्यायमञ्जरी, पृ० २३२

५ आर्योद्देश्यरत्नमाला, पृ० ६५

६ महाभाष्य, ४ २ १०४
त्यब नेध्रुवे।

७ वही, पस्पशाह्निक, पृ० ४६

८ वही, ४ ३ १०१, यद्यप्यर्थो नित्य या त्वसौ
वर्णानुपूर्वी सानित्या॥

अनिश, नित्य अनवरत और अजस्र ये नित्य के पर्याय हैं। निरन्तर रहने वाला, चिरस्थायी, शाश्वत निर्बाध नियमित, आवश्यक प्रतिदिन, सदा इत्यादि भी नित्य शब्द के अर्थ लिए जाते हैं।[2] भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भी नित्य शब्द प्रयुक्त हुआ है।[3] वैशेषिक सूत्र में नित्य लक्षण करते हुए कहा गया है कि जो विद्यमान हो और जिसका कोई कारण न हो अर्थात जो किसी से उत्पन्न न हो वह नित्य कहलाता है।[4] वेद नित्यता के विषय में विचार करने पर ये सभी दृष्टिकोण भी मन्तव्य हैं। वेद को नित्य सिद्ध करने के लिए उसके वर्ण, शब्द और वाक्य सभी नित्य माने जायें। शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य माना जाये सृष्टि और प्रलय की बाधा भी स्वीकार न की जाए। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं।[5] वेद नित्य हैं से अभिप्राय यह है कि ज्ञान रूप में वेद नित्य हैं और जिन शब्दों, छन्दों एवं स्वरों में वेदों को प्रकट किया गया है वे नित्य हैं।[6] नित्य वस्तु उत्पत्ति व विनाश से पृथक् होता है। पृथक्-पृथक् द्रव्यों के संयोग विशेष से उत्पत्ति होती है और उत्पन्न कार्य द्रव्यों के कारणों का विनाश हो जाने से विनाश होता है। ईश्वर एक रस है उसका संयोग वियोग से सम्पर्क न होने से वह नित्य है और ईश्वर के नित्य होने से उसका ज्ञान भी नित्य है। नित्य पदार्थ के गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य होते हैं।[8] ईश्वर की ज्ञान क्रिया को नित्य माना गया है। ईश्वर की विद्यारूप जो वेद हैं वे

---

१ अमरकोष
सनातनारतशाश्वत्स्वसन्तताविरतानिशम्।
नित्यानवरताजस्रम ॥
२ वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोष
३ मीमांसा सूत्र १ १ १८, नित्यस्तुस्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्।
नित्यो नित्यानाम् श्वेताश्वतरोपनिषद ६ १३
४ वैशेषिक सूत्र, ४ १ १
सदकारणवन्नित्यम्।
५ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १० पृ० २६७
६ वेद तथा ऋषि दयानन्द पृ० ५७
७ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७, पृ० २०६
नित्य योत्पत्तिविनाशाभ्यामितरद् भवितुमर्हति।
८ वही पृ० २०५
यन्नित्य वस्तु वर्तनतस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति।
९ वाचस्पतिमिश्र, न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका, पृ० ५६७
तस्य ज्ञानक्रियाशक्ती नित्ये।

नित्य ही हैं।[1] वेद शब्द रूप मे भी नित्य हैं। शब्द दो प्रकार का है—नित्य और काय। जो परमात्मा के ज्ञान मे स्थित शब्द, अर्थ, इनके सम्बन्ध हैं उन्हें नित्य मानना ही उचित है। जो हम लोगो के शब्द हैं वे काय हैं।[2]

वैदिक देवता

स्वामी दयानन्द ने मन्त्रो के देवता तत्व का विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मन्त्रद्रष्टा ईश्वर ने जिस कामना वाला होकर जिस देवता मे अर्थ का अधिपति बनाना चाहते हुए उस प्रतिपाद्य अर्थ से सम्बद्ध गुण आदि का वर्णन किया है, वही उस मन्त्र का देवता है।[3] निरुक्त के अनुसार जिस कामना वाला ऋषि जिस देवता मे अधिपति होने की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है उस देवता वाला ही वह मन्त्र होता है।[4] मन्त्र का अभिधेय ही उसका देवता है।[5] मन्त्रो मे प्रधान व नैघण्टुक (=गौण)—दो प्रकार के देवता पाये जाते हैं। देवता का वह नाम नैघण्टुक अर्थात गौण है जो अन्य देवता वाले मन्त्र मे आ जाता है।[6] 'अश्व न त्वा वारवन्तम्'[7]—'घोडे के समान बालो वाले तुझे'—इस मन्त्र मे प्रधान देवता 'अग्नि' है क्योकि प्रधान रूप से 'अग्नि' का वर्णन किया गया है। अश्व केवल उसके उपमान के रूप मे प्रयुक्त होने से नैघण्टुक देवता है।

शौनक के मतानुसार ऋषि जिस जिस अर्थ (वस्तु) की कामना करता हुआ प्रधान रूप मे जिस जिस देवता से भक्ति पूर्वक स्तुति (प्रार्थना) करता है (कि यह

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० २६२
ईश्वरविद्यामयत्वेन वेदाना नित्यत्व वय

२ वही, पृ० ३१
शब्दोद्विविधो नित्यकार्यभेदात्। ये परमात्मज्ञानस्था शब्दार्थ सम्बन्धा सन्ति ते नित्याभवितुमर्हन्ति। येऽस्मदादीना वर्त्तन्ते ते तु कार्याश्च।

३ वही, पृ० ५८

४ निरुक्त, ७ १
यत्काम ऋषिर्यस्या देवतायामार्थपत्यमिच्छन स्तुति प्रयुङ्क्ते तद्दैवत स मन्त्रो भवति।

५ उवट, यजुर्वेद भाष्य, आरम्भ मे
अर्थदेवता मन्त्रवाक्याभिधेया।

६ तद्यदन्यदैवते मन्त्रे निपतति नैघण्टुक तत।
निरुक्त, १ २०
नैघण्टुक तदित्युच्यते, गुणभूतमित्यर्थ। दुर्गाचार्य।

७ ऋग्वेद, १ २७ १

वस्तु मुझे प्राप्त हो) वह उस मन्त्र का देवता होता है।[1] स्कन्द स्वामी के अनुसार जिस स्वर्ग, आयु, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की इच्छा वाला मन्त्र द्रष्टा ऋषि जिस विषयभूत देवता के प्रति, मैं अर्थ अर्थात ऐश्वर्य आदि का स्वामी बनूं इस भावना से स्तुति का प्रयोग करता है वह उस मन्त्र का देवता है।[2]

मन्त्रों के इन देवताओं को जानने में देवता लिङ्ग साधन है। मन्त्र में जिस अर्थ का कथन है उस अर्थ का वाचक शब्द उसके देवता का ज्ञापक होता है। उदाहरणार्थ अग्नि दूतं पुरोदधे"[3] इस मन्त्र में अग्नि का वर्णन किया गया है। अग्नि इस मन्त्र का देवता है। उसका ज्ञापक अग्नि शब्द विद्यमान है यह देवता लिङ्ग है।[4]

जिन मन्त्रों में देवता लिङ्ग प्राप्त नहीं अथवा देवता वाचक शब्दों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, उन अनादिष्ट देवता वाले मन्त्रों में याज्ञिक दृष्टि से मन्त्र का सम्बन्ध जिस देवता से होगा वही देवता होगा। व्याख्याकार अपनी इच्छानुसार प्रतिपाद्य की दृष्टि से देवता की कल्पना भी कर सकता है?[5] जहाँ विशेष नाम आदि नहीं दिखलाई देता वहाँ यज्ञ का यज्ञाङ्ग ही देवता है। याज्ञिकों के मतानुसार जो मन्त्र यज्ञ से अन्य स्थलों में प्रयुक्त होते हैं वे प्राजापत्य होते हैं अर्थात परमेश्वर (=प्रजापति) उनका देवता होता है। नैरुक्त इन मन्त्रों को नाराशंस अर्थात मनुष्य विषयक मानते हैं।[6] स्वामी जी ने गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदमन्त्र, यज्ञ, यज्ञाङ्ग प्रजापति नर, काम विद्वान अतिथि माता पिता तथा आचार्य इत्यादि को सामान्य कर्मकाण्ड की दृष्टि में ही देवता स्वीकार किया है।[1] स्वामी जी के अनुसार यास्क के नाराशंस' पद की व्याख्या यह है कि यज्ञ से अन्यत्र प्रयुक्त हुए मन्त्र

---

१ बृहद्देवता १६
अर्थमिच्छन् ऋषिर्देवं यमाहायमस्त्विति।
प्राधान्येनस्तुवन् भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः॥

२ यत्कामो यस्मिन्-यस्मिन् स्वर्गायुरे—स्वर्गादौकामइच्छायस्य यत्काम ऋषिद्रष्टा मन्त्रस्य। यस्या देवताया विषयभूताया स्तुति प्रयुङ्क्ते आधिपत्यमर्थपतित्वमिच्छन् अर्थस्यैश्वर्यादे पति स्यामिति तद्दैवत स मन्त्रो भवति। सातस्य मन्त्रस्य देवता।
स्कन्दस्वामिमहेश्वरविरचिता निरुक्त भाष्य टीका, तृतीय भाग, पृ० २

३ यजुर्वेद, २२ ७

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३३

५ निरुक्त ७ ४—सा काम देवता स्यात्।

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३४

'नाराशंस' अर्थात मनुष्य विषयक हैं।[1] नैरुक्त आचार्यों के मत में अग्नि, वायु और सूर्य इन तीन देवताओं की प्रधान रूप में सत्ता स्वीकार की जाती है। यास्क ने कात्थक्य आचार्य के अनुसार 'नाराशंस' का अर्थ यज्ञ और शाकपूणि के अनुसार अग्नि किया है।[2] यास्क ने 'नाराशंस' पद का अर्थ करते हुए लिखा है—'येन नरा प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः। तस्यैषा भवति।'[3]

आध्यात्मिक दृष्टि से सभी देवता एवं महान देवता परमात्मा के नाम हैं। कर्मकाण्ड की दृष्टि से तो भिन्न भिन्न देवता हैं, किन्तु मन्त्र में मन्त्र व ईश्वर ही देवता हैं।[4]

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय देवता है। वेद मन्त्रों का विनियोज्य विषय भी देवता है और यज्ञ में वेद मन्त्र व परमेश्वर ही देवता है।[5]

मन्त्रों में जड पदार्थों की भी स्तुति होती है। इन्द्रियों की स्तुति भी मन्त्रों में मिलती है। इससे यह नहीं मानना चाहिए कि वेदों में जड की पूजा का विधान है। वेदों में उल्लिखित ३३ देवों को देवता इसलिए मानते हैं कि इनमें दान आदि गुण किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं[6] किन्तु इनकी पूजा उपासना अभीष्ट नहीं। स्वामी जी के अनुसार वेदों में जहां जहां उपासना विहित है वहां देवता रूप से ईश्वर का ही ग्रहण होता है।[7] स्वामी जी का दृढ मत है कि वेदों में प्राकृतिक अथवा भौतिक देवताओं की पूजा का विधान नहीं है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६०
नाराशंसामनुष्यविषया इति नरुक्ता ब्रुवन्ति।

२ निरुक्त ८ ६

३ वही, ६ १०

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ०६०
कर्मकाण्डादीन प्रति एता देवता सन्ति परन्तु मन्त्रेश्वराव
गामदेवत भवत इति निश्चय।

५ वैदिक ज्योति, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पृ० ६० ६४

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६३ ६६

७ (क) वही, पृ० ६६
वेदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र-तत्र देवतात्वेन ईश्वरस्यैव ग्रहणात्
(ख) वही, पृ० ६६
नातो वेदेषु ह्यपरा काचिद्देवता पूज्योपास्यत्वेन निहितास्तीति
निश्चीयताम्॥

स्वप्न, कान्ति और गति (ज्ञान, गमन और प्राप्ति), इन अर्थों वाली दिव् धातु म निष्पन्न देव शब्द स अग्नि इन्द्र आदि व्यावहारिक देव और ईश्वर दोनो का ग्रहण होता है।[1] दव शब्द का यौगिक अथ लेना ही उचित स्वीकार किया गया है।[2] व्यवहारोपयोगी देवताओ मे आत्मा ही मुख्य देवता है, वह महान भाग्य वाला है।[3]

दवताओ के आकार पर विचार करते हुए चार मत सम्मुख आत है। प्रथम यह है कि दवता मनुष्यो के ही समान है क्योंकि चेतन की तरह उनकी भी स्तुति की जाती है। पुरुषो जैसे अङ्गो का वणन किया गया है। उनके समान ही खाना पीना, सुनना आदि कर्मों व द्रव्यो का सयोग कहा गया है। द्वितीय मत म देवता पुरुषो के समान नही माने जाते। अग्नि वायु, आदित्य, पथिवी, चन्द्रमा आदि दिखाई देने वाल देवता पुरुषो के समान नही है। अचेतन होते हुए भी उनम गौण रूप से चेतन के व्यवहारो का आरोप किया है। तृतीय मत म कुछ पुरुषो क सदश व कुछ पुरुषो से भिन्न दोनो प्रकार के देवता हैं। चतुथ मत मे कुछ आख्यानवादी देवताओ को पुरुषो के समान ही मानते हैं, पथिवी आदि उनके कम शरीर मान गए हैं।[4] स्वामी दयानन्द के मत म विग्रहवती (=शरीरधारी) और अविग्रहवता (=शरीर रहित) ये दो प्रकार के देवता है। मातृदवो भव और 'त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि' आदि वचनो[5] म कथित माता पिता, आचाय व अतिथि तो शरीरधारी है तथा ब्रह्म शरीर रहित देवता है। इन्हें मूर्तिमान और अमूर्तिमान् देव ही कहते हैं। इसी तरह अग्नि, पथिवी आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र मूर्तिमान देव हैं। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ और मन्त्र—ये अमूर्तिमान दव हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिया बिजली व विधि यज्ञ मूर्तिमान व अमूर्तिमान् दोनो प्रकार के देव मान गए हैं।[6] शक्ति रूप सूक्ष्म इन्द्रिय व यज्ञ सम्बन्धी शब्द व ज्ञान तो अमूर्तिमान् (=निराकार) है तथा इन्द्रिय का बाह्य आकार व यज्ञ की सामग्री मूर्तिमान (=साकार) है। पारमार्थिक देव परमेश्वर निराकार माना गया है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, प० ३४३

२ दवो दानाद वा, दीपनाद वा द्योतनाद वा, द्युस्थानो भवतीति वा। निरुक्त, ७ १५

३ निरुक्त, ७ ४

माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

४ निरुक्त, ७ ६ ७

५ तत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली, अनुच्छेद, १० ११

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, प० ३४५, ३४६

वदिक शब्दों की प्रतीकात्मकता व यौगिकता

वैदिक शब्दा की प्रतीकात्मकता व यौगिकता अपना विशेष महत्त्व रखती है। वैदिक ऋषि रहस्यवादी थे तथा वे देवताओ राजाओ, यजमानो, अपन नामा व जीवन की सभी परिस्थितियो के लिए प्रतीको, रूपको और सकेतो का प्रयोग करन मे अति प्रवीण थे। वदिक शब्दा के यौगिक होने का सकेत इससे भी मिल जाता है कि 'कण्व' पद के साथ ऋग्वेद मे 'तमप प्रत्यय का प्रयोग' तथा 'इन्द्र व 'अङ्गिरस' शब्दा के साथ भी तमप प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। सज्ञा वाचक शब्दो के साथ 'तमप्' प्रत्यय का प्रयोग नही किया जाता। विशेषणो के साथ ही तुलना करन म इसका प्रयोग होता है।

मन्त्र द्रष्टा ऋषियो ने शब्दो के प्रकृति प्रत्यया का अनेक स्थलो पर स्वय निर्देश किया है।

अदिति—आदित्यासो अदितय स्याम[२]
अश्विनौ—अश्न तावश्विना[३]
केतपू—केतपू केत न पुनातु[४]
भानु—भानुना भात्यन्त[५]

विद्वान एक अग्नि रूप तत्त्व को इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुपर्ण, यम तथा मातरिश्वा आदि नामो से सम्बोधित करते हैं।[६] इससे भी इन्द्र, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्द यौगिक अथवा योगरूढि ही सिद्ध होते हैं। प्राय सभी वेद भाष्यकार भी वैदिक शब्दो को यौगिक ही स्वीकार करते हैं। इस यौगिकता के सिद्धान्त को मानते हुए वेदो मे अनित्य इतिहास का पाया जाना भी व्यर्थालाप सिद्ध होता है।

वेदार्थ का स्वरूप

वैदिक मन्त्रा का अनुशीलन करते हुए 'बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति'[७] यह सिद्धान्त भी ध्यातव्य है। वैदिक शब्दा की मूलधातुए अनेक अर्थो वाली हैं।

---

१ ऋग्वद, १ ४८ ४ कण्व एषा कण्वतमो
२ वही, ७ ५ २ १
३ वही ८ ५ ३१
४ यजुर्वेद ११ ७
५ ऋग्वद, १० ४५ ४
६ यजुर्वेदभाष्य (स० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु) भाग १, भूमिका पृ० ७६ ८६
७ महाभाष्य, १ ३ १,
वयाकरण सिद्धान्त परमलघुमन्जूषा पृ० १६६-२०६

धातुओं के अनेक अर्थों से युक्त होते हुए भी मन्त्र के अर्थ का निर्धारण श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण स्थान, औचित्य, देश, काल आदि को आधार बना कर किया जाता है। वेदार्थ का स्वरूप निर्धारित करने के लिए यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि वेद की भाषा व्याकरणानुसारी ही हो यह निश्चित नहीं। अर्थ को प्रधानता देनी चाहिए, अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए मन्त्रार्थ की परीक्षा करें, शब्द संस्कार को बहुत प्रधानता न दें।[1] लौकिक व्याकरण के सभी नियम वैदिक शब्दों पर पूर्णरूप से नहीं लग सकते हैं। आचार्य पाणिनि ने बहुलं छन्दसि[2], 'व्यत्ययो बहुलम्'[3] इत्यादि सूत्रों द्वारा वैदिक भाषा को व्याकरण से अच्छी प्रकार से सङ्गत करने का प्रयास किया है। वैदिक भाषा में विकरण, सुबन्तविभक्ति, तिङन्त विभक्ति वर्ण, लिंग, पुरुष, काल आत्मनपद, परस्मैपद, स्वर कर्तृ, यङ् आदि प्रत्यय इन सबके सम्बन्ध में बहुलता की स्थिति पाई जाती है।[4] वैदिक शब्दों के लिए तोसुन्, कसुन् आदि प्रत्ययों लेट्, आदि लकारों कारक विभक्तियों व स्वरों का विधान भी किया गया है। यह वैदिक शब्दों के वैशिष्ट्य को प्रकट करता है।[5]

स्वामी दयानन्द ने तत्कालीन भाष्यों के मिथ्यात्व व लोकोपकार के लिए वेदों का सत्य अर्थ प्रकट करने हेतु यौगिक प्रक्रिया को अपनाया। स्वामी जी ने वेद मन्त्रों का आधार लेकर कई नवीन निरुक्तियाँ प्रस्तुत कीं। उदाहरणार्थ 'शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये'[6] मन्त्र में स्वामी जी ने 'आप' शब्द का सर्वव्यापक ईश्वर अर्थ किया है। अथर्ववेद के 'यत्र लोकाश्च'[7] मन्त्र में 'आपो ब्रह्म जना विदु' कहा गया है।[8] इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'आप' शब्द ब्रह्म का वाचक है। इसी प्रकार कई स्थलों पर नवीन निर्वचन भी किए हैं। उदाहरण—'वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगत् स

---

१ न संस्कारमाद्रियेत अर्थनित्य परीक्षेत।
  निरुक्त २ १

२ अष्टाध्यायी २ ४ ३, ३ ४ ७३, २ ४ ७६, ३ २ ८८, ५ २ १२२, ६ १ ३४, ७ १ ८ ७ १ १०, ७ १ १०३, ७ ३ ६७, ७ ४ ७८

३ वही, ३ १ ८५

४ महाभाष्य, ३ १ ८५

५ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ६६६ ७१४

६ ऋग्वेद, १० ६ ४

७ अथर्ववेद १० ४७ १०

८ विद्वांस आपो ब्रह्मणो नामास्तीति जानन्ति।
  ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६४४

विष्णु ईश्वरः'।[1] निरुक्त में विष्णु की निरुक्ति इस प्रकार की है— अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति, विष्णुर्विशतेर्वा।[2] तात्पर्य दोनों का समान ही है।

वेद के शब्द यौगिक हैं तथा उनमें विशेष्य-विशेषण भाव का बहुत महत्व है। यदि यह स्पष्ट न हो कि विशेष्य क्या है और विशेषण क्या है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

वेदों में कई स्थलों पर आलङ्कारिक वर्णन भी उपलब्ध होता है। 'पिता दुहितुर्गर्भमाधात'[3] मन्त्र में पिता आदि शब्दों का लौकिक (=लोक प्रसिद्ध) अर्थ सङ्गत नहीं बैठता। यहाँ 'पिता' का अर्थ है—पर्जन्य (=मेघ), 'दुहिता' का अर्थ है—पृथिवी तथा 'गर्भ' का अर्थ है जल समूह। मेघ पृथिवी में जल का सेचन करता है—यह अर्थ बना। यहाँ रूपक अलंकार है। यौगिक प्रक्रिया से पिता आदि शब्दों का उपर्युक्त अर्थ सम्भव है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी ऐसा रूपक मिलता है।[4] निरुक्त में भी इस मन्त्रांश का समान अर्थ किया है।[5]

स्वामी जी ने वेद मन्त्रों का अर्थ करते हुए समस्त वैदिक शब्दों की यौगिकता व प्रतीकात्मकता व्याकरण के नियमों का व्यत्यय अर्थानुसारी निर्वचन, विशेषण-विशेष्य भाव व आलङ्कारिकता आदि तथ्यों पर ध्यान दिया है तथा सिद्ध किया है कि वेद केवल यज्ञपरक नहीं हैं। वेदों में व्यावहारिक व पारमार्थिक सभी ज्ञान विद्यमान हैं।

मन्त्रों का त्रिविध अर्थ

वेदों के भाष्यकार, हरिस्वामी उवट भट्टभास्कर, आनन्दतीर्थ, आनन्दतीर्थ, जयतीर्थ राघवेन्द्रयति शत्रुघ्न, वेदपाल आदि वेद मन्त्रों का आध्यात्मिक आधिदैविक व आधिभौतिक त्रिविध अर्थ स्वीकार करते हैं। आत्मा परमात्मा का निरूपण करने वाला अर्थ आध्यात्मिक प्राकृतिक तत्वों का प्रतिपादक अर्थ आधिदैविक तथा यज्ञ आदि कर्मकाण्ड विषयक अर्थ आधिभौतिक कहलाता है। यास्क ने वेद के अर्थ ज्ञान की आवश्यकता और महत्त्व पर विचार करते हुए लिखा है कि यज्ञ का ज्ञान, देवता का

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३५२

२ निरुक्त, १२ १८

३ ऋग्वेद १ १६४ ३३

४ ऐतरेय ब्राह्मण ३ ३३ ३४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६०७ ६०८

५ निरुक्त ४ २१
तत्र पिता दुहितुर्गर्भ दधाति पर्जन्य पृथिव्या ।

ज्ञान और आत्म सम्बन्धी ज्ञान वेदवाणी का अर्थ है।[1] अभ्युदय रूप धर्म से अभिप्राय होने पर यज्ञ ज्ञान पुष्प व देवता ज्ञान फल है। प्रथम पुष्प तत्पश्चात फल होता है। यज्ञ ज्ञान भी प्रथम देवता के लिए किया जाता है अत 'यान' पुष्प व 'दैवत' फल है। नि श्रेयसरूप धर्म से अभिप्राय होने पर 'यान' व 'दैवत' दानो पुष्प रूप होते हैं। दैवत पुष्प व अध्यात्म फल कहा गया है। यान भी दैवत के लिए होने के कारण 'दैवत' मे ही याज्ञ का अन्तर्भाव कर दिया गया है। निरुक्त के अनुसार वेद मन्त्रो के तीन प्रकार के आध्यात्मिक (=अध्यात्म विषयक), आधिदैविक (=दैवता या प्रकृति के तत्वो के प्रतिपादक) तथा अधियज्ञ (=यज्ञ विषयक) अर्थ होते हैं। दुर्गाचार्य के मतानुसार जहा इन अर्थों मे से तीनो, दो या एक भी अर्थ सम्भव हो तो वह अर्थ कर लेना चाहिए।[2] पण्डित ब्रह्मदत्तजिज्ञासु जी के मत मे सब मन्त्रो का तीनो प्रक्रियाओ मे अर्थ होता है। महापुरुष दयानन्द ने वेदार्थ की इस लुप्त त्रिविध प्रक्रिया का पुनरुद्धार किया।[3] ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका म स्वामी जी ने लिखा है कि इस वेद-भाष्य मे जिस-जिस वेद मन्त्र का पारमार्थिक तथा व्यावहारिक अर्थ श्लेषादि अलकारो के द्वारा सप्रमाण होना सम्भव है, उन उनके दो-दो अर्थ दर्शाये जायेंगे। किसी भी मन्त्र के अर्थ मे ईश्वर का त्याग नही है अर्थात आध्यात्मिक अर्थ तो हर एक मन्त्र का है।[4] भर्तृहरि ने महाभाष्य की टीका करते हुए 'इदविष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र के विष्णु शब्द को अनेकार्थक बताया है तथा तीनो अर्थों म सङ्गति लगाई है।[5] सम्पूर्ण वैदिक मन्त्रो के तीनो प्रकार

---

१ निरुक्त १ २०

(क) अथ वाच पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा।

(ख) यज्ञ परिज्ञान यानम देवता परिज्ञान दैवतम, आत्मन्यधि यद वर्तते तद ध्यात्मम्। स एष सर्वोपि मन्त्र ब्राह्मणराशिरेव त्रेधा विभक्त। ऋज्वर्थव्याख्या (दुर्गाचार्य), निरुक्त १ २०, पृ० ६०

२ ऋज्वर्थ व्याख्या निरुक्त २ ८ पृ० १२६
तत्रैव सति लक्षणोद्देशमात्रमेवे तस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते, क्वचिच्चाध्यात्माधिदैवाधियज्ञोपदर्शनार्थम्। तस्मादेतेषु यावन्तोर्था उपपद्येरन आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रया सर्व एव ते योज्या, नात्रापराधोस्ति।

३ यजुर्वेदभाष्य विवरण पृ० ६३

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ५८३ ८४
अत्र वेदभाष्ये यन्योस्ति—अयात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिकव्यावहारिकयो द्वयोरर्थयो श्लेषालङ्कारादिना सप्रमाण सम्भवोऽस्ति तस्यद्वौ द्वावर्थौ विधास्येत। नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्त त्याग भवति।

५ यजुर्वेदभाष्य विवरण भूमिका, पृ० ६२
यथा इद विष्णुर्विचक्रमे इत्यत्र एव एव विष्णुशब्द अनेकशक्ति सन्निधि दैवतमध्यात्माधियज्ञ परमात्मनि च नारायणे च शालि च तया शक्त्या प्रवर्तते। एव च कृत्वा वर्कोमासकृदित्यवप्रभृतेर्ष्वर्षि भवति मन्द्रमसि प्रवृत्ता मास शब्दो गृह्यते वक मा सकृदिति।

के अर्थों को यास्क ने वाणी का पुष्प और फल स्वीकार किया है।[1] दुर्गाचार्य के अनुसार वैदिक शब्द अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं। व्यक्ति की बुद्धि के अनुसार ये वैदिक शब्द अनेक अर्थों को प्रकट करते हैं।[2]

यह त्रिविध मन्त्रार्थ का सिद्धान्त पूर्णरूपेण युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ मन्त्रों का त्रिविध अर्थ किया जा सकता है। किन्तु जिन मन्त्रों में परमेश्वर अथवा परमतत्त्व का ही वर्णन है उन मन्त्रों में तो त्रिविध अर्थ असम्भव है।

ऋग्वेद व यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में सूर्य देव से बुद्धि को सत्कार्यों में प्रेरित करने की प्रार्थना है।[3] एक अन्य मन्त्र में अग्नि से मेधा की प्रार्थना की गई है।[4] इन मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ ही सम्भव है।

स्वामी दयानन्द ने मन्त्रों का पारमार्थिक और व्यावहारिक द्विविध अर्थ प्रस्तुत किया है। यज्ञ यागादि अनुष्ठानों का तो ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मीमांसा श्रौतसूत्र आदि में पहले ही विस्तार से वर्णन किया हुआ है। किसी भी मन्त्र का अर्थ करते हुए ईश्वर का अत्यन्त त्याग नहीं मानना चाहिए क्योंकि कार्य रूप संसार में निमित्त कारण ईश्वर सर्वाङ्ग रूप से व्याप्त है।[5] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार समस्त वेदों का पर्यवसान अध्यात्मविद्या में है। यह दृष्टिकोण स्वामी जी ने अपनी प्रतिभा से जिस दृढ़ता से रखा, उससे वैदिक अर्थों की शैली सचमुच बहुत लाभान्वित हुई।[6] महर्षि अरविन्द ने भी स्वामी जी के वेदभाष्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वेदों का ऐसा पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थ, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के उपकारक भावों विविध विद्याओं के निर्देश के साथ साथ परमतत्त्व प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है अन्यत्र दुर्लभ है। दयानन्द के इस विचार में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों से सम्बद्ध ज्ञान उपलब्ध है कोई उपहासास्पद या काल्पनिक अंश नहीं। वेदों में कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्य भी हैं जिन्हें आज का विज्ञान अभी तक नहीं जान सका है। स्वामी जी ने वैदिक ज्ञान की गम्भीरता के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति से काम न लेकर वास्तविक स्थिति का ही उल्लेख किया है।[7]

---

१ निरुक्त स्कन्द भाष्य भाग ३ पृ० ३६ ३७
२ वही (दुर्गाचार्य कृत टीका) भाग १ पृ० ६४
३ ऋग्वेद ३ ६२ १०, यजुर्वेद ३ ३५
४ यजुर्वेद ३२ १३।
५ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३५५
६ ऊरु ज्योति डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, भूमिका पृ० ग
७ वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ४७

There is nothing fantastic in Dayananda s idea that Veda

... and range of the vedic wisdom

यह तो सर्वविदित ही है कि वेद अतिप्राचीन कृति है। भाषा की कठिनाई और विचारों की गम्भीरता के कारण वेद को समझना और भी अधिक जटिल बन गया। वैदिक पर्यालोचन और वैदिक रहस्यों का अन्तस्तल तक प्रवेश अत्यन्त दुष्कर कार्य है किन्तु इस समस्या के समाधान का प्रयास भी प्राचीन काल से किया जाता रहा है। वेदों की जटिलता, दुर्बोधता और सूक्ष्मता को दूर करने के लिए ही तो वेदों पर भाष्य करने की आवश्यकता अनुभव की जाती रही। भाष्यों के द्वारा ही तो जाना जाता है कि वेदों में किन किन विषयों का वर्णन है। वेदों की शिक्षाएं मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हैं। इसलिए वेदों पर भाष्य करके व उसका सरल व्याख्यान करके इस वैदिक ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदज्ञ ऋषि मुनियों द्वारा स्थापित सत्यभाष्य की कसौटी यह है कि वेदार्थ कहीं न कहीं यज्ञ में काम आता हो। समस्तवेदवाणी यज्ञ के द्वारा ही स्थान पाती है। वेदार्थ बुद्धि के विपरीत न हो। वेदार्थ तर्क से सिद्ध किया गया हो। तर्क से गवेषणा करके अर्थ निश्चित करने वाला ही सही वेदार्थ है।[1] स्वामी दयानन्द की दृढ धारणा है कि अर्थ ज्ञान सहित वेदाध्ययन करने से ही परमोत्तम फल प्राप्त होता है।[2] वेदों को पढ़कर और समझकर श्रेष्ठ गुण, कर्म और आचरण का ग्रहण करके सबका उपकार करना ही सर्वश्रेष्ठ है। अर्थज्ञान के बिना पढ़ने का तो निषेध किया गया है।[3]

(ख) यजुर्वेद के भाष्यकार तथा स्वामी दयानन्द

यजुर्वेद अथवा यजुष संहिता शुक्ल और कृष्ण दो रूपों में उपलब्ध है। शुद्ध मन्त्र भाग से युक्त शुक्ल तथा मन्त्र और ब्राह्मण भाग से मिश्रित कृष्ण यजुर्वेद प्रसिद्ध हुआ।[4] विंटरनित्स महोदय के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद से पुराना है।[5] किन्तु शुद्ध शुक्ल यजु का अशुद्ध कृष्ण से पूर्व का मानना उचित प्रतीत होता है क्योंकि वेदों में भी शुद्ध मन्त्र रूप ही प्राप्त होता है। पौराणिक कथानुसार वैशम्पायन के द्वारा

---

१ वैदिक सम्पत्ति, पृ० ४६२

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६५३

अर्थज्ञानेन सहैव पठने कृते परमोत्तम फलम् प्राप्नोति।

३ वही, पृ० ६५४

अर्थज्ञानेन विनाऽध्ययनस्य निषेधः क्रियते।

४ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०१

(क) शुक्ल कृष्णमिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्॥

(ख) बुद्धिमालिन्यहेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते।
व्यवस्थितप्रकरणं तद्यजुः शुक्लमीर्यते॥

५ प्राचीन भारत का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४१

लापरवाही के कारण ब्रह्महत्या कर दी गई। इस पाप को दूर करने के लिए उसने तित्तिरि और याज्ञवल्क्यादि शिष्यों को प्रायश्चित्त करने के लिए कहा। तब से याज्ञवल्क्य ने कहा कि अल्पशक्ति वाले ब्राह्मणों को प्रायश्चित्त का कष्ट देने की आवश्यकता नहीं। मैं ही एकाकी प्रायश्चित कर लूंगा। गुरु वैशम्पायन को शिष्य याज्ञवल्क्य की यह घमण्ड वाली बात अच्छी न लगी और याज्ञवल्क्य को पढ़ाया गया वेद छोड़ कर जाने की बात कह दी गई। याज्ञवल्क्य ने भी गुरु वैशम्पायन से पढ़े हुए वेद को वमन (= उल्टी) रूप में निकाल दिया। तित्तिरि आदि शिष्यों ने गुरु आज्ञा से वह वमन किया हुआ वेद खा लिया। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने भी सूर्य नारायण की स्तुति से पुनः नवीन अयातयाम यजु' को प्राप्त कर लिया।[१] यहां 'अयातयामयजु' से अभिप्राय है— अप्रयुक्त तथा प्रभाव युक्त नवीन यजु। तानि यजूंषि बुद्धिमालिन्य हेतुत्वात् कृष्णानि जातानि —महीधर द्वारा यजुष संहिता के भाष्यारम्भ में उद्धृत यह वचन इस कथा पर ही आधृत है।[२]

महीधर विद्यारण्य स्वामी शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार द्विवेद गङ्ग आर्यविद्या सुधाकर के रचयिता भट्ट यज्ञेश्वर चरण व्यूह के टीकाकार महीदास एवं पं० युधिष्ठिर मीमांसक शुक्ल एवं कृष्ण के भेद से यजु संहिता को दो रूपों में स्वीकार करते हैं। याज्ञवल्क्य प्रोक्त शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयि संहिता कहा जाता है तथा यही माध्यन्दिन संहिता भी कहलाती है। कण्व ऋषि प्रोक्त काण्व संहिता का महाराष्ट्र प्रान्त में अधिक प्रचार है।[३] स्वामी दयानन्द जी ने शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता को ही मूल यजुर्वेद स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि प्राचीन सम्प्रदाय में भी इसकी बहुत प्रतिष्ठा रही है तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रामाण्य से भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। यजुर्वेद के पाठ का प्रारम्भ भी शुक्लयजुर्वेद के प्रथम मन्त्र से ही होता है।[४]

पतञ्जलि कृत महाभाष्य में यजुर्वेद की सौ शाखाओं का उल्लेख मिलता है।[५] पं० भगवद्दत्त ने माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद के १७ भेद तथा काण्व शुक्ल यजुर्वेद के ११ भेद गिनाए हैं।[६] वर्तमान काल में तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ और कापिष्ठल कठ—ये

---

१ भागवत पुराण, विष्णुपुराण व अग्नि पुराण।
२ वैदिक सिद्धान्त मीमांसा पृ० २३६
३ वैदिक साहित्य, बलदेव उपाध्याय, पृ० १८५
४ (क) गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग १ २६
(ख) वायु पुराण, २६ २०
५ वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग पृ० २०३-२०४
६ व्याकरण महाभाष्य (कीलहार्न), प्रथम भाग पृ० ६
एक शतमध्वर्युशाखा।

चार शाखाएं ही पाई जाती हैं। शुक्ल-यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ को शतपथ नाम दिया गया है। १०० अध्यायों से युक्त होने के कारण ही इसे शतपथ कहते हैं। इसके ज्ञान से व्यक्ति याज्ञिक क्रिया का विद्वान् बनता है।[1] ब्रह्म अर्थात वेदमन्त्रों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ ही ब्राह्मण कहलाते हैं। यज्ञ सम्बन्धी कर्म-काण्ड की व्याख्या करना इन ब्राह्मणों का मुख्य विषय है।[2] विधि अर्थात यज्ञों के विधान सम्बन्धी विवरण, अर्थवाद अर्थात् याग में निषिद्ध वस्तुओं की निन्दा व यज्ञ के लिए उपयोगी द्रव्यों की प्रशंसा हेतु अर्थात विधि के साथ कारण का निर्देश, निर्वचन अर्थात शब्दों की व्युत्पत्ति करना आदि कई विशेषताओं से ये गद्यात्मक ब्राह्मण ग्रन्थ भरे हुए हैं।[3]

शुक्ल-यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता के मुख्य सात भाष्यकार हुए। आचार्य शौनक, हरिस्वामी उवट, गौरधर, रावण, महीधर एवं स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मन्त्रों का भाष्य व व्याख्यान किया। लगभग ६०० ईस्वी पूर्व आचार्य शौनक ने शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता के ३१ वें अध्याय पर अपना मौलिक भाष्य लिखा। यह अध्याय पुरुष सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य की विशेषता यह है कि इसमें पहले पदच्छेद तत्पश्चात अन्वय, समास और मन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की गई है। भाष्य करते हुए याज्ञिक और आध्यात्मिक अर्थों का समन्वय कर दिया है। शब्दों के यौगिक अर्थों का भी दृष्टिगत रखा गया है। योगी भी प्रदीप्त होते हैं अतः वे देव' कहे गए हैं।[4] ऋक् प्रातिशाख्य व बृहद्देवता के रचयिता आचार्य शौनक महर्षि तथा आश्वलायन के गुरु भी माने गये हैं।[5]

६३८ ई० में हरिस्वामी ने यजुर्वेद पर अपना भाष्य लिखा। जम्मू के प्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में हरिस्वामी के मतानुकूल यजुर्वेद के रुद्राध्याय का पद पाठ सुरक्षित है। ये हरिस्वामी स्कन्द स्वामी के शिष्य माने जाते हैं।[6]

संवत ११०० में शुक्ल यजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार उवट हुए। यह महाराज भोज का शासन काल था। इन्होंने भाष्य करते हुए याज्ञिक पद्धति का ही मुख्यतया

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, पृ० १४-१५

२ (क) वैदिक साहित्य बलदेव उपाध्याय पृ० २३९ २४१
   (ख) तैत्तिरीय संहिता भाष्य, १ ५ १

३ शाबर भाष्य, २ १ ८

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु ॥

४ ऋग्वेद प्रातिशाख्य, सं० डा० वीरेन्द्र कुमार भूमिका, पृ० २९

५ वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० २९१

६ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २, पृ, ६५

अनुसरण किया है।[1] प्रसंगवश कहीं कहीं मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है।[2] एक स्थान पर 'अग्नि' का सर्वप्रकाशक परमात्मा अर्थ किया है। यास्क विरचित निरुक्त और निघण्टु के भी उद्धरण दिये गए हैं। यजुष सर्वानुक्रमणी के उद्धरण कहीं पर भी प्राप्त न होने से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ उवट से अर्वाचीन है। उवट अपने नाम से काश्मीरी अनुमानित होते हैं। इन्होंने ऋक् प्रातिशाख्य, यजुः प्रातिशाख्य तथा ऋक् सर्वानुक्रमणी ग्रन्थों पर भी अपना भाष्य लिखा।

संवत् १३५० के लगभग गौरधर का काल माना जाता है। इन्होंने ऋजु-भाष्य नामक यजुर्वेद का भाष्य लिखा। बड़ौदा से उपलब्ध वाजसनेयिसंहिता भाष्य-कोष में ऋजु व्याख्यान भाष्य का उल्लेख मिलता है। स्तुति कुसुमाञ्जलिस्तोत्र प्रणेता काश्मीरी कवि जगद्धर भट्ट के ये पितामह थे। इन्हें अनेक सिद्धान्तों का ज्ञान था। शास्त्ररूपी समुद्र के ये पारदर्शी थे।[3]

विक्रमपूर्व १६वीं शती में दाक्षिणात्य पण्डित रावण ने यजुष शाखा पर रावण भाष्य लिखा। रुद्र प्रयोग दर्पणकार पदमनाभ ने रुद्रभाष्य करने में रावण भाष्य से साहाय्य प्राप्त किया। ध्रुव पण्डित के लेखानुसार सायण भाष्य आधिदैविक अर्थ प्रस्तुत करता है तथा रावण का अर्थ आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करने वाला है।[4]

संवत् १६४२ के लगभग महीधर ने शुक्ल यजुर्वेद पर वेद दीप भाष्य की रचना की। इसमें मन्त्रों का यज्ञों में विनियोग बताते हुए यज्ञ और यागों की विविध प्रक्रियाओं के द्वारा मन्त्र और मन्त्रांशों को सम्बद्ध किया गया है तथा यत्र तत्र व्याख्या की गई है। महीधर कृत भाष्य उवट कृत भाष्य का अनुकरण व विस्तार प्रतीत होता है। महीधर के द्वारा कात्यायन श्रौतसूत्र की प्रतीकों का यथा स्थान निर्देश कर दिया गया है। कहीं कहीं आध्यात्मिक अर्थों का संकेत भी किया है।[5] अनेक मन्त्रों के अर्थों में अश्लीलता भी प्रकट होती है।[6]

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २, पृ० ९९
२ तमु पाप्मा वृथा, मनो व पाप्मो वृथा इति श्रुति।
मनसा हि मुक्त पाप्मा उपलभ्यते।
यजुर्वेदभाष्य (उवट) पृ० १९३
३ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २ पृ० ९९ १००
४ वही, पृ० ७४ ७६
५ वही, पृ० १०० १०२
६ (क) यजुर्वेद, २३ १९ ४४
(ख) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषय, पृ० ३३९
एवमेव महीधरेण महानर्थरूप वेदार्थदूषणम् वेददीपाख्यम् विवरण (विवरणम्) कृतम् तस्यापीह दोषादिग्दर्शनवत्प्रदर्शयन्ते।

१६वीं शताब्दी में (संवत १९३६) स्वामी दयानन्द ने शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य प्रस्तुत किया। इस भाष्य की विशेषता यह थी कि स्वामी जी ने इस भाष्य मे वेद मन्त्रों के आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक तथा व्यवहारोपयोगी अर्थ को दृष्टिगत रखा। महीधर, उवट, सायण आदि भाष्यकार तथा पाश्चात्य वैदिक-विद्वान भी वेदों के परमार्थ अर्थात आध्यात्मिक अर्थ तक नहीं पहुँच पाए। वेदार्थ की गहराई तक पहुचने वाली दृष्टि तथा वैदिक भाषा की यौगिकता के प्रति आस्था का उनमे नितान्त अभाव था। 'अज' का केवल बकरा मानने मे ही उनकी विचार बुद्धि की इति श्री हो गई थी। किन्तु स्वामी दयानन्द ने वेदो का परम अर्थ ब्रह्म माना। व्यावहारिक अर्थ के रूप मे मन्त्रो मे विविध विद्याओं के सकेत को प्रस्तुत किया। स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत समाजोपयोगी व लोककल्याणकारी वेदार्थ सर्वथा मौलिक व अपूर्व है।

नवीन भारत के निर्माताओ मे स्वामी दयानन्द का विशिष्ट स्थान है। भारत को रूढिवादिता व पराधीनता के गर्त से निकाल वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त वैदिक ज्ञान-विज्ञान से पुन परिचित कराकर स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर करने वाले स्वामी दयानन्द ही थे। सन १८२४ मे गुजरात राज्य मे मोरवी प्रदेशान्तर्गत टकारा ग्राम के *एक औदीच्य सामवेदी ब्राह्मण श्री करसन जी लाटा के घर स्वामी जी का जन्म हुआ।* मूलशंकर इनका बचपन का नाम था।[1] दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से स्वामी दयानन्द ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य इत्यादि ग्रन्थो का अध्ययन किया तथा अपने गुरु से प्रेरणा प्राप्त कर स्वामी जी अपनी विद्वत्ता और निर्भयता के साथ वेदो के प्रचार और समाज सुधार के कार्य मे लग गये।[2]

स्वामी दयानन्द वेद को अपने जीवन का मार्गदर्शक अपनी आन्तरिक सत्ता का नियम और अपने बाह्य कार्य का प्रेरणा स्रोत समझते थे। इतना ही नहीं, वे इसे शाश्वत-सत्य की वाणी मानते थे जिसे मनुष्य मात्र अपने ईश्वर विषयक ज्ञान के लिए तथा भगवान व मानव साथियो के प्रति अपने सम्बन्धो के लिए उचित और दृढ आधार बना सकता है। महर्षि अरविन्द के शब्दो मे स्वामी दयानन्द के आकार मे मानो निरा बल ही मूर्तिमान होकर पहाड के रूप मे खडा हो गया है, नग्न और सुदृढ ठोस चट्टान का पुञ्ज विशाल और उत्तुङ्ग। इसकी हरी भरी चोटी पर खडा सरोवर का वृक्ष आकाश से बातें कर रहा है। शुद्ध, प्राणदायी और उर्वरक जल का एक

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग-२ पृ० ८५

क्षाणीमाहीन्दुभिरभियुते वैक्रमे वत्सरे य।
प्रादुर्भूता द्विजवर-कुल दक्षिणे देशवर्ये।
मूलेनामो जननविषय शङ्करत्वापरेणा—
करोति प्रापत् प्रथमवयसि प्रीतिदः सज्जनानाम्॥

२ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित, प्रथम भाग, पृ० ६६

सुविशाल जल प्रपात मानो उसके इस शक्ति पुंज में से ही फूट फूट कर निकल रहा है जो इस सारी घाटी के लिए पानी का ही क्या, स्वयं स्वास्थ्य और जीवन का भी झरना है।[1]

जब वेदों का ह्रास हो रहा था तथा सर्वत्र वेदों की नितान्त उपेक्षा की जा रही थी। वेदों का यथार्थ व वैज्ञानिक स्वरूप समझने की ओर वैदिक पण्डितों का भी ध्यान नहीं जा रहा था। वेदों की पठन-पाठन परम्परा वेदों के जन्म-स्थल भारत में ही लगभग समाप्त हो रही थी। कहीं कहीं पर सायणाचार्य, महीधरादि पौराणिक भाष्यकारों के अनुसार वेदार्थ पढ़ाये जाते थे। किन्तु इस वेदार्थ को पढ़कर वेदों पर लोगों की रही सही श्रद्धा भी लुप्त प्राय हो रही थी। जनसाधारण की यह धारणा दृढ़ हो जाती थी कि वेद पशु हिंसा, असंगत, ऊटपटांग व अश्लील बातों से ही भरे हुए हैं। ऐसे भीषण अज्ञानान्धकार के युग में स्वामी दयानन्द ने अपने सत्यवेद भाष्य का प्रकाश किया। वेदाध्ययन की ऐसी दयनीय स्थिति में स्वामी दयानन्द का वेद-भाष्य वेदाध्ययन के क्षेत्र में एक महान् प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हो रहा है। अब तक वेदों पर अनेक भाष्य किये जा चुके हैं। उपलब्ध भाष्यों में स्वामी जी का भाष्य ही ऐसा भाष्य है जिसके आधार पर वेद सभी दृष्टियों से सर्वोपयोगी व मानवोन्नति साधक सिद्ध हो सकता है। स्वामी जी ने अपने भाष्य में व्यावहारिक अर्थों का भी प्रदर्शन किया। जो अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत आदि देवता वाचक शब्द प्राचीन भाष्यकारों की दृष्टि में केवल आधियाज्ञिक देवतावाची ही थे तथा नैरुक्त जिन्हें प्राकृतिक शक्तियों के द्योतक ही मानते थे, स्वामी दयानन्द जी के भाष्य में वही शब्द राजा प्रजा सेनापति, न्यायाधीश, पति-पत्नी गुरु शिष्य आदि के वाचक बने। यह महर्षि दयानन्द की ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही परिणाम था। अपने वेद भाष्य द्वारा स्वामी जी ने यह सिद्ध कर दिया कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।[2]

वेदार्थ के क्षेत्र में स्वामी जी के योगदान को महामनीषी योगी अरविन्द ने भी स्वीकार किया है। वेद व्याख्या के सम्बन्ध में यह निश्चित विचार है कि वेद की जो भी पूर्ण एवं अन्तिम व्याख्या होगी स्वामी दयानन्द को इस बात का गौरव दिया जायेगा कि वे सत्य अर्थ के प्रथम अन्वेषक हैं। वेदार्थ के क्षेत्र में युगों से प्रचलित भ्रान्तियों तथा अज्ञान से उत्पन्न अस्पष्टताओं में प्रथम बार उनकी प्रतिभा ने सत्य का उद्घाटित किया। दयानन्द ने वेदार्थ के दरवाजे की वास्तविक पर विलुप्त चाबी को पा लिया तथा वेदार्थ के प्रतिबद्ध स्रोत पर लगी मोहर को तोड़कर दूर किया।[3]

---

१ महर्षि दयानन्द, प० जगन्नाथ वेदालंकार द्वारा अनूदित, पृ० १
२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ११६ २२७
३ बंकिम तिलक एण्ड दयानन्द, पृ० ७१ से
हरविलास शारदा के ग्रन्थ, लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती, पृ० ३११

अपने वेद भाष्य के विषय मे स्वामी जी की अपनी सम्मति को उद्धृत करना प्रासगिक प्रतीत होता है। ब्रह्मा से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, जमिनी पर्यन्त विद्वान ऋषियों ने जो ऐतरेय शतपथादि भाष्य रचे थे, पाणिनि, पतञ्जलि, यास्कादि ने जो वेद व्याख्यान और वेदाग निर्मित किये थे, उनकी सहायता लेते हुए मैं अपने भाष्य मे सत्य अर्थ का प्रकाश कर रहा हूँ, कोई बात अप्रामाणिक अथवा कपोल कल्पित नहीं।[1]

वेद विषय से सम्बन्धित और वेदार्थ विषयक अपने मौलिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने हेतु स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का निर्माण किया। इस भूमिका का महत्त्व इस बात से विदित हो जाता है कि भूमिका को लिए बिना वेद भी न दिए जाने का विज्ञापन स्वय स्वामी जी द्वारा निकलवाया गया था।[2] ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मे वेदोत्पत्ति, वेदनित्यता, वेद सज्ञा, वेदो मे ब्रह्म विद्या, सृष्टि-विद्या, पृथिव्यादिलोक-भ्रमणविषय इत्यादि अनेक विषयों का विवेचन किया गया है। भूमिका को समझने के पश्चात ही वेदभाष्य को समझा जा सकता है।

१७ जनवरी, १८७८ को शतपथ, निरुक्त आदि प्रमाणो से युक्त यजुर्वेद भाष्य प्रारम्भ किया गया। भारतीय सवत् के अनुसार पौष सुदी १३ गुरुवार सवत १९३४ को यजुर्वेद भाष्य प्रारम्भ होकर मार्गशीर्ष कृष्ण १ सवत १९३९ तक यह पूर्ण हो गया इसका पूर्ण प्रकाशन स्वामी जी के जीवित रहते न हो सका।[3]

स्वामी जी की यजुर्वेद भाष्य शैली

स्वामी जी की यजुर्वेद भाष्य शैली की कई विशेषताएँ सामने आती हैं। एक तो भाष्य करते हुए प्रमाण स्वरूप शतपथ, निरुक्त आदि के सन्दर्भ दिए गए हैं। मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। मन्त्र ऋषि, मन्त्र देवता व मन्त्र के छन्द का भी क्रमश उल्लेख किया गया है। मध्यम ऋषभ आदि स्वरों के निर्देश के साथ साथ मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को संस्कृत व हिन्दी मे लिख दिया गया है ताकि संस्कृतज्ञ और असंस्कृतज्ञ दोनो वेद मन्त्रों को रुचि पूर्वक समझने का प्रयत्न करे।[4]

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३७०

२ भ्रान्ति निवारण, पृ० १३७

३ ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास, पृ० १४२ ४३ व १४७ ४६

४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १ १

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापति ऋषि । सविता देवता ।
इषेत्वा इत्यारभ्य भाग' पर्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्द । मध्यम स्वर ।
अग्ने सवस्य ब्राह्मयुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ।
अथोत्तमकर्मसिद्ध्यर्थमीश्वर प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥
ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र मे उत्तम-उत्तम कामो की सिद्धि के लिए मनुष्यो को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, इस बात का प्रकाश किया है। १

मन्त्रों का संहिता पाठ, पद-पाठ, संस्कृत पदार्थ, मन्त्रान्वय व संस्कृत में भावार्थ करने के पश्चात् हिन्दी के अन्वयानुसार पदार्थ व भावार्थ भी दिया गया है।[१]

स्वामी जी द्वारा किया गया वेद भाष्य संस्कृतज्ञों के लिए जितना लाभकारी है उतना ही हिन्दी जानने वालों के लिए भी। स्वामी जी ने हिन्दी को आर्य-भाषा से सम्बोधित किया है। यद्यपि तत्कालीन हिन्दी भी अनेक स्थलों पर अस्पष्ट प्रतीत होती है। तथापि इस प्रयास की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वामी जी के वेदार्थ को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक सरल हिन्दी में वेद मन्त्रार्थ प्रस्तुत करना अभी शेष है। वेद भाष्य की रचना कुछ विशिष्ट मान्यताओं को आधारभूत मानकर की गई। स्वामीजी द्वारा लिखित चतुर्वेद विषय सूची और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए उन मान्यताओं को स्पष्ट रूप से हृदयङ्गम किया जा सकता है। स्वामी जी ने वेदों को अपौरुषेय माना है। वेद परम मनीषी एवं स्वयम्भू ऋषि के काव्य हैं। पर ब्रह्म के निःश्वास के रूप में प्रादुर्भूत होने के कारण वेद नित्य है। अनुक्रमणी आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं, रचयिता नहीं। वेद में आख्यान रूप में प्राप्त होने वाली कथाएं आलंकारिक प्रतीकात्मक हैं। वेद में प्रयुक्त सभी नाम रूढ नहीं हैं अपितु धातुज हैं। वेदों में निर्दिष्ट अग्नि, वायु इन्द्र मरुत आदि देवता वाचक पद आध्यात्मिक दृष्टि से परम तत्त्व के द्योतक हैं। वेद की सारी वाक्य रचना अति शुद्ध है एवं बुद्धि पूर्वक की गई है। इसमें अश्लीलता वा द्वेष मांस भक्षण आदि व्यर्थ की बातों का उल्लेख नहीं है। ऋषि मुनियों एवम् आचार्यों ने आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से मन्त्र व्याख्या की है। इसे स्वीकार करने पर भी स्वामी जी ने मन्त्रों का पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थ प्रस्तुत किया है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेद भाष्य के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने स्वीकार किया है कि वे आर्यों मुनियों की सनातन व्याख्या रीति को अपनाते हुए वेद मन्त्रों के अर्थ को प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे आधुनिक भाष्यों और टीकाओं द्वारा वेद को दूषित करने वाले सारे दोष नष्ट हो जायें। उनके भाष्य के द्वारा वेदों का सनातन सत्यार्थ सामने आ जाएगा।

प्रस्तुत अध्याय में स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप स्पष्ट कर दिया गया है तथा साथ ही यजुर्वेद के भाष्यकारों का विवरण देते हुए स्वामी दयानन्द को एक तेजस्वी प्रतिभासम्पन्न भाष्यकर्त्ता स्वीकार किया है। निस्सन्देह विषय प्रवेश की दृष्टि से इसका ज्ञान आवश्यक है। वेद और वेदार्थ का स्वरूप समझकर ही आगे वैदिक देवताओं का विवेचन सम्भव है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३६०

२ वही, पृ० १-२

द्वितीय अध्याय

इन्द्र एव मरुत् शब्दो की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

प्रस्तुत अध्याय म 'इन्द्र' और 'मरुत' शब्दो की व्युत्पत्ति व निवचन एव अभिप्राय पर प्रकाश डाला गया है। वेदा म इन्द्र देव का वाचक 'इन्द्र' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बहुत म सूक्त इन्द्र की स्तुति म प्रयुक्त दिखाई देत हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथववद के बहुत से मन्त्रो के दवता इन्द्र व मरुत् हैं। इन्द्र का मरुत के साथ अटूट सम्बन्ध है। इन्द्र मरुता के बल स ही वृत्र वध करते हैं।[1] इन्द्र और मरुत् के गूढ सम्बन्ध का दष्टिगत रखते हुए इन्द्र और मरुत का युगल रूप मे वणन किया गया है।

(क) 'इन्द्र' शब्द की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

'इन्द्र' यह शब्द सवप्रथम ऋग्वेद म प्रयुक्त हुआ है। तत्पश्चात यजुर्वेद आदि विस्तृत वदिक वाङ्मय म भी इसका प्रचुर मात्रा मे प्रयोग मिलता है। सस्कृत के लौकिक साहित्य म भी यह भूरिश प्रयुक्त होता रहा है। किसी भी शब्द की अन्तर्भावना व आत्मा की खोज के लिए व्युत्पत्ति शास्त्र व निवचन शास्त्र का आश्रय लेना अनिवाय है। वैदिक शब्दो पर ता यह बात और भी अधिक लागू होती है। व्याकरण व निरुक्त क अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थ भी वदिक शब्दो का विश्लेषण करके पूणतया व्याख्यान करत हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य म इसका भिन्न-भिन्न अर्थों म प्रयोग किया है और इसके क्या-क्या पारमार्थिक एव व्यावहारिक अथ किए हैं इसके सूक्ष्म विवेचन स पूव व्याकरण शास्त्र के आधार पर इन्द्र का व्याकरणिक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

व्याकरण शास्त्र म पाणिनि, कात्यायन एव पतञ्जलि की मुनित्रयी सुप्रसिद्ध है। प्रथम मुनि आचाय पाणिनि न 'इन्द्र शब्द को उणादि सूत्र स निपातित सिद्ध किया है।[2]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ५
इन्द्र वै वृत्र जघ्निवास नास्तृतति मन्यमाना सर्वादेवता अजहु । त मरुत एव स्वापयोनामजहु । प्राणा वै मरुत स्वापय । प्राणा हैवैन त नाजहु ।

२ उणादि सूत्र २ २९
ऋज्रेन्द्राग्रवज्रमाला ।

'इदि' धातु से कर्ता म रन् प्रत्यय व नुमागम करने पर 'इन्द्र' शब्द व्युत्पन्न होता है।[1] इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'इन्द्र' का अर्थ हुआ—'इन्दति परमैश्वयवान भवति इति इन्द्र' अर्थात् जो सर्वोच्च ऐश्वय सम्पन्न है वह इन्द्र है। ऐश्वय का स्वामी ईश्वर अथवा ऐश्वय का उपभोक्ता जीव—दोनो रूपो मे वह इन्द्र है। शासन करना भी ऐश्वय का द्योतक है अत शासन कर्ता शासक भी इन्द्र पद वाच्य है। चराचर जगत का शासक ब्रह्म सौर मण्डल का शासक सूय वायु व विद्युत, पृथिवी का शासक राजा राष्ट्र का शासक राष्ट्राध्यक्ष व सेनापति, देह का शासक जीवात्मा, प्राण व मन—इन सभी को इन्द्र शब्द से अभिहित किया गया है।[2]

यास्क मुनि प्रणीत निरुक्त ग्रन्थ मे इन्द्र का निवचन करत हुए कहा गया है कि इन्द्र का इन्द्र नाम इसलिए है कि वह इरा अर्थात व्रीहि आदि अन्न का विदीर्ण करता है उसका दो भागो मे विभाजन करता है वर्षा करक व्रीहि के बीज को गीला करके अकुरित कर देता है। इरादार होने के कारण 'इन्द्र' कहा जाता है। वर्षा से 'इरा' अर्थात अन्न का देता है। इरादाता' होन के कारण 'इन्द्र' कहलाता है। अन्न को वर्षा द्वारा धारण करता है। अत 'ईराधारयिता' भी इन्द्र कहा जाता है। वर्षा से अन्न क बीज का तथा भूमि का फाडना है अत इन्द्र कहलाता है। 'इन्द्र' अर्थात् सोम के लिए दौडता है। सोम पान म रमण करता है। प्राणियो को अन्न से दीप्तियुक्त करता है। शरीर मे विद्यमान होने स प्राणा स सदीप्त करता है। यही 'इन्द्र' का इन्द्रत्व है। इस जगत का कर्ता है अत 'इन्द्र' कहा जान लगा।[3]

औपमन्यव आचाय के मतानुसार सब का साक्षी व दशनीय होन से इन्द्र है। 'इन्दति' धातु स भी इन्द्र शब्द निष्पन्न हाता है। शत्रुओ का विनाश करने वाला, भय द्वारा भगाने वाला याजक व यजमानो का आदर करन वाला हाने स इन्द्र है।[4]

---

१ इदि परमैश्वर्ये भ्वादिगण

२ उणादिकोषवृत्ति (दयानन्द), २ २९, पृ० ३०
इन्दति परमश्वयवान भवतीति इन्द्र
समर्धोनरारमादिरयो योगावा।

३ निरुक्त, १० १०८ पृ० १०
इन्द्र इरा दणाति इतिवा इरा ददाति इतिवा इरा दधातीतिवा इराम् दारयत इति इरा धारयत इतिवा इन्द व द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्धे भूतानि इति वा। तद्यदेन प्राणै समन्धस्तादिन्द्रस्य इन्द्रत्वादिति विनायते। इद करणादित्याग्रायण।

४ वही, पृ० १०२
इद दशनादित्यौपमन्यव। इन्दतवैश्वयकमण इन्द्रञ्छत्रूणा दारयिता वा द्रावयिता वा दरयिता च यज्वनाम।

बृहद्देवताकार ने इन्द्र के बारे मे लिखा है कि रश्मियो के आश्रय से पृथिवी के रसों को खीचकर वायु के साथ आकाश मे विचरण करता है तथा पृथिवी पर बरसता है। अत 'इन्द्र' कहलाता है।[१]

इस पृथिवी लोक मे 'अग्नि' देवता है, अन्तरिक्ष म 'इन्द्र और 'वायु तथा द्यु लोक म सूर्य' ये तीन देवता ही ऋग्वेदादि म भी प्रधान हैं।[२]

यजुर्वेद भाष्य विवरण म पण्डित ब्रह्मदत्तजिज्ञासु न इन्द्र की व्युत्पत्ति 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से 'रन्' प्रत्यय द्वारा मानी है।[3]

वाचस्पत्यम्' मे भी इसे 'इदि' धातु से रन' प्रत्यय द्वारा व्युत्प न माना है तथा द्वादशादित्यो के मध्य परिगणित किया है।[४]

---

१ बृहद्देवता, १ ६८-५६

रसान् रश्मिभिरादाय वायुना म गत सह।
वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृत ॥
अग्निरस्मिन्नच द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च ।
सूर्यो दिवीति विज्ञेयास्तिस्र एवेह देवता ॥

२ निरुक्त, ७ २ तिस्र एवेह देवता इति नैरुक्त ।

३ इति परमैश्वर्ये (भ्वा० ऋच्छे न्द्राग्रवज्रविप्र (उणादि सूत्र २ २८) इनि कर्तरि रन् प्रत्यय । इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति ञ्नित्यादिर्नित्यम (अ० ६ १ १९७) इत्याद्युदात्तत्वम । विभक्त्यनुदात्तत्वे शेषनिघात चाद्युदात्तस्वरसिद्धि । एवरित त्वेक श्रुत्ये पूर्ववत ॥ देवराजस्तु स्वनिघण्टु भाष्ये 'रक' प्रत्ययमाह। स च लेखक प्रमाद एवेत्यनुमिमीमहे वेदेऽन्तोदात्तस्येन्द्र शब्दस्य सर्वथा सत्वात्, रन् प्रत्ययस्यानुवर्तनाच्च ॥ ३०२ २७ ।

यत्तु सायणाचार्यो (तै० स० भाष्ये, पृ० ४६) इन्द्र शब्द वृषादित्वाद् (अ०६ १ २०३)आद्युदात्तमाह स तु तथा स्ववचोविरोध एव। ऋग्भाष्य १ २ ६, इन्द्र शब्दस्य व्युत्पत्तिपक्षे रन प्रत्ययान्तत्वात् ञ्नित्यादिर्नित्यम (अ० ६ १ १९७) इत्याद्युदात्तत्वप्रतिपादनात् ॥ उणादयो व्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि इत्यस्मिन पक्षेऽपि ग्रामादीना च (फि०सू०३८) इति सूत्रेनेष्ट स्वरसिद्धौ वृषादीनामित्यनर्थकमेवेति नास्त्यविदितमेतद् व्याकरणानाम ।

यजुर्वेदभाष्य विवरण पृ० १६

४ वाचस्पत्यम पृ० ९४०

इन्द्र (पु०) इदि रन् । परमैश्वरे ।
'इन्द्रो मायाभि पुरुरूपम् ईयते' श्रुति ।
द्वादशादित्यमध्ये आदित्य भेदे । ते च आदित्या काश्यपेनोत्पादिता ।
धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशुर्भगस्तथा ।
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशम स्मृत ।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यज ॥

सर मोनियर विलियम द्वारा सम्पादित संस्कृत इंगलिश शब्द कोश के अनुसार 'इन्द्र' को भारतीय जुपिटर कहा गया है। यह वर्षा का देवता है। अपने वज्र से यह अंधकार रूपी दुष्टो को विजित कर लेता है। उसके काय मानवता के लिए कल्याणकारी हैं।[1]

ब्राह्मण ग्रथो आरण्यको और उपनिषदो मे इन्द्र विषयक एव मरुत्-विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती है। इन्द्र एवम् मरुत के अभिप्राय एवम् स्वरूप को समझने के लिए इसका विवचन विशेष रूप से अपेक्षित है।

शतपथ ब्राह्मण मे विविध प्रसगो मे कई ढगो से इन्द्र का निर्वचन किया गया है। जो यह पुरुष के मध्य मे प्राण रहता है वह इन्द्र है। वह उन अन्य प्राणो के मध्य मे रहकर इन्द्रिय द्वारा दीप्त करता है। दीपन के कारण उसे इन्द्ध कहते हैं। इन्द्ध को ही परोक्ष रूप मे 'इन्द्र' कहते हैं। क्योकि विद्वान लोग परोक्ष अर्थ की कामना वाले होते हैं। वे सात प्राण ही दीप्ति युक्त होने पर अनेक पुरुषो को उत्पन्न करते हैं।[2]

ऐतरेय आरण्यक मे भी आत्मा के प्रकरण मे इन्द्र शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है। आत्मा ने इसी पुरुष ब्रह्म को व्याप्त देखा। इसको मैंने देखा इसलिए उसका नाम 'इदन्द्र' हुआ। यह 'इदन्द्र' शब्द ही परोक्षतया इन्द्र' बन गया।[3] कुछ पाठ भेद से इसी प्रकार की इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति एतरेय उपनिषद मे भी प्राप्त होती है।

स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्श मही। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम। तमिदन्द्र सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवा।[4]

बृहदारण्यकोपनिषद मे दायी आख मे विद्यमान पुरुष को ही इन्द्र कहा गया है।' याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा—जो यह दायी आख मे पुरुष है, वह इन्ध है। इन्ध

---

1 Indra the God of the atmosphere and sky the Indian Jupitor, Pluvius or Lord of rain he fights against and conquers with his thunderbolt
Sanskrit English Dictionary Sir Monier William p 166

२ शतपथ ब्राह्मण ६ १ १ २
स योऽय मध्ये प्राण। एष एवेन्द्रस्तानेष प्राणान मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्ध इन्धोह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्ष परोक्षकामा हि देवास्त इद्धा सप्त नाना पुरुषा न सृजन्त।

३ ऐतरेयआरण्यक २ ४ ३, पृ० १२० २१
स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यत्। इदमदर्शमिती तस्मादिदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्र सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवा।

४ ऐतरेयोपनिषद् १ १३ १४

को ही परोक्ष रूप से 'इन्द्र' कहते हैं क्योकि देव लोग परोक्ष अर्थ से प्रेम करने वाले और प्रत्यक्ष अर्थ से द्वेष करने वाले होते हैं।[1]

ऐतरेय ब्राह्मण मे इन्द्र को मध्यम स्थान का अर्थात् अन्तरिक्ष का देवता माना गया है। वह इन्द्र माध्यन्दिन सवन का प्रमुख देव है।[2] रुद्र तथा मरुद्गण इन्द्र के सहायक हैं।[3] सायण ने मरुतो के साथ इन्द्र के उत्क्रमण का भी वणन किया है।

'देवासुरा सयत्ता आसस्ते देवा मिथो विप्रिया आसस्तेऽयोऽस्मै ज्येष्ठा यानिष्ठमाना पचधा व्यक्रामन। अग्निवसुभि सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुदिभ वरुण आदित्यब हस्पतिविश्वदेव।[4]'

ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार इन्द्र माध्यन्दिन सवन का देवता है। इन्द्र इस लोक का विजय करके स्वग लोक मे सभी कामनाओ को पूर्ण करके अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। महाभिषेक से युक्त इन्द्र इस लोक के साम्राज्य को जीत लेता है तथा स्वर्ग लोक का भी राजा बन कर रहता है।

'स एतन महाभिषेकेणाभिषिक्त इन्द्र सर्वा क्षितीरजयत सर्वाल्लोकानवि दत सर्वेषा देवानाम् श्रैष्ठ्यमतिष्ठा परमतामगच्छत साम्राज्य भोज्यम् स्वाराज्य वैराज्य पारमेष्ठ्यम राज्य महाराज्यम् जित्वा अस्मिन् लोके स्वयभू स्वराडमृतोऽमुष्मिन् स्वग लोक सर्वान् कामान आप्त्वामृत समभवत्।[5]'

ऐतरय ब्राह्मण के मरुत्वतीय सूक्त मे आता है कि इन्द्र वृत्र को मार कर, मैं सम्भवत इसे मार नहीं पाया इसलिए डर कर छिपता हुआ अनुष्टुप् वाक तक चला गया और वह वहा सो गया। अलग-अलग सभी प्राणी उसका अन्वेषण करने लगे। पितरों

---

१ बृहदारण्यकोपनिषद्, ४ २ २
स होवाच। इन्धो वै नामेष योऽय दक्षिणेऽक्षन पुरुषस्त वा एतमिन्ध सन्तमिन्द्र इत्याचक्षत परोक्षेणव परोक्षप्रिया इव हि देवा प्रत्यक्षद्विष ॥

२ ऐतरेय ब्राह्मण, ६ ५ ३
स होवाचेन्द्रो वै मध्यन्दिन।
ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३० ३० ४, पृ० ७७५
माध्यन्दिनसवन इन्द्रदेवताक।

३ ऐतरेय ब्राह्मण, १ ४ २४
त देवा अबिभयुरस्माक विप्रेमाणमन्विदमसुरा आभविष्यन्तीति ते व्युत्क्रम्या मन्त्रताग्निवसुभिरुद्रामद्रिन्द्रो रुद्रवरुण आदित्यबृहस्पतिर्विश्वदेवैः इति।

४ एतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ४,७ २४,पृ० १०३

५ ऐतरेय ब्राह्मण, ८ ३ १४

ने यागारम्भ से एक दिवस पूर्व ही उसे प्राप्त कर लिया। किन्तु देवता एक दिवस पश्चात ही उसे प्राप्त कर सके। लोक म भी देखा जाता है कि पहले दिन अर्थात अमावस्या म पितरो के कार्य व एक दिन बाद अर्थात् प्रतिपदा मे देवो के काय किए जाते हैं। सोम का अभिषेक करके देव इन्द्र को अभिषव प्रदेश की ओर ले आए और मन्त्र सुनाया। मन्त्र सुनकर इन्द्र प्रकट हो गया।[1]

इस वैदिक आख्यान के सायण भाष्य मे कहा गया है कि इन्द्र वृत्र नामक दैत्य को मारकर दूर चला गया क्योंकि इन्द्र को उसकी मृत्यु मे सन्देह था। इसे अथवाद अर्थात कल्पित आख्यान माना है। इन्द्र का अथ जीवात्मा है जो वाक के रूप मे विशेषतया व्यक्त होता है।[2]

वैदिक वाङ्मय म इन्द्र को यज्ञ का प्रमुख देवता स्वीकार किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण म भी यज्ञ के साथ इन्द्र का सम्बन्ध पाया जाता है। 'ऐन्द्रो वै यज्ञ इन्द्रो यज्ञस्य देवता'।[3]

प्रधान देव के रूप मे इन्द्र तथा गौण देवो के रूप मे अग्नि, वरुण आदि देवताओ को भी प्रदर्शित किया गया है।[4] सोमयाग का प्रमुख देव इन्द्र है। प्रात माध्यन्दिन

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, `, २, १५,

इन्द्रो वै वृत्र हत्वा नास्तृपीति मन्यमान परा परावता गच्छत् स परमामेव परावतयगच्छदनुष्टुव वै परमापरावद वाग वाग् वा अनुष्टुप स वाच प्रविश्याशयत्त सर्वाणि भतानि विभज्या वेच्छस्त पूर्वेद्यु पितरो विद नुत्तरमहर्देवा तस्मात पूर्वेद्यु पितभ्य क्रियत उत्तरमहदेवान यजन्ते ते मुवन्नमिषुणवमिव तथा वाव न आशिष्ठमागमिष्यतीति तथेति तेभ्यषुणवस्त आत्वा रथ ययोत य 'इत्येवैनमावतय न्विद वसो सुतमध' इत्यथर्वेभ्य सुतकीर्त्यामाविरभवत् इन्द्रनदीय ऐदिद्दीत्यथैवन मध्य प्रापादयतागतन्द्रेण यज्ञेन यजते सेन्द्रेण यज्ञेन राध्नोति य एव वेद।

२ ऐतरय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३ २ १५ पृ० ३२२-२६।

३ (क) ऐतरेय ब्राह्मण, ५ ५ ३४।

(ख) वही ६ ३ ९-१०।

४ (क) यजध्वैन प्रियमेधा इन्द्र सत्राचा मनसा।

योऽभूत सोमै सत्यमद् वा॥ ऋग्वेद, ८ २ ३७।

(ख) वही २ १४ ८।

अध्वय वो पनर कामयाध्वेश्रुष्टीवह तोनशया तदिन्दे।

गर्भस्तिपूत भरत श्रुतायेन्द्राय सोमयज्यवो जुहात॥

(ग) वही, ५ ५ ११।

स्वाहाग्नय वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्य।

स्वाहा देवेभ्योहवि॥

और सायकाल के मन्त्रो मे इन्द्र का एकाधिकार है। इन्द्र के लिए पुरोडाश के ग्यारह ग्यारह कपालो से हवि का निर्णय विधान किया गया है।

"तदाहुरनुसवन पुरोडाशं निर्वपेदष्टाकपालम् प्रात सवन एकादशकाल माध्यन्दिनसवने द्वादशकपालम् तृतीयसवनेऽस्थाहिसवनाना रूप तथा छन्दसामिति तत्तन्नादृत्यमैन्द्रा वा एते सर्वे निरूप्यन्ते यदनुसवनम पुरोडाशस्तस्मात्तानेकादशकपालनव निर्वपेदा।"[1]

शतपथ ब्राह्मण म भी अनेक स्थलो पर इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता[2] अर्थात इन्द्र ही यज्ञ का देवता है'। ऐसा कथन आया है। शाखायन ब्राह्मण म भी ऐन्द्रा हि यज्ञ क्रतु[3] वचन कहा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण म इन्द्र की सेना का इन्द्र की स्त्री के रूप मे वर्णन भी मिलता है। सेना रूपी स्त्री का पति होना ही इन्द्र का सेनापतित्व है। इन्द्र की प्रासहा 'वावाता' नाम की स्त्री है।[4] मध्यम जाति की राजरानी वावाता, उत्तम जाति की महिषी तथा अधमजाति की परिवृक्ति कही जाती है।[5] वावाता अर्थात् सेना का पति होने से इन्द्र शब्द का अर्थ सेनापति उपपन्न होता है। वावाता का श्वसुर 'क' अर्थात् प्रजापति कहा गया है।

पूर्वत्रास्येन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामेति यैवमुक्ता सेय लोकव्यवहारे सेना वै युद्धार्थोद्यत सेनारूपेण वर्तते। इन्द्र जाजाया सेनाभिमानित्वात्। तच्च शाखान्तरे समाम्नातम् 'इन्द्राणी वैसेनाया देवता' इति। को नामक इत्येन नाम्ना युक्त प्रजापतिस्तस्या इन्द्र जायाया श्वशुर प्रजापतेरिन्द्रोत्पादकत्वात्। तथा चान्यत्र श्रूयते 'प्रजापतिरिन्द्रमसृजतानुजावर देवानाम्'। इति।[6]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, २ ३ २३ ।

२ शतपथ ब्राह्मण, १ ४ १ ३३, १ ४ २ ४, २ ३ १ ६७, २ ४ १ ११, ३ ३ ४ १८।

३ शाखायन ब्राह्मण, ५ ५, २८ २।

४ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ २२।
ते देवा अब्रुवन्नित्य वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामास्यामेवेच्छामहा इति।

५ वावाता मध्यमजातीया। राज्ञां हि त्रिविधास्त्रिय तत्र उत्तमजातेर्महिषीति नाम। मध्यमजातेर्वावातेति, अधमजाते परिवृक्तिरिति।
—ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य, १२ ११ २२, पृ० ३४४

६ वही, १२ ११ २२, पृ० ३४६।

इन्द्र का महाभिषेक

देवताओं ने दवा म क्षत्रिय रूप इन्द्र का महाभिषेक किया और सम्राट पद पर आसीन कर दिया।

अथैन्द्रो वै देवतया क्षत्रिया भवति त्रैष्टुभश्छन्दसा, पचदश स्तोमेन, सामो राज्यन वन्धुना ।[1]

तभी से क्षत्रिय राजाओं के महाभिषेक में भी इन्द्र के समान ही अभिषेक काय प्रारम्भ हो गया। इस लोक में ऐन्द्रमहाभिषेक कहा जाता है।[2] इसमे यह भी सिद्ध हो जाता है कि क्षात्र शक्ति का एक दिव्य व उत्कृष्ट रूप इन्द्र भी है।

ऐतरेय ब्राह्मण म माध्यन्दिन सवन का देवता इन्द्र है तथा रुद्र मरुद्गण उसके सहायक है।[3] इन्द्र का वृत्र का मारकर परम पराक्रत अनुष्टुप वाक म प्रविष्ट होना भी पाया जाता है। वत्र हन्ता इन्द्र का मरुता के साथ स्थायी सम्बन्ध है। इन्द्र वत्र का मारकर विश्वकर्मा बन जाता है। द्वादशाह ऋतु म द्वितीय दिन का देवता भी इन्द्र बनता है।[4]

एतरेय ब्राह्मण म उक्त शौन शेप आख्यान क अनुसार इक्ष्वाकुवंशी राजर्षि हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित जब यह सुनता है कि उसका पिता उदर रोग से पीडित है तो वह जगल स ग्राम में लौट आता है। पुरुष रूपधारी इन्द्र उस वन म ही विचरण करत रहन का उपदेश देता है। इन्द्र स्वावलम्बी व परिश्रमी विचरण करने वाले जन का मित्र होता है। प्रत्यक सम्वत्सर के अन्त म जब-जब रोहित वन से ग्राम की ओर वापिस आता तब तब पुरुष रूप धारी इन्द्र उस वन म ही विचरण करने का उपदेश

---

१ (क) एतरय ब्राह्मण, ७,४ ३३।
(ख) एतरय ब्राह्मण भाष्य (सायण) ३ ४ ५ ८३, पृ० ८६६।
याम्य क्षत्रियास्ति साम्य दवतय न्द्रा वा इन्द्र सम्बन्ध एव भवति। देवताना मध्य इन्द्र क्षत्रियाभिमानिनी देवतत्यय। तथा त्रैष्टुभश्छन्दसाम् मध्ये त्रष्टुवेतन्मिमानिनी।

२ ऐतरेय ब्राह्मण ८ ४ १५।
स य इच्छेदेवंवित क्षत्रियमय सवा जितीजयताय सर्वांल्लोकान विन्देताय सर्वेषा राज्ञा श्रैष्ठ्यमतिष्ठाम परमता गच्छेत् साम्राज्य भौज्य स्वाराज्य वैराज्यम पारमेष्ठ्य राज्य महाराज्यमाधिपत्यमय समतपर्यायी स्यात् तमेतत्रन्द्रेण महाभिषेकण क्षत्रिय शापयित्वाभिषिचन।

३ ऐतरेय ब्राह्मण १ ४ २४।
त देवा अबिभयुरस्माक विप्रेमाणमविदमसुरा आमविष्यन्तीतिते व्युत्क्रम्यामन्त्रयन्ताग्निवसुभिरुद्रक्रामदिन्द्रो रुद्रवरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वेदेवं, इति।

४ वेद में इन्द्र पृ० १११ २०१।

देता। ऐसा पाँच वर्षों तक चलता रहा।[1] सायण के अनुसार ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र एक देहधारी व्यक्ति विशेष है। विचरण शील मनुष्य का मित्र इन्द्र ही परमेश्वर है।

'आगच्छत रोहित मागमध्य इन्द्र केनचिद ब्राह्मण-पुरुषरूपेण प्राप्यदमुक्त वान्—न चारण्ये चरतो मम सहायो नास्तीति शक्नीयम्। इन्द्र एव परमेश्वर एव *चरतस्तव सखा भविष्यति। तस्माच्चरैव सवथारण्य चरस्वरयेवमुवाच।* एवं बहुष्वपि पर्यायेषु द्रष्टव्यम।'[2]

यहाँ एक रूपक के माध्यम से 'चरैवेति' कहकर सदा आगे बढ़ने का उपदेश दिया गया है।

शाखायन ब्राह्मण में भी ऐतरेय ब्राह्मण के समान वैदिक देवताओं के यानिक उपयोग का वर्णन किया गया है। इन्द्र के विषय में भी शाखायन ब्राह्मण में पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। पुरुष प्राण व अपान (श्वास प्रश्वास) की क्रियाओं का करना है। किन्तु सास मैंने ली' व 'सास मैंने छोड़ी' ऐसा ही वाणी में कहा जाता है। प्राण व अपान दोनों का विलय वाणी में होता है। आँख देखती है किन्तु आँख नहीं कहती कि मैंने देखा है। 'आँख देखती है' ऐसा वाणी से ही कहा जाता है। इसी प्रकार सुनने, विचारने व स्पर्श करने का वर्णन भी वाणी से सम्भव है। सम्पूर्ण आत्मा का विलीनीकरण वाणी में ही होता है। इसीलिए कहा गया है कि इन्द्र के बिना अर्थात वाणी के बिना कोई धाम अर्थात् नाम, स्थान जन्म आदि कुछ भी शुद्ध नहीं होता। वाणी ही इन्द्र है।[3]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ७ ३१५।
अथ हैक्ष्वाक वरुणो जग्राह तस्य होदर जज्ञे, तदुरोहित शुश्राव सोऽरण्याद् ग्राम मेयायनमिन्द्र पुरुषरूपेण पर्येत्यावाच—नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत सखा चरवेति चरैवेति वैभा ब्राह्मणोऽवाचदिति है।

२ ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३३ ३ १५, पृ० ८४४।

३ शाखायन ब्राह्मण, अध्याय २, खण्ड ७, पृ० ५।
साऽय पुरुषो य प्राणिति वा पानिति वा न तन प्राणेन ना पानेनाहृति प्राणिष वापानिष वति वाचैव तदाह तत्प्राणापानौ वाचमपीतो वाङ मयो भवतोऽप यच्चक्षुषा पश्यति न तच्चक्षुषाहृत्यद्राक्षमिति वाचैव तदाह तच्चक्षुर्वाचमप्यति वाङ मय भवत्यथ यच्छ्रोत्रेण शृणोति न तच्छ्रोत्रेणाहृत्यश्रौषमिति वाचव तदाहन्च्छोत्र वाचमप्यति वाङ मय भवति, तत्सवआत्मा वाचमप्यति वाङ्मयोभवति तदन्दृषा ऽभ्युदित नेन्द्रादृते पवत धामकिचनेति वाग्घा इन्द्रा न ह्यृते वाच पवत धाम किंचन स वै साम जुहोति॥

इन्द्र को त्रिष्टुप् छन्द युक्त मन्त्रों से स्तुत होने के कारण त्रैष्टुभ कहते हैं।[1] पूर्वपक्ष अर्थात् शुक्लपक्ष और अपरपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष—प्रत्येक में पन्द्रह दिन होते हैं। सामिधेनी ऋचाएं भी पन्द्रह हैं। ये ही वज्र हैं। वज्र से यजमान के पाप कट जाते हैं।[2] इन्द्र देवों में ओजस्वी तथा बलशाली है। ब्रह्म अर्थात् वेद से ही इन्द्र की अत्यधिक तीव्रता व उग्रता का शमन किया जा सकता है। अतः इन्द्र ही ब्रह्म है। इन्द्र को व्यक्तिगत और समष्टिगत प्राण के अभिप्राय से ही ओजिष्ठ व बलिष्ठ कहा जाता है। इन्द्र ही इन्द्रिय आदि व्यष्टिगत तथा अग्नि आदि समष्टिगत देवों में सबसे अधिक ओजस्वी व वर्चस्वी है।

इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठस्तस्मा एनत् परिहरन्ति तत्स्मै परिगृह्यस्व [illegible]मेवाचकार तस्मादाहेन्द्रो ब्रह्मेति।[3] इन्द्र पद आधिदैविक, आध्यात्मिक व आधिभौतिक दृष्टि से विभिन्न अर्थों का द्योतक है। समष्टिजगत् अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्युलोक में इन्द्र वायु अथवा वायु से आवेष्टित विद्युत् के रूप में अन्तरिक्ष स्थान या मध्यम स्थान देवता है।[4] व्यष्टिजगत् अर्थात् मानव के शरीर में इन्द्र ही हृदय, मन, प्राण, वाक्, बल तथा वीर्य कहा गया है।[5] ये सब पदार्थ भी शरीर के मध्यवर्ती पदार्थ हैं। अतः व्यष्टि में भी इन्द्र मध्यम स्थानीय देवता है। इस प्रकार समष्टि और व्यष्टि उभयत्र इन्द्र मध्यम स्थान का देवता है। इसी कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में जिन्हें सृष्टि

---

१ निरुक्त ७ १० ।
अथैतानीन्द्र भक्तीनि।
अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिन सवन ग्रीष्मस्त्रिष्टुप्।

२ [illegible] ब्राह्मण, ३ १ १५ ३, पृ० ७ ५३।
अथ पञ्चदशान् सामिधेनीना जपति, त्र्यन्यतमेव कुरुते हिङ्कार सामिधेनी-नाम् वज्रो वै हिङ्कार वज्रेणैव तद यजमानस्य पाप्मानम् हन्ति त्रिर्हिङ्करोति त्रिवृद्ध वज्रो वज्रमेव तदभिसम्पादयत्येते वै देवास्त्रिवृतो वज्रेभ्यो लोकेभ्यो द्विषन्तं भ्रातृव्यान्नुदते एकादश सामिधेनीरन्वाहैकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् त्रैष्टुभ इन्द्रस्तदुभयमिन्द्राद्वा आप्नोति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया पञ्चदश सम्पद्यन्ते पञ्च-दश वै पूर्वपक्षापरपक्षयोरहानि तत्सामिधेनीभिः पूर्वपक्षापरपक्षावाप्नोति यथा वज्रो व सामिधेन्य [illegible] पाप्मानं हन्ति।

३ शाङ्खायन ब्राह्मण ६ १४ पृ० ७१,
वही, ८ १ १५४ पृ० ७५।
पञ्चदशो वै वज्रो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्ति।

४ निरुक्त ७ ५ सर्वानुक्रमणी २ ८ बृहद्देवता १ ६८ ६९।

५ शतपथ ब्राह्मण, १२ १ १ ५ १२ ९ १ १३ ६ १ २ २८ १३ ८ १ १४, १४ ४ ३- १६ १४ ५ ४ ११ १ ६ १८, ११ ४ ३ १२, २ ५ ४ ८।

रूप का प्रतीक माना जाता है प्रातः माध्यन्दिन साय सवनों के क्रम में इन्द्र को मध्यम सवन का देवता माना गया है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड का सादृश्य अतिप्राचीन काल से माना गया है।[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में प्रशसित इन्द्र कोई व्यक्ति विशेष नहीं है अपितु वह तो विभिन्न रूपों में वर्णित है विविध पदार्थों का वाचक है। सवत्र इन्द्र वैदिक आर्यों का देवों चिरकालिक राष्ट्रपति है। सामगान कर दुर्दान्त बना हुआ है अधिवक्ता इन्द्र स्तुति करने वालों का रक्षण तथा दुष्टों का दमन करने वाला है।

'नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाम अस्ति वृत्रहन्
नकिरेवा यथा त्वम्।'[2]

अर्थात् हे एश्वर्यवन् इन्द्र! हे बढ़ते हुए शत्रु और बाधक विघ्नों के नाश करने वाले राजन्! हे प्रभो! तुझ से बढ़कर तेरा प्रतिपक्षी कोई नहीं। तुझ से बड़ा भी कोई नहीं। जैसा तू है वैसा तेरे समान भी कोई नहीं।

एतरेयारण्यक में महाव्रताह से इन्द्र का सम्बन्ध जोड़ा गया है। महाव्रताह याग का नामकरण भी रोचक घटना पर आधारित है जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तभी वह इन्द्र महान् बन गया। इन्द्र का महान बनना ही महाव्रत है।[3] महाव्रत का निवचन तीन प्रकार से किया जाता है। सवप्रथम निवचन इस प्रकार है कि इस व्रत मे महान् होना है अतः यह महाव्रत है। द्वितीय—महान देव का यह व्रत है, अतः एव यह महाव्रत है। तृतीय—महान यह व्रत होता है अतएव महाव्रत कहा जाता है।[4] प्राणात्मक इन्द्र का 'उक्थ' भी कहा गया है। ऐतरेयारण्यक में शरीर के अभ्यन्तवर्ती प्राणत्व का प्रतिपादन करते हुए प्राण को उक्थ कहा है इन्द्र प्राण से वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियां कहने लगी—हे इन्द्र! प्राण तुम उक्थ हो।[5]

---

१ शुक्ल यजुर्वेद ७ ५।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम। सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व।

२ ऋग्वेद, ४ ३० १

३ एतरेयारण्यक, १ १ १, पृ० ३
अथ महाव्रतम्। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महानभवत्।
यन्महानभवत् तन्महाव्रतमभवत् तन्महाव्रतस्य तन्महाव्रतत्वम्।

४ ऐतरेयारण्यक भाष्य, १ १ १ पृ० ३-४।

५ एतरेयारण्यक २ १ ४, पृ० ११८।
त देवा अब्रुवन्नयमसि त्वमिदं सर्वमसि तव वयं स्मस्त्वमस्माकमसीति।
तदप्येतदृषिणोक्तम् त्वमस्माकं तव स्मसीति।

इन्द्र ही सूर्य के रूप में बाह्य प्राण और शरीर में वायु के रूप में आन्तर प्राण है। आधिदैविक पक्ष में इन्द्र शब्द से सूर्य का अर्थ ग्रहण किया जाता है। यह सूर्य ही बाह्य प्राण है।[1] प्रश्नोपनिषद के अनुसार सूर्य ही प्राण है।[2] यह इन्द्र पद वाच्य आदित्य ही अपने तेज के कारण से प्राण कहा जाता है।[3] ऋग्वेद के एक मन्त्र में दीर्घतमा ऋषि कहता है कि मुझ ऋषि ने उस प्राणदेव का साक्षात्कार किया हुआ है जो कि इन्द्रियों का रक्षक और अविनाशी है। शरीर के मुख और नासिका के द्वारों से वह प्राण बाहर व अन्दर आता-जाता है। यह प्राण ही मनुष्य के शरीर में वायु रूप में वर्तमान है तथा शरीर के बाहर आधिदैविक जगत में आदित्य रूप में विद्यमान है।[4]

न च प्राणः स्वयमध्यात्मं वायुरूपेण वर्तमानोऽप्यधि दैवतमादित्यरूपेणावस्थितः सन् सध्रीचीर्विषूचीश्च द्विविधा अपि मुख्या दिशो वान्तरदिशश्च वसान आच्छादयन् व्याप्नुवन् वर्तते।[5]

आदित्य में और शरीरान्तर्गत प्राण में मूलतः कोई भेद नहीं है। केवल स्थान का भेद है। एक ही पदार्थ देह को प्रवर्तित करने के लिए प्राण वायु के रूप में अन्तः स्थित है तथा दृष्टि को प्रेरित करने हेतु आदित्य रूप से बहिः स्थित है।[6] देह के अन्त-

---

१ यद्यप्यादित्य एव स्वप्रकाशेन तादिशः आच्छादयति न तु प्राणस्तथापि नास्ति विरोधः। आदित्यस्य बाह्यदेशवर्ति प्राणरूपत्वात्। आदित्योवै बाह्य प्राण उदयन्नेष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णाति इति श्रुत्यन्तरात्।

ऐतरेय आरण्यक भाष्य (सायण), २ १ ६ पृ० १२४।

२ प्रश्नोपनिषद् १ ८।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

३ वही, २ ६

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥

४ ऋग्वेद, १ १६४ ३१ तथा १० १७७ ३।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥

५ ऐतरेय आरण्यकभाष्य (सायण) २ १ ६ पृ० १२३।

६ वही २ २ १ पृ० १३५।

य एष मण्डलस्थोऽस्माभिर्दृश्यमानस्तपति स एष प्राणो हि। न खल्वादित्यप्राणयोर्भेदोऽस्ति। अध्यात्ममधिदैवं चेत्येवं स्थानभेदमात्रम्। अतएव—आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णाति इति श्रुत्यन्तरे पठ्यते। एक एव पदार्थो देहं प्रवर्तयितुमन्तः स्थितो दृष्टिमनुग्रहीतुं बहिः स्थित इत्येतावदेव अत्रार्थरूपम्।

स्थित वायुरूप प्राण देह से बाहर [विद्यमान आदित्यरूप प्राण ही इन्द्र नाम से वर्णित किए गए हैं।[1] आध्यात्मिक पक्ष में इस इन्द्र रूप प्राण के हाथ प्राण और अपान नामक वृत्तियाँ हैं तथा आधिदैविक पक्ष में उस इन्द्र रूप आदित्य के हाथ उत्तरायण और दक्षिणायन हैं।

एक ऋचा में इन्द्र को हंस कहा गया है। इसका कारण यह है कि इन्द्र वर्षा के निमित्त मेघ का हनन करता है। आकाशीय जल अपने प्रवर्तक रूप में इन्द्र को अपना मित्र स्वीकार करते हैं। अनुष्टुप् मेघगर्जन रूपी वाक् है। इसके साथ विचरण करने वाले परमैश्वर्य युक्त प्राणदेव इन्द्र को कवि अर्थात् मेधासम्पन्न लोग ज्ञान पूर्वक ध्यावें।[2]

उपासना योग्य आत्म तत्त्व की विवेचना प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि जिससे समस्त इन्द्रियाँ देखने, सुनने इत्यादि व्यवहार करती हैं, वह प्रज्ञानात्मा उपास्य है। वही ब्रह्म है, वही इन्द्र है, वही प्रजापति है तथा वही सर्वदेवमय है। सम्पूर्ण विवरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्याता जीवात्मा, ध्येय परमात्मा तथा ध्यानाधार प्राण—ये तीनों इन्द्र शब्द के ही विभिन्न अर्थ हैं।[3]

शांखायन आरण्यक के अनुसार इन्द्र एक ऐतिहासिक ऋषि है। ऋग्वेद यजुर्वेद संहिता में भी अनेक सूक्तों और मन्त्रों का द्रष्टा 'इन्द्र' नामक ऋषि स्वीकार किया गया

---

१ ऋग्वेद १ ५६ ८।
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासो वतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥

२ (क) ऋग्वेद, १० १२४ ९।
बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम्।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥
(ख) ऐतरेय आरण्यक भाष्य (सायण), २ ३ ५ प० १६२।

३ ऐतरेय आरण्यक २ ६ १, पृ० २०३ १३।
को ज्यमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा। येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति। एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि—येदप्राणि जंगमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्।—प्रज्ञानं ब्रह्म।

है।[1] इन्द्र ने प्रजापति से अध्ययन किया और विश्वामित्र को पढाया—ऐसा उल्लेख भी मिलता है।[2]

इन्द्र ऋषभ रूप में

इन्द्र नाना रूपो मे ज्ञातव्य है। पशुओ मे इन्द्र का रूप ऋषभ (=साड) है।[3] इन्द्र बलवत्ता तथा वीर्यसचन समयता का द्योतक है। जिस प्राणी मे ये गुण विद्यमान हो वह भी इन्द्र का प्रतीक माना जा सकता है। वेद के अनुसार पशु शब्द की 'पश्यतीति पशु' व्युत्पत्ति मानने पर पशु शब्द मनुष्यादि जीवमात्र का बोधक है।[4] इन्द्र त्रिष्टुप छन्द से अभिष्टुत होने पर समृद्ध होता है।[5] निरुक्त एवम बृहद्देवता के अनुसार भी इन्द्र त्रिष्टुप् छन्द से सम्बन्धित माना गया है।[6]

इन्द्र विश्वामित्र सवादात्मक आख्यान

विश्वामित्र शस्त्र और ब्रतचर्या से इन्द्र के धाम पहुँच जाते हैं। इन्द्र प्रसन्न होकर विश्वामित्र से कोई उत्तम वर मागने के लिए कहते हैं। विश्वामित्र यह वर मागते हैं कि तुम्हे जान जाऊँ—यही कामना है। इन्द्र दूसरी बार व तीसरी बार पुन

---

१ ऋग्वेद १ १६५ १ २ ४ ६, ८, १० १२ १ १७० १, ३ ४ ४ १८ १, ४ २६ १ ३ ८ १०० ४ ५, १० २८ २,६ ८,१०,१२ १० ८६ १, ८,११ १२ १४ १६ २२।
यजुर्वेद—६ १-३४, १ २२ २३, १८ ६८ ७४।

२ शाखायान आरण्यक, १५ १, प० ४७ ४८
अय वश नमो ब्रह्मणे नम आचार्येभ्यो गुणाख्याच्छाखायनादस्माभिरधीत गुणाख्य शाखायान कहालात देवराता विश्वामित्राद विश्वामित्र इन्द्रादिद प्रजापत प्रजापतिब्र ह्मणो ब्रह्मा स्वयभूनयो ब्रह्मणे।

३ शाखायन आरण्यक पृ० १
अथो एतदेव पशुष्वन्द्र रूप यदृषभ।

४ अथर्ववेद १४ २ २५
वितिष्ठन्ता मातुरस्या उपस्यानाना रूपा पशवोजायमाना।

५ शाखायन आरण्यक प० २
इन्द्रस्यवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप तदेन स्वेन छन्दसा समर्धयति।

६ निरुक्त, ७ १०
अथतानीन्द्रभक्तीनि। अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिन सवन ग्रीष्मस्त्रिष्टुप।
बृहद्देवता १ १३०
छन्दस्त्रिष्टुप च पक्तिश्च लोकाना मध्यमश्च य। एतन्त्वेवाश्रयो विद्यात् सवन मध्यम च यत॥

उचित वर की याचना करने को कहते हैं। विश्वामित्र केवल इन्द्र का जानने की ही इच्छा प्रकट करते हैं। इन्द्र कहते हैं—"मैं बडी पुरुष शक्ति और बडी स्त्री शक्ति हूँ, देव और देवी हूँ, ब्रह्म और ब्रह्माणी हूँ। यदि तुम इससे अधिक तप करोगे तो वही बन जाओगे जो मैं हूँ।"[1]

यह एक रूपकात्मक वर्णन है। इन्द्र भजनीय है व विश्वामित्र भक्त है। इन्द्र का प्राप्यत्व व श्रेष्ठत्व तथा विश्वामित्र साधकत्व कर्त्तव्य अभिव्यक्त करता ही इस आख्यान का लक्ष्य है।

प्रज्ञात्मा प्राण ही इन्द्र है

इन्द्र जब तक उस प्रज्ञात्मा को नही जानता तब तक वह असुरो से पराजित होता रहता है। जब वह स्वय को जान लेता है तब असुरो को मार कर जीत लेता है तथा सभी देवो (=इन्द्रियो) मे श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य को प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञात्मा प्राण का चक्षुरादि अन्य इन्द्रियो के साथ भाग्य भोक्तृत्व का सम्बन्ध है। जो विद्वान इस इन्द्र की श्रेष्ठता के रहस्य का जानता है वह भी अपने पाप का नाश करके श्रेष्ठता, स्वाराज्य व आधिपत्य प्राप्त कर लेता है।[2]

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि इन्द्र कोई व्यक्ति विशेष न होकर सभी इन्द्रिया का शासक प्रज्ञात्मा प्राण है।

दैवोदासि प्रतर्दन तथा इन्द्र का आख्यान

दिवोदास का पुत्र दैवोदासि प्रतर्दन युद्ध और अपने बल से इन्द्र के प्रिय धाम

---

१ शाङ्खायन आरण्यक, १ ६, प० ३
विश्वामित्रो ह वा इन्द्रस्य प्रिय धामोपजगाम शस्त्रेण च व्रतचर्यया न हेन्द्र उवाच विश्वामित्र वर वर्णीष्वेति स होवाच विश्वामित्रस्त्वामेव विजानीयामिति द्वितीयमिति त्वामेवेति तृतीयमिति त्वामेवेति त हेन्द्र उवाच महाश्च महती चास्मि देवश्च देवी चास्मि ब्रह्म च ब्राह्मणी चास्मीति तत उ ह विश्वामित्रो विजिज्ञासामेव चक्रे त हेन्द्र उवाचैतद्वा अहमस्मि यदेतवोच यद्वा ऋषेतो भूयो तपस्तदेव तत् स्याद् यदहमिति।

२ वही, पृ० २५ २६ ६ २०
तमेतमात्मानमेत आत्मनाऽन्ववस्यन्ते यथा श्रेष्ठिन स्वास्तद्यथा श्रेष्ठी स्वभुङ्क्त यथा वा स्वा श्रेष्ठिन भुञ्जन्त्येवमेवैष प्रज्ञात्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते एवमेवैत आत्मान एतमात्मान भुञ्जन्ति स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मान न विजज्ञे तावदेवमसुरा अभिबभूवु स यदा विरजेऽपहत्वा सुरानविजित्य सर्वेषा च देवाना श्रेष्ठ्य स्वाराज्यमाधिपत्य पर्यैत्तथा एवव विद्वान् सर्वान् पाप्मनोऽपहत्य सर्वेषा च भूताना श्रेष्ठ्य स्वाराज्यमाधिपत्य पर्येति य एव वेद य एव वेद।

में पहुँचता है। इन्द्र उसे वर मांगने के लिए कहता है। तब प्रतर्दन बोला देव, तुम्हीं मांग लो जिसे तुम मनुष्य के लिए सबसे अच्छा समझते हो। प्रतर्दन के वचन को सुनकर इन्द्र ने कहा—बड़ा छोटे से नहीं मांगा करता। तुम मेरे से छोटे हो। इन्द्र ने अपना बड़प्पन व सत्य नहीं छोड़ा। सत्य ही इन्द्र है। प्रतर्दन के वर मांगने पर इन्द्र ने कहा मुझे ही विशेष रूप से पहचानो यही मनुष्य के लिए सबसे हितकर है। मैं प्रज्ञात्मा प्राण हूँ। मेरे प्राण स्वरूप को आयु और अमृत मानकर उपासना करो। इस प्राण के प्राणित होने पर सभी प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ अनुप्राणित होती हैं। प्रज्ञात्मा प्राण से ही शरीर उत्थान योग्य बनता है। प्राण की पहचान यह है कि जब पुरुष सो जाने पर कोई स्वप्न नहीं देखता तब भी यह प्राण जागृत रहता है तथा शरीर को धारण करता है।[1] यह प्रज्ञात्मा प्राण शरीर में बाल और नाखून पर्यन्त व्याप्त है। जैसे ब्रह्माण्ड में ईश्वर व्याप्त रहता है वैसे ही यह शरीर में व्याप्त है।[2]

इस दैवोदासि प्रतर्दन और इन्द्र के आख्यान में शरीर में विभु प्रज्ञात्मा प्राण ही इन्द्र नाम से वर्णित किया गया है। वास्तव में यह एक आलंकारिक कथा है।[3]

इन्द्र का बल में समावेश

प्रजापति ने जब पुरुष का निर्माण किया तो पुरुष के शरीर में ब्रह्माण्ड के कई देवताओं को भी प्रविष्ट कराया। वाणी में अग्नि प्राण में वायु, अपान में वैद्युत, उदान में पर्जन्य आँखों में आदित्य, मन में चन्द्रमा, कान में दिशाएँ शरीर में पृथ्वी वीर्य में जल, बल में इन्द्र, मन्यु में ईश्वर मूर्धा में आकाश और आत्मा में ब्रह्म प्रविष्ट किए गए। जिस प्रकार अमृत का घट बढ़ता है उसी प्रकार इन देवों से शरीर

---

१ शांखायन आरण्यक, ५ १ २, पृ० १८ १६

ओं प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम युद्धेन च पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वरं वृणीष्वेति अथो खल्विन्द्र सत्यादेव नेयाय सत्यं हीन्द्रस्त हेन्द्र उवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यो मां विजानीयादिति स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वायुः प्राणः प्राणो वा आयुर्यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन ह्येवास्मिँल्लोके अमृतत्व-माप्नोति।

२ शांखायन आरण्यक ६ २०, पृ० २५

स एष प्राण एव प्रज्ञात्मा शरीरमनुप्रविष्ट आ लोमभ्य आनखेभ्यस्तद्यथा क्षुरः क्षुरधाने ऽवहितो विश्वम्भरो वा विश्वम्भरकुलाय एवमेवैष प्रज्ञात्मेदम् शरीरमात्मानमनुप्रविष्ट आलोमभ्य आनखेभ्यः।

३ वेद में इन्द्र, पृ० २१८-२२१

भी बढता है।[1] इन्द्र का सम्बन्ध बल से है। यही वैदिक साहित्य म ऐन्द्र शक्ति के रूप म वर्णित है। इन्द्र बल म, बल हृदय में तथा हृदय शरीर मे विद्यमान रहता है।[2]

ऐतरेय उपनिषद तो ऐतरेय आरण्यक का ही अन्तिम भाग होने से इन्द्र विषयक समान विवरण ही प्रस्तुत करता है। शाखायन ब्राह्मण को कौपीतकी ब्राह्मण भी कहा जाता है। कौपीतकी ब्राह्मणोपनिषद मे सत्य से विचलित न होने वाले इन्द्र की सहार शक्ति का वणन किया गया है। इन्द्र को सत्य स्वरूप व प्रज्ञात्मा प्राण के रूप मे वर्णित किया गया है।[3] इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र त्रिशीर्षा को मार कर अधोमुख किए हुए यतियो को प्रदान किया। कई सीमाओ व सीढियो को पार कर द्युलोक मे प्रह्लादियो को अन्तरिक्ष मे पौलोमो को तथा पृथ्वी मे कालकाश्यो को नष्ट किया। यहा त्रिशीर्षा आदि इन्द्र द्वारा नष्ट होने वाली प्राकृतिक शक्तिया प्रतीत होती हैं। इन्द्र भी वायु, विद्युत या आदित्य रूप शक्ति है।[4]

---

१ प्रजापति वा इम पुरुषमुदचत तस्मिन्नेता देवता आवेशयद वाच्यग्नि प्राणो वायुमपाने वद्युतमुदाने पर्जन्यम चक्षुष्यादित्य मनसि चन्द्रमनस श्रोत्र दिश शरीरे पृथिवी रेतस्यपो बल इन्द्र मन्यावीशान मूर्धन्याकाशमात्मनि ब्रह्म स यथा महानमतकुम्भ पिवमानस्तिष्ठेदेव हैव समुत्तस्थौ।
शाखायन आरण्यक ११ १, पृ० ३६

२ वही, ११ ६, पृ० ४१
बले म इन्द्र प्रतिष्ठितो बले हृदये दयमात्मनि।

३ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद, ३ १ २।
प्रतदनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रिय धामोपजगाम युद्धेन पौरुषेण च त हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वर ते ददानीति स होवाच प्राणोस्मि प्रज्ञात्मा त मामायुरमतमित्युपास्वायु प्राण प्राणो वा आयु। प्राण उवाचामत यावद्धयस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायु प्राणेन ह्येवामुष्मिँल्लोके मृतत्वमाप्नोति प्राण प्राणान्त सर्वे प्राणा अनुप्राणन्तीत्येवमु हैवतदिति हेन्द्रउवाचास्तीत्येव प्राणाना निश्रेयसादानमिति।

४ वही, ३ १
अथो खल्विन्द्र सत्यादेव नेयाय सत्य हीन्द्र स होवाच मामेव विजानीहि येतदेवाहं मनुष्याय हिततम मन्ये यन्मां विजानीया त्रिशीर्षाण त्वाष्ट्रमहनमवाङ्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्य प्रायच्छ बहवी सधा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीनतृणमहन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्या कालकाश्यास्तस्य मे तत्र न लोम च मामीयत स यो मां विजानीयान्नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते।

उपनिषद् वाक्य कोष में इन्द्र से सम्बन्धित वाक्यांशों का संग्रह किया गया है। इन्द्र को ब्रह्म भी प्रतिपादित किया है। इन्द्र को अन्य देवों से बढ़कर माना है। इन्द्र से श्रेष्ठ धन की याचना की गई है।[1]

(ख) 'मरुत्' शब्द की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

मरुत् देवता का अभिप्राय व स्वरूप निर्णय करने से पूर्व 'मरुत्' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति एवम् निर्वचन का विचार आवश्यक है। मरुत् शब्द की निष्पत्ति मृ धातु से प्रतीत होती है। मृ धातु मरणार्थक है या दमनार्थक अथवा रोचनार्थक। इस बात का समुचित ढंग से निर्णय करना कठिन है। ऋग्वेद के अनुसार मरुतों के वर्णन के सन्दर्भ में 'रोचन' (=चमकना) अर्थ ही अधिक प्रतीत होता है।[2] 'मृग्रोरुति' इस सूत्र द्वारा भी 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु से 'उति' प्रत्यय करने पर 'मरुत्' शब्द बनता है।[3]

ऋग्वेद में मरुत को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। मरुतों का एक देवगण है। 'गण' शब्द का प्रयोग मरुतों के लिए ही हुआ है। इनका उल्लेख एक वचन में न

---

[1] उपनिषद् वाक्य-कोष, पृ० २०६-२१०

ऐतरेयोपनिषद ३ १४—तमिदं द्रष्टमिन्द्रमित्या चक्षते।

५ ३—एष ब्रह्मैष इन्द्र

कौषीतकी उपनिषद १ ३—इन्द्र प्रजापति द्वारगोपौ

२ ६—एष उ सर्वेषदिन्द्रस्यात्मा भवति

२ ११—इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि

केनोपनिषद् २४—अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि

२७—यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शु

२८—तस्माद्वा इन्द्रो ऽतितरामिवान्यान् देवान्

छान्दोग्योपनिषद २ २२ १—इन्द्रस्य बलवदिन्द्रस्य

३—सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मन

इन्द्र शरणं प्रपन्नोऽभूवम्।

४—इन्द्रे बल ददानीति

बृहदारण्यकोपनिषद १ ४ ११—इन्द्रो वरुण सोमारुद्र

१ ५ १२—स इन्द्र स एषा सपत्न।

२ २ २—इन्द्र उक्तं तदद्र

[2] वैदिक देवशास्त्र, पृ० २०४।

[3] उणादि-सूत्र, १४।

होकर बहुवचन मे हुआ है। ये संख्या मे ६० के तीन गुणा अर्थात् १८० माने जाते हैं।[1]

एक मत के अनुसार ७ के तीन गुने २१ सदस्य युक्त भी मरुत् गण माने जाते हैं।[2] इन्हें रुद्रा[3] अथवा रुद्रिया[4] कहा गया है। रुद्र के पुत्र मरुतो की माता का नाम पृश्नि है। फलत मरुतो के लिए अनेक बार 'पृश्निमातर' विशेषण का प्रयोग भी किया गया है।[5] पृश्नि से उत्पन्न मरुतो की अग्नि के साथ तुलना की गई है।[6]

'मरुत्' शब्द से स्पष्ट रूप से झंझावात से सम्बन्ध रखने वाली और तीव्र गति से बहने वाली वायु का ही बोध होता है। निरुक्तकार यास्क ने मरुत शब्द की त्रिविध व्याख्या की है।

> मरुतो मितराविणो वा मित रोचिनो वा ।
> महद् द्रवन्ति इति वा ।[7]

मित शब्द का अर्थ योग्य, अनुरूप या सुश्लिष्ट किया गया है। जो उचित रूप से गर्जन करते हैं उन्हें ही 'मरुत्' कहा गया है।

व्याकरणिक निर्वचन करते हुए 'मित नाम सुश्लिष्टम्', 'यथा तथा योग्य रविनु तथा रवन्ति स्तनयन्ति' कहा जा सकता है। उत्तम रूप से दीप्त होने के कारण, अत्यधिक भागने के कारण भी वे मरुत् कहलाते हैं। दुर्गाचार्य के मतानुसार

---

१ (क) त्रिषप्तिस्त्वा मरुतो वावृधाना । ऋग्वेद ८ ९६ ८ ।
   (ख) The storm Gods Indra's companions and in RV VIII 96 8 are held to be three times sixty in number Sanskrit-English Dictionary, Sir Monier Williams, p 790 ।

२ ऋग्वेद, १ १३३ ६—शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
   अपूरुषघ्नो अप्रतीन शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूरसत्वभिः ॥
   अथर्ववेद, १३ १ ३—त्रिषप्तासः ।

३ ऋग्वेद १ ३९ ४—युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो न चिदाधृषे ।

४ वही १ ३८ ७—सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः ।

५ वही, १ २३ १—विश्वान् देवान् हवामहे—उग्रा हि पृश्निमातरः ।

६ वही ६ ६६ २—ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।

७ (क) निरुक्त, ११ १३
   (ख) वेदस्य व्यावहारिकत्वम् पृ० ११६
   मितं सुश्लिष्टमकरम ध्वनिकुर्वाणा, मितमकरम भेरनयन्त महत्तीव द्रवन्त मरुतः सदा विचरन्ति ।

मित शब्द के स्थान पर 'अमित' शब्द का पाठ भी कुछ आचार्यों को अभीष्ट है तदनुसार इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा—मरुत अमित अर्थात अत्यधिक गति करते हैं अथवा महान अन्तरिक्ष में गति करते हैं।[1]

यास्क प्रणीत निघण्टु में 'मरुत'[2] और मरुत [3] दोनों का उल्लेख किया गया है।

मरुत का व्याख्यान करते हुए दुर्ग ने उसे हिरण्य भी सिद्ध किया है।[4]

मरुत के तीन तात्पर्य भी सम्भव हैं—(१) जो प्रकाशवान् है। (२) जो चूर्ण करता है अथवा वृक्षों को नष्ट करता है, (३) मृत पुरुषों का आत्मा, जो हवा में वेग पूर्वक दौड़ता है। तृतीय तात्पर्य में कल्पित वैदिक धातु 'मर' मानी गई है। बड़ालबट कुह्न बेन्फे इ०एच०मायर ट्रायडर और हिलेब्राण्ट ने इस तृतीय तात्पर्य का समर्थन किया है।[5]

ऋग्वेद में मरुतों का उपस्तम्भन करते हुए कहा गया है कि हे मरुतो ! तुम्हारे अस्त्र शस्त्र शत्रुओं को भगाने अथवा अपनोदन के लिए स्थिर हों और उनके प्रतिबन्ध के लिए दृढ़ हों। तुम्हारा बल अतिशय स्तोतव्य अथवा तेजपूर्ण हो। मायावी मनुष्य को बल न हो।[6]

---

१ निघण्टु (दुर्ग भाष्य), ५ ५

मरुत इति पदनामसु पठिता मितं रुवन्ति विद्युदाविष्ट च शब्द मितमेव व्यञ्जन्ति, अमित वा बहुप्रकारं रुवन्ति स्तनयित्नुलक्षण शब्द कुर्वन्ति महद्दुस्त्वद्र-वन्ति महदन्तरिक्ष द्रवन्तीति वा मरुत।

२ निघण्टु १ २ ३७।

३ वही ३ १८, ५ ५।

४ निघण्टु (दुर्ग भाष्य), १ २

तत्र मरुत हि हिरण्य भवति कस्मात् ? मितममित वा रोचते मितममित वा रोचयति माति पूर्वार्द्धम रोतेवोत्तरार्द्धम्। हिरण्य ह्यग्न्यादितजसिधमदार्थभ्यो मित भोगादिभ्यो मित रोचते अर्थिभ्यादीयमान लाक्ष्द्वयऽपि कीर्ति कारयति। अयमेवार्थिहस्तस्थो रौति रोचते वा यद्वा म्रियन्तेऽनेनेति प्रत्यये रूपम्। म्रियते अनेन पुरुषा इति मरुत। हिरण्याय हि तस्करा पुरुषम व्यापादयन्ति।

५ वैदिक राजनीति शास्त्र, पृ० १२६।

६ ऋग्वेद, १ ३९ २

स्थिरा व सन्त्वायुधा पराणुदवीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिन ॥

मरुत् शक्तिशाली हैं। वे अपनी महिमा से बढ़े[1]। वे युद्ध में व्यवस्थापूर्वक खड़े रहे।[2] मरुत् क्रूरतायुक्त राजाओं के समान हैं।[3] वे शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले हैं।[4]

तैत्तिरीय संहिता में मरुतों को देवों की प्रजा कहा गया है।[5] ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि हे मरुद् गण ! तुम अत्यन्त दीप्ति, श्रेष्ठ गति आयुधों से युक्त हुए उड़ने वाले अश्वों को रथ में जोत कर आओ। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। अधिक अन्नों के साथ हमको प्राप्त होओ।[6]

मरुत दीप्तिमान है, अतः इनकी दीप्तिमत्ता का भी उल्लेख किया गया है। मरुत अग्नि व सूर्य के तुल्य तेज युक्त हैं।[7] मरुत् अग्नि की लपटों के समान प्रकाशित होते हैं।[8] मरुत जब धरती पर घृत की वर्षा करते हैं तो विद्युत धरती की ओर मुस्कुराती है।[9]

---

१ ऋग्वेद, १ ८५ ७
त वर्धन्त स्वतवसो महित्वना।

२ वही, १ ८५ ८
पृतनासु यतिरे।

३ वही, १ ८५ ८
राजान इव त्वेष सदृशो नर ।

४ वही, ३ २६ १५
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया ।

५ तैत्तिरीय संहिता, २ २ ५ ५
मरुतो वै देवाना विशोदेवविशेनैवास्मै मनुष्यविशमवरुन्धे सप्तकपालोभवति सप्त-गणा वै मरुतो गणश एवास्मै स जाता नवरुन्धे नूच्यमान आ सादयति विशमेवास्य अनुवतमान करोति ।

६ ऋग्वेद १ ८८ १
आ विद्युन्मद्भिमरुत स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णै ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमाया ॥

७ (क) ऋग्वेद, ६ ६६ २
ये अग्नयो न शोशुचन्।
(ख) वही, ७ ५९ ११ सूर्यत्वच ।[1]

८ वही, १० ७८ ३
अग्नीना न जिह्वा विरोकिण ।

९ वही, १ १६८ ८
अवस्मयन्त मरुत पृथिव्या यदी घृत मरुत प्रष्णुवन्ति।

शुक्ल यजुर्वेद मे भी मरुतो के स्वरूप का वणन करने वाले मन्त्र मिलते हैं। ऋग्वेद मे वर्णित मरुतो के स्वरूप मे और शुक्ल यजुर्वेद मे वर्णित मरुतो के स्वरूप मे कोई विशेष भेद प्रतीत नही होता। एक मन्त्र मे मरुतो के सम्बन्ध मे 'पृश्नि' माता तथा 'पृषती' घोडिया का उल्लेख मिलता है।[१] मरुतो के भयकर रूप का वणन करते हुए उन्हे 'प्रघासिन' अर्थात 'घातक' भी कहा गया है।[२] वे रक्षा करने मे अति चतुर हैं।[३] मरुतो से ऊर्जा एवम शक्ति को धारण करने की प्राथना भी की गई है।[४]

वाजसनयि सहिता के अनुसार मरुत यातविक कृत्यो से भी सम्बन्ध रखते हैं। मरुतो से यह प्राथना की गई है कि शत्रुओ की सेना समूह को इस प्रकार अन्धकार से ढक लें कि शत्रु वग के लोग एक दूसरे को बिल्कुल न देख सकें।[५]

ब्राह्मण ग्रन्थो म मरुतो को विश (प्रजा) कहा गया है। कृषक और वश्य कह कर भी इन्हे सम्बोधित किया गया है। मरुत्गण देवो की प्रजा है।[६]

तैत्तिरीय सहिता के अनुसार मरुतो को सात कपालो मे यज्ञ भाग प्रदान करना चाहिए।[७] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मरुतो के सात गण हैं और यह प्रत्येक गण सात-

१ यजुर्वेद, २ १६
मरुता पणतीमच्छ वशापृश्निर्भूत्वा।

२ वही ३ ४४
प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादस ।
करम्भेण सजोषस ॥

३ वही, ८ ३१
मरुता यस्या हि क्षये पाथा दिवा विमहस ।
स सुगोपातमो जन ॥

४ वही, १७ १
ता न इषमूज धत्त मरुत ।

५ वाजसनेयि सहिता १७ ४७
असो या सेना मरुत परेषामभ्येति न ओजसा स्पद्धमाना।
ता गूहत तमसापव्रतन यथामी अन्योऽन्य न जानन॥

६ ऐतरेय ब्राह्मण १ २ ३, कौषीतकी ब्राह्मण ७ ८
विशो वै मरुता देवविश ।
शतपथ ब्राह्मण, २ ५ १ १२, ५ १ ३ ३ व ६ २ १ १३

७ तत्तिरीय सहिता, २ २ ५
मारुत सप्तकपालो भवति। सप्तगणा वै मरुत ।

सात का है। इस प्रकार मरुतों की कुल संख्या ४९ सिद्ध होती है।[1] मरुत्‌गण वर्षा के अधिपति हैं।[2] मरुत संतपनकारी हैं। मरुतों ने वृत्र को सतप्त कर दिया तो वह लम्बी सांस भरने लगा।

मरुतो ह व सा तपना मध्यन्दिने वृत्र संतेपु ।
सन्तप्तो अनन्नेव प्राणन् परिदीर्ण शिश्ये ।।[3]

मरुतों को क्रीडिन् और क्रीडनका (=खिलाड़ी) कहा है। मरुत इन्द्र द्वारा वृत्रवध के समय इन्द्र की शक्ति को बढाते हैं।

मरुतों हव क्रीडिनो वृत्र हनिष्यन्तम् ।
इन्द्रमागतम तमभित परिचिक्रीडुः महयन्त ।।[4]

- प्रस्तुत अध्याय में 'इन्द्र' और 'मरुत्' का स्वरूप विवेचन किया गया है। इन्द्र देवता का मरुत् देवता के साथ अटूट सम्बन्ध है। इन्द्र मरुतों के बल से ही वृत्र का वध करते हैं। इन्द्र मरुतों को बुलाते हुए उन्हें अपने पास रहने के लिए कहते हैं।[5] मरुतों की इन्द्र के साथ बहुत गहरी दोस्ती है। वृत्र से इन्द्र का युद्ध हुआ। इसमें मरुतों ने इन्द्र को प्रोत्साहित किया। शंबर वध के समय में भी मरुतों ने इन्द्र की सहायता की और तत्पश्चात् भी मरुत् इन्द्र के साथ रह कर प्रसन्न होते हैं।[6] ऐतरेय ब्राह्मण में मनुष्यों की श्वास-प्रश्वास की प्राणवायु से मरुतों का तादात्म्य मिलता है। मरुत् ही श्वास प्रश्वास हैं। श्वास प्रश्वास रूप ही मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट सहायक व मित्र हैं। इन्द्र का वृत्र से युद्ध होने पर सब देवता इन्द्र को छोड गए। मरुतों ने ही उस समय इन्द्र का साथ दिया।[7]

---

१ शतपथ ब्राह्मण, २ ५ १ १३
सप्त-सप्त हि मारुतो गण ।

२ वही, ७ २ २ १०, ९ १ २ ५
मरुतो वै वर्षस्येशते।

३ शतपथ ब्राह्मण, २ ५ ३ ३

४ वही, २ ५ ३ २

५ वही, ४ ३ ३ ७
उप मा वर्तध्वम्। युष्माभिर्बलेन वृत्र हनानीति।

६ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ६

७ इन्द्र वै वृत्र जघ्निवास नास्तृतेति मन्यमाना सर्वा देवता अजहु ।।
तं मरुत एव स्वापयो नाजहु । प्राणा वै मरुत स्वापय । प्राणा हैव तं नाजहु ।।
ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ५

इसी प्रकार एक कथा के माध्यम से इन्द्र और मरुत् के गूढ सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। इन्द्र ने वृत्र को मारने के समय दूसरे सभी देवताओं से सहायता मांगी। जब सभी देवता वृत्र पर एक साथ आक्रमण करने के लिए बढने लगे तो वृत्र ने भयकर गर्जन किया। वृत्र की घोर गर्जना सुनकर सभी देवता भाग खडे हुए। केवल मरुत ही इन्द्र का उत्साह बढाने के लिए साथ रहे।[1]

इन्द्र और मरुत के गूढ सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए इन्द्र और मरुत को युगल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वायु का मरुतों से सम्बन्ध

वायु का मरुतों के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इन्हें दिव्य लोक की नदियों से उत्पन्न कहा गया है। वायु प्रवाहों की सहायता से मरुत मेघों को इधर-उधर ले चलते हैं जिससे वर्षा होती है तथा वर्षा से पुष्टिकारक अन्न की प्राप्ति होती है।[2] ऋग्वेद में ही एक स्थान पर वायु की मरुतों के साथ तुलना करते हुए मरुतों को वायु और तूफान का देवता कहा गया है।[3] वात के साथ भी मरुतों की तुलना की गई है इन्हें वात के समान स्वयुज कहा है क्योंकि ये रथ को स्वयं जोतते हैं।[4]

संस्कृत कोषकारों के मतानुसार वायु शब्द के पर्याय एवं नानार्थ

हलायुध कोश में वा गतिगन्धनयो' से कृ वा पा—' सूत्र से उण् प्रत्यय तथा 'आतो युक चिण् कृतो से युक् आगम होने पर 'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति मानी है। श्वसन स्पर्शन, मातरिश्वा, सदागति, पृषदश्व, गन्धवह गन्धवाह, अनिल, आशुग,

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ६

इन्द्रो वै वृत्र हनिष्यन सर्वा देवता अब्रवीद्। अनु मा उपतिष्ठध्वम् उपमा आह्वयध्वम। तथेति। तम हनिष्यन्त आद्रवन। सो वेद माम् वै हनिष्यन्त आद्रवन्ति। हन्त इमान भीषये तानभि प्राश्वसीत। तस्य श्वसथाद् ईषमाना विश्वेदेवा अद्रवन् मरुतो ह एनं नाजहु। 'प्रहरभगवो जहि वीरयस्व' इत्येता वाच वदन्त उपातिष्ठन्त।

२ ऋग्वेद, ८ ७ ३

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रास पृश्निमातर।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम ॥

३ वही १० ७८ ३

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीना न जिह्वा विरोकिण।
वर्मण्वन्तो न योधा शिमीवन्त पितृणा न शंसा सुरातय ॥

४ ऋग्वेद १० ७८ २

वातासो न स्वयुज ।

समीर, मारुत, मरुत जगत्प्राण, समीरण, नभस्वान वात, पवन, पवमान, प्रभञ्जन, जगत्प्राण, वाह, धूलिध्वज फणिप्रिय, वाति, नभप्राय भोगिकान्त, स्वकम्पन, कम्पलक्ष्मा, आवक, हरि, वास सुखाश मगवाहन, सार चचल विहग, प्रकम्पन, नभस्वर, निश्वासक स्तनून, पृणता पति आदि वायु के पर्याय के रूप मे अभिप्रेत है।[1]

अमरकोश म श्वसन, स्पशन, वायु मातरिश्वा, सदागति, पृषदश्व, गन्धवह, गन्धवाह, अनिल आशुग, समीर, मारुत, मरुत, जगत्प्राण, समीरण नभस्वान वात, पवन, पवमान, प्रभञ्जन आदि को वायु क पर्याय के रूप म स्वीकार किया गया है।[2]

उणादिकोश के अनुसार—

उणादिकाश मे महादेव वेदान्तिन ने भी वायु शब्द को वा से 'कृवा पा०' सूत्र द्वारा उण् प्रत्यय लगा कर ही वायु शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार की है।[3]

पौराणिक काश के अनुसार—

पौराणिक कोश म उपनिषद्, वेदान्त, वैशेषिक दशन, न्याय दशन आदि मे वायु के विषय म जो उल्लेख उपलब्ध होते हैं उन सबका सार दिया है जो कि निम्न प्रकार से है—उपनिषद और वेदा त इस आकाश से उत्पन्न मानते हैं। वैशेषिक दशन इसे द्रव्य मानता है। साख्यानुसार यह स्पर्शतन्मात्रा से उत्पन्न होता है तथा इसे अनिल भी कहा गया है और यह देवता के रूप म स्वीकार किया गया है।[4]

दयानन्द वदिक काश के अनुसार—

'दयानन्द वैदिक कोश' मे वायु के विषय म इस प्रकार उल्लेख किया गया है—'यो याति स पवन'[5] अर्थात जो गमन करता है वह पवन अर्थात वायु है। 'प्राण इव प्रिय' अर्थात यह प्राणो स भी प्रिय है।[6] वायु को सब जगत का धारण करने वाला और अत्यन्त बलवान कहा गया है।

---

१ हलायुधकोश, पृ० ६०२
वातीति वा गतिगन्धनयो। कृ-वापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण इति उण आनायुक् विण् कृता इति युक्।

२ अमरकोश, १ १ ६१, ६२
श्वसन स्पशना वायुर्मातरिश्वा सदागति।
पृषदश्वो ग धवहो गन्धवाहानिलाशुगा॥
समीरमारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणा।
नभस्वद्वातपवन पवमान प्रभञ्जना॥

३ उणादिकोश, १ १।

४ ब्रह्मवत्त पुराण, २ २५ १२।

५ ऋग्वेद भाष्य ६ ४ ५।

६ यजुर्वेद भाष्य २ २ १५।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'वा' अथवा 'वी' से ही वायु शब्द व्युत्पन्न हुआ। यास्क तथा दुर्ग आदि ने भी इन्हीं दोनों धातुओं से ही 'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। निरुक्त व्याख्याकारों ने वायु के पर्याय के रूप में वात, शुन, मातरिश्वा, त्वष्टा तथा मरुत् आदि को स्वीकार किया है। लेकिन संस्कृत कोशकारों ने सदागति, अनिल, समीर, जगत्प्राण, पवन आदि को भी वायु के पर्याय के रूप में ही सम्बोधित किया है।

अग्नि, वायु और सूर्य की त्रयी में इन्द्र वायु के प्रतिनिधि हैं। इन्द्र को वायु के घोड़े ले जाते हैं।[1] इन्द्र वायु के सारथि हैं। विल्सन के अनुसार इन्द्र ही वायु के सारथि माने गए हैं।[2] इन्द्र और वायु क्षत्रिय देव हैं। ये सहस्र आँखों वाले, बुद्धि के अधिपति तथा मन के समान वेगवान हैं। अपनी रक्षार्थ लोग इन्हें आह्वान करके बुलाते हैं।[3]

वायु का इन्द्र से सम्बन्ध

वायु और इन्द्र दोनों अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं। निरुक्त के अनुसार जहाँ अग्नि और सूर्य को पार्थिव और दिव्य देवता माना है वहाँ वायु और इन्द्र को अन्तरिक्ष स्थानीय देवता माना गया है।[4] कुछ मन्त्रों में इन्द्र को वायु का विशेषण भी बनाया गया है।[5] कुछ स्थलों में इन्द्र को वायु के रूप में परिलक्षित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि जो यह वायु है वह इन्द्र है और जो इन्द्र है वही वायु

---

१ ऋग्वेद, १० २२ ४
　　युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्यवज्रिव ।
　वही, १० २२ ५
　　त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋजात्मना वह ध्यै ।
२ वही ४ ४६ २
　　शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वा इन्द्रसारथि ।
　　वायो सुतस्य तृम्पतम ।।
　वही, ४ ४८ २
　　निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वा इन्द्रसारथिः ।
　　वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ।।
　द्र०—ऋग्वेद संहिता विल्सन तृतीय भाग पृ० २०६-११।
३ ऋग्वेद १ २३ ३—इन्द्रवायू मनोजुवा विप्राहवन्त ऊतये ।
　　　　सहस्राक्षा धियस्पती ।।
४ निरुक्त, ७ ५—तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्नि पृथिवी स्थानो
　　　　वायुर् वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थान सूर्यो द्युस्थान ।।
५ ऋग्वेद, ६ १४ १०— इन्द्रेण वायुना
　वही ६ २७ २—एव इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परिषिच्यते ।

है, जो पवित्र करता है वह इन्द्र अर्थात वायु है।[1] वायु और इन्द्र धन से समृद्ध हैं तथा सोमरस की विशेषताओं को जानते हैं।[2] वायु और इन्द्र ये दोनों उन लोगों को उत्तम मार्ग पर ले जाते हैं जो इन्हें साम प्रदान करता है।[3]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इन्द्र और मरुत दोनों देवता परस्पर अटूट सम्बन्ध रखते हैं। इन्द्र परम ऐश्वर्य का द्योतक है तथा मरुत् तीव्रता से प्रवहमान वायु के सूचक हैं। संहिताओं, ब्राह्मणों आरण्यकों और उपनिषदों में विविध रूपों में इनका वर्णन उपलब्ध होता है। आधिभौतिक एवम् आधियानिक व्याख्याकार अपनी अपनी दृष्टि से इनका देवत्व प्रतिपादित करते हैं। इन्द्र और मरुत विषयक अनेक आख्यान व कथाएं प्रचलित हैं। इन्द्र द्वारा वृत्रवध, इन्द्र द्वारा सोमपान, इन्द्र की मरुतों द्वारा सहायता आदि सभी वृत्तान्त इनके सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। इससे इनका स्वरूप भी निखर कर सामने आता है। आध्यात्मिक दृष्टि से ये परमात्म तत्त्व के ही द्योतक हैं। इनकी शक्ति ईश्वरीय शक्ति है।

१ शतपथ ब्राह्मण, ४ १ ३ १९
यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः।
वही, १४ २ २ ६
अयं वा इन्द्रो यो य पवते।
२ ऋग्वेद, १ २ ५
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
३ वही, १ २ ६
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि त्था धिया नरा॥

तृतीय अध्याय

पाश्चात्त्य विद्वानों को अभिमत 'इन्द्र' एवम् 'मरुत्' का स्थूल स्वरूप

प्रस्तुत अध्याय म पाश्चात्य एवम तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानो का अभिमत 'इन्द्र' एवम 'मरुत' का स्थूल स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध म यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यूरोपीय विद्वानो ने वेदार्थ व वेदानुशीलन प्रस्तुत करते हुए सायणाचार्य के भाष्य को आधार ग्रन्थ के रूप मे लिया है। वैदिक ग्रन्थो के शुद्ध संस्करणो का सम्पादन एव प्रकाशन अनुवाद तथा व्याख्या—इन तीन भागो मे पाश्चात्य विद्वानो द्वारा किया गया वेद कार्य विभाजित किया जा सकता है। प्रबुद्ध, चिन्तनशील व प्रतिभाशाली होने के बावजूद भी पाश्चात्य वैदिक विद्वान वेद के सांस्कृतिक एवम् आध्यात्मिक स्वरूप से अपरिचित ही थे। इनकी वेद व्याख्या सामान्य रूप से वायुमण्डल से सम्बन्धित और अनुष्ठान परक है।[1]

वेदो का वेदार्थ व व्याख्यान करने वाले पाश्चात्य विद्वानो को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में उन विद्वानो का लिया जा सकता है जिन्होंने प्राचीन भारतीय भाष्यकारो के दोष दिखाए तथा उनकी व्याख्या को निन्दनीय समझा। उनकी स्थापना थी कि आधुनिक युग म वेद मन्त्रो का अर्थ तुलनात्मक भाषा ध्वनिक व ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर बेहतर रूप से किया जा सकता है। बनफी और राथ इसी समीक्षात्मक पद्धति (Critical Method) के समर्थक थे। राथ ने वैदिक जर्मन कोष का निर्माण किया तथा वैदिक भाषा विज्ञान की स्थापना की। राथ के अनुसार रूप तथा अर्थ म समानता रखने वाले सभी वैदिक शब्दो की बारीकी के साथ तुलना करते हुए वेद के आन्तरिक प्रमाणो के आधार पर प्रसग, व्याकरण एव शब्द निरुक्ति का ध्यान रखते हुए संस्कृत के सन्दर्भ म वैदिक भाषा के अध्ययन का उपयोग करते हुए तथा अवेस्ता तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान म उपलब्ध साक्षियो की उपेक्षा न करते हुए ही वेदार्थ किया जाना उचित है। राथ ने शब्दों की व्युत्पत्ति पर तो जोर दिया किन्तु भारतीय परम्पराओ की पूर्णरूपेण अवहेलना की।[2]

द्वितीय वर्ग म व विद्वान हैं जिन्होंने राथ के विरोध मे सायण आदि के मध्यकालीन भाष्यो की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने स्वीकार किया कि वेद मन्त्र

---

१ A Comparative Analytical Study of the Vedas p 67।

२ A Comparative Analytical Study of the Vedas p 20।

शुद्ध भारतीय हैं। उत्तरवैदिक काल के वाङ्मय और तत्कालीन सभ्यता व संस्कृति के आधार पर ही वेद व्याख्या करना ठीक है।[१] एम०एच० विल्सन, मैक्समूलर तथा ग्रिफिथ आदि ने इसी दृष्टि से वेद-भाष्य किए। परम्परा से अभिज्ञ होने के कारण तथा वेदाङ्ग के पर्याप्त ज्ञान के अभाव से इनके अनुवादों में मध्यकालीन वेदभाष्यों की न्यूनताओं के साथ साथ अन्य दोष भी समाविष्ट हो गए।

ततीय वर्ग में वे विद्वान् हैं जिन्होंने समन्वित वेद व्याख्या पद्धति का समर्थन किया। आर० पिशल तथा के० एफ० गैल्डनर जैसे जर्मन विद्वानों ने आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार व्याख्या करते हुए सायण आदि भारतीय भाष्यकारों का भी सहयोग लिया।

इस समन्वित पद्धति के अनुसार वेद की व्याख्या स्वयं वेद के आधार पर की जानी चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के साथ साथ सायण आदि भारतीय भाष्यकारों से भी यथा योग्य सहायता अवश्य लेनी चाहिए तथा बाह्य विचारों व पूर्वाग्रहों को वेद पर लागू नहीं करना चाहिए। पिशल, गैल्डनर, लुडविग आदि ने इसी पद्धति को अपनाया। गाल्डस्टुकर ने भी प्राचीन भाष्यकारों के योगदान की सराहना की।

"Without the vast information which those commentators have disclosed to us—witho t their method of explaining the abscurest text, —in one word without their scholarship we should still stand at the outer doors of Hindu antiquity [2]

कालब्रुक, विल्सन, रुडाल्फ राथ मैक्समूलर ग्रिफिथ ग्रासमान, व्हिटनी, लुडविग, पिशल गैल्डनर, मैक्डानल, ओल्डन बर्ग ब्लूमफील्ड, विन्टर नित्स कीथ, स्टीवेन्सन आदि पाश्चात्य वैदिक विद्वानों ने वेदों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।[3]

---

१ वदिक रीडर (मैक्डानल), इन्ट्राडक्शन, पृ० ३०।

२ वैदिक व्याख्या विवेचन, भूमिका, पृ० ११।

3 An Encyclopaedia of Indian Literature Ganga Ram Garg (Mittal Publishers Delhi 1982)
   (1) Sir Henry Thomes Colebrooke Essay on the Vedas or Sacred writings of the Hindus (1765 1836)
   (2) Horace Hayman Wilson (1786 1860), Rgveda Samhitā (English Translation)
   (3) Rudolph Roth (1826-1896) Atharvaveda Śaunaka Śākhā (Roth & Whitney) Atharvaveda, Paippalāda śākhā Nirukta Sanskrit Worter Buch (Nāma Vaidika Kośa)
   (4) Max Muller Fridrich (1823 1900) Rgveda (Sāyana Bhāṣya), Rgveda (Text) Ṛkprātiśākhya (Text & German

इन्होंने वैदिक ग्रन्थों के शुद्ध सम्पादन के साथ साथ अनुवाद, कोश व विवेचनात्मक ग्रन्थ निर्माण का काम भी किया।

Translation) History of Ancient Sanskrit Litrature The Vedas India what can it teach us The Sacred Books of the East English Translation of Brhaddevatā Hymns of Rgveda in Samhitā and Pada Texts Essays on Comparative Mythology

(5) T H Raejh Griffith, (1826 1906), English Translation of Four Vedas

(6) Hermann Grassonann (1809 1977) Worter Buch Juin Rg-veda (Sanskrit German Dictionary of the words of Rg-veda), German Translation of Rgveda

(7) William Dwight Whitney, (1827 1894) Atharveda (Śaunaka Śakha) (Roth & Whitney) Atharvaveda Prātiśākhya Taittiriya Pratisakhya Vedic Research in Germany, History of Vedic Texts

(8) J C Ludwig (1792 1862) Rgveda (English Translation)

(9) Richard Pischel (1849 1908) History of Ancient Indian Literature

(10) Karl F Geldner (1152 1929) German Translation of Rgveda Vedische Studies (Vedic Studies)

(11) Arthur Antony Macdonell (1864 1930) Sarvanukramani (Critical Editions) A History of Sanskrit Literature Brhaddevatā, Vedic Grammar Vedic Mythology, Vedic Reader India s Past Vedic Index of Names and Subjects Vedic Religion English Translation of Uṣas, Hymns of the Rgveda Lectures on Comparative Religion Vedic Metre and Vedic Accent

(12) Hermann Oldenberg (1854 1920) Hymns des Rgveda Vedic Hymns Religion des Veda (The Religion of the Veda) Ancient India It s Language and Religion Translation of Agni Hymns of the Rgveda (I st Mandala), Rgveda Text Critische und Exegetische Noten A History of Ancient Indian Literature in German German Translation of Sankhayana Gṛhyasutra

(13) Maurice Bloomfield (1855-1928) Atharva Samhitā (Paippalada Śakha) Text Edition Hymns of the Atharvaveda, Vedic Concordance Rgvedic Repetitions The Atharva veda and Gopatha Brahmana The Vedic Variants Religion of the Veda Kauśika Sutra of Atharvaveda

इन विदेशी विद्वानों ने भी वेदाध्ययन के प्रति पूर्ण रूपेण पक्षपात रहित होने का परिचय नहीं दिया। वैदिक धर्म को अपमानित करने के लिए उसे हेय रूप में प्रस्तुत किया गया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ बताकर भारतीयों का उसकी ओर प्रेरित किया गया। मैक्समूलर के पत्रों व मानियर विलियम्स द्वारा संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी की भूमिका में लिखे शब्दों से इसकी पुष्टि का प्रमाण मिलता जाता है।[1] इन्होंने वेदों में आदिम युग की बहुत पिछड़ी व अन्धविश्वास ग्रस्त संस्कृति को ही खोजने में तत्परता की। वैदिक देवताओं और उनके उपासकों को असभ्य कहा गया।[2]

पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित एतद्देशीय विद्वानों ने भी उनका समर्थन किया। श्री राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा लिखित 'इण्डो आर्यन्स' पुस्तक में प्राचीन आर्यों के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्हें गोमांस भक्षक व मद्य सेवन करने वाला सिद्ध किया है। वैदिक-काल में विवाह के अवसर पर भी गाय को मार कर उसके मांस से अतिथियों का तृप्त किया जाता था। वैदिक काल में सुरा और शराब एक लोक प्रिय पदार्थ था। यह पेय

(14) Maurice Winternitz (1863 1937)
Ein Hymns and Savitar A Concise Dictionary of Eastern Religions Race and Religion Ethics in Brahmanic Literature, A History of Indian Literature, Some Problems of Indian Literature Āpastamba Mantra Patha

(15) Arther Berriedala Keith (1879 1944) Aitareya Āranyaka (Text Edition) The Religion and Philosophy of the veda and Upanisad Rgveda Brahmanas (Aitareya and Kausitaki) Veda of the Black Yajur School entitled Taittiriya Samhitā Śankhyana Āranyaka (Text Edition) Vedic India of Names and subjects (Macdonell and Keith)

(16) J Stevenson Sāmaveda (English Translation) Rgveda (First Aṣtaka) English Translation

१ (क) वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ३२-४०
(ख) यजुर्वेदभाष्य विवरण, भूमिका, पृ० ७०-७३
(ग) वेद—मीमांसा भूमिका, पृ० १४ १७
(घ) वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ३३ ३७

2. A large number of vedic hymns are childish in the entrance editions low and common place'
Chips from a German Workship II ed 1866 p 27
वैदिक व्याख्या विवेचन, पृ० १३

साम से भी अधिक नशीला था। एन भ्रामक और निराधार निष्कर्ष निकालने में इन वेद विद्वानों को किञ्चित् भी संकोच नहीं हुआ।[1]

वास्तव में जिस प्रकार सायण आदि का दृष्टिकोण यज्ञ की किसी प्रक्रिया को सम्मुख रख कर मन्त्र का नियोजन करना था, उसी प्रकार पाश्चात्य भाष्यकारों का लक्ष्य वेदों का भाष्य करते हुए विकासवादी दृष्टिकोण से विचार करना था। मैक्समूलर ने सायणभाष्य का अनुवाद करते हुए विकासवाद को अपने सामने रखा। विकासवाद के सिद्धान्तानुसार आदि मानव सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, वायु आदि शक्तियों को देखता था तथा वह इन सबको देवता मान कर पूजा करता है। इसलिए मैक्समूलर की दृष्टि में वेदों में एकेश्वरवाद का विचार सम्भव नहीं। विभिन्न देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान होने के कारण वेद में एकत्ववाद के स्थान में बहुत्ववाद होना स्वाभाविक है। चन्द्रमा एक देवता है। पृथिवी एक देवता है तथा वेद का ऋषि इन सब देवताओं की पूजा करता था।[2]

पाश्चात्य भाष्यकारों के अनुसार वेद का ऋषि जब अग्नि की उपासना करता था तब उसमें उन सब गुणों का भी वर्णन कर देता था। जो किसी भी अन्य देवता में पाये जाते हैं। जब वायु की उपासना करता था तब वायु में भी अन्य सब गुणों का वर्णन कर देता था। उनके अनुसार एकेश्वरवाद का विचार मानव मस्तिष्क में बहुत बाद में आया। इसी विचारधारा पर चलते-चलते ही मैक्समूलर ने एकेश्वरवाद (Monotheism) और बहुदेवतावाद (Polytheism) के स्थान पर हीनोथीइज्म (Honotheism) की स्थापना की। जब किसी देवता की उपासना की जाय तब उसी में सब गुण आरोपित कर दिए जाएं व अन्य देवताओं को उस देवता से हीन कल्पित कर लिया जाए तो हीनोथीइज्म कहलाता है।[3]

वेदों में एक ईश्वर की उपासना को स्पष्टतया घोषित करते हुए ऋग्वेद के

---

१ (क) वेदों का यथार्थ स्वरूप पृ० ३७
(ख) Vedic Age pp ३८६ ३८३

2 A Comparative & Analytical study of The Vedas pp 32 33

3 Each vedic poet seems to exalt the particular god whom he happens to be singing to a position of supremacy It would be easy to find in the numerous hymns of the Veda, passages in which almost every single God is represented as supreme and absolute

Ancient Sanskrit Literature p 353

The Concept of God in the Vedas, p 29

एक मन्त्र म कहा गया है कि ईश्वर एक है उसे अग्नि, यम आदि नामो से कहा जाता है।[1]

महर्षि अरविन्द के अनुसार पाश्चात्य वेद भाष्यकार वेदो का भाष्य करते हुए विकासवाद के पूर्वाग्रह स इतन अधिक ग्रस्त हो जात हैं कि जहाँ वेदो का अथ विकासवाद को पुष्ट नही करता वहाँ वे अथ को तोडने मरोडने मे सकोच नही करत। यदि कभी वैदिक व्याख्या का कोई ऐसा प्रयत्न किया गया जिसमे चतुराई पूण कल्पना के लिए अधिक स अधिक खुली लगाम छोड दी गई है जिसमे सन्देहास्पद निर्देशो को निश्चित प्रमाणो के तौर पर झट से स्वीकार कर लिया गया है तो यह निस्सन्देह पाश्चात्य विद्वानो द्वारा किया गया वेद व्याख्या का काय ही है।[2]

महर्षि अरविन्द वेदो म एकेश्वरवाद की सिद्धि का ही समथन करत हैं।[3]

इन सब तथ्यो को दृष्टिगत रखते हुए भी फ्रेडिक मैक्समूलर, ए० ए० मैक्डानल, एच० एच० विलसन वी० जी० रेले, जे० मुहर, जेड० ए० रेगाजीन, जे०

---

१ इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥
ऋग्वेद, १ १६४ ४६

'The call Him Indra (God of Supreme Power), Mitra (The friend of all), Varuna (the most desirable being) Agni (the all knowing), Divya (the shyning one) and Garutman (the mighty soul) The sayes describe the one being in various ways, calling Him Agni, Yama and Matrisāv
The Concept of God in the Vedas p 24

२ महर्षि दयानन्द, पृ० १३

3 ' What is the main positive issue in this matter ? An interpreta tion of the veda must stand or fall by its central conception of the vedic religion and the amount of support given to it by the intrinsic evidence of the veda itself The vedic hymns are chanted to the one deity under many names, names which are used and even designed to express His qualities and powers Agni contains all other divine powers within Himself, the Maruts are described as all the gods One deity is addressed by the names of others as well as his own, or most commonly, he is given as lord and kind of the Universe attributes only to the Supreme Deity '
Dayānanda and the Veda p 17

एन० फरगुहर और एच० डी० ग्रिसवाल्ड आदि पाश्चात्य विद्वानो के महान परिश्रम को भुलाया नही जा सकता । इन्होंने यथामति अपना मत व्यक्त करने मे सकोच नही किया। अब इनके मतानुसार इन्द्र और मरुत का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है ।

मैक्समूलर ने इन्द्र को उज्ज्वल दिन का देवता माना है। इसका अश्व सूय है। मरुत्गण इसके साथी हैं ।[1] सायण न ऋक्सहिता पर भाष्य लिखा है । इसी सायण कृत ऋक्सहिता भाष्य पर मैक्समूलर न तथा विलसन ने भी अपना अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है । तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चलता है कि विलसन न तो अनुवाद करते हुए सायणभाष्य का ही अनुकरण किया है, किन्तु मैक्समूलर ने अनुवाद करते हुए अपने स्वतन्त्र विचारो को भी बहुत जगह प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र मे 'उस्रिया' शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] सम्पूर्ण मन्त्र का अनुवाद करते हुए विलसन ने सायण भाष्य को ही आधार बनाया ।

'हे इन्द्र तुमने मरुतो के साहचय से गुहा मे छिपाई गई गायें खोज निकाली।[3] मैक्समूलर के द्वारा उस्रिया का अथ उषायें, उदन और बादल किया गया है ।

हे इन्द्र । तीव्रगामी मरुतो की सहायता से तुमने उजले दिनो अथवा बादलो को, जो कि छिपे थे, प्राप्त कर लिया' ।[4]

इन्द्र की शक्ति के द्वारा प्रत्येक रात्रि के अन्त मे उषायें, दिन तथा बादल मुक्त

---

1 The Sacred Books of the East Vol XXXII, Vedic Hymns, Part-I, Rig 1 6 1 Note 1, p 16

The poet beings with a some what abrupt description of a sunrise Indra is taken as the god of the bright day whose steed is sun and whose companions are the maruts, or the strem gods

२ ऋग्वेद, १ ६ २५

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहाचिदिन्द्रवह्निभि ।
अविन्द उस्रिया अनु ।

3 Ibid R V 1 6 5 p 37

Associated with the conveying Maruts the traversers of place difficult to access thou Indra last discovered the cows hidden in the cave

4 Ibid R V 1 6 5, p 14

Thou O Indra, with the swift Maruts, who break even through the strong hold hast found even in their hidding place the bright ones (days or clouds)

किए जाते हैं। इन्द्र के साथी मरुत इसमे सहायता करते हैं।[1] जल को बरसने से रोकने वाले वृत्र को मार कर पृथ्वी पर वर्षा करके मानवो का कल्याण करना ही इन्द्र का महान् कार्य है।[2]

मैक्डानल के अनुसार इन्द्र का स्वरूप

पाश्चात्य वैदिक विद्वानो मे प्रो० मक्डानल ने वैदिक देवताओ का विवेचन करने म घोर परिश्रम किया। फलरूप वदिक माइथालोजी ग्रन्थ का अंग्रेजी म प्रणयन हुआ। डा० सूयकान्त न इसी ग्रन्थ का 'वैदिक देव शास्त्र' के रूप म हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। प्रो० मैक्डानल इन्द्र को अनिश्चित अथ वाला कल्पित देवता स्वीकार करते हैं। वदिक ऋषियो ने इन्द्र की भिन्न भिन्न रूप से स्तुति की है। वज्रपाणि इन्द्र को जो कि युद्ध मे अन्तरिक्षस्थ दानवो को छिन्न भिन्न करता है, योद्धा लोग अनवरत आमन्त्रित करते हैं।[3] युद्ध के प्रमुख देवता होने के नाते उन्ह भीम (भयकर) शत्रुओ के साथ युद्ध करने वाले आर्यों के सहायक के रूप मे और सभी देवताओ की अपेक्षा कही अधिक बार आमन्त्रित किया गया है। साधारण ढग से तो इन्द्र को अद्वितीय उदारचेता सहायक कहा गया है।[4] उसे उपासको के मुक्ति दाता और उनके अधिवक्ता, उनकी शक्ति, उनकी सुरक्षा की भित्ति के रूपो चित्रित किया गया है। उनके मित्र को कभी कोई क्षति पराभूत नही करती। अनेक बार तो इन्द्र को उपासका का

---

1 Ibid, Note 3 p 44
'The bright cows are here the cows of the morning, the downs or the days themselves, which era represented as rescued at the end of each night by power of Indra or similar solar gods Indra's companions in that daily rescue are here the Maruts, the sterms the same companions who act even a more prominent part in the battle of Indra against the dark clouds These two battles are often mixed, up together, so that possibly *Usriyah may have been meant for clouds*

2 Ibid R V I, 1 6 5 8 Note 1, p 198
Here again Indra claims everything for himself, denying that Maruts in any way assisted him while performing his great deeds These deeds are the killing of Vṛitra, who witholds the waters i e the rain from the earth and the consequent libera tion of the waters so that they flow down freely for the benefit of Manu, that is, of man

३ ऋग्वेद, ४ २४ ३
तमिन्नरो विह्वयन्त समीके।

४ शतपथ ब्राह्मण, ८ ४ १ १
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र।

मित्र अथवा कभी कभी उनका भाई भी बताया गया है। उन्हें पिता या पिता माता भी कहा गया है। उनके दोनों हाथ धन से भरपूर हैं। मघवन विशेषण ऋग्वेद में इनका अपना ही बन गया है और वेदोत्तर कालीन साहित्य में तो यह इनका नाम ही बन गया है।[1] यद्यपि इन्द्र की अपनी प्रधानगाथा वृत्र युद्ध ही है तथापि शौर्य वीर्य के कर्त्ता होने के नाते उनके साथ और बहुत-सी कहानियाँ भी जुड़ गई हैं।[2] यद्यपि इन्द्र के द्वारा दासों या दस्युओं पर पाई विजय के आशिक संकेत जहाँ तहाँ मिलते हैं मौलिक रूप में ये लोग मानवीय शत्रु हैं, जिनका निष्कर्ष है—यद्यपि इन्द्र के द्वारा पाई गई व्यक्तिगत दस्युविजय के वर्णनों में गाथात्मक तत्त्व घुल मिलकर अस्पष्ट हो गए हैं, तथापि इन गाथाओं का आधार पार्थिव एवम् मानवीय है—इन्द्र के ये शत्रु पुरोहितों के पूर्वज नहीं प्रत्युत राजकुमार योद्धा हैं, जो सम्भवतः ऐतिहासिक व्यक्ति रहे हैं।[3]

प्रो० ए० ए० मैक्डानल वेदों के अन्तः साक्ष्य से सिद्ध करते हैं कि इन्द्र को सूर्य कहा गया है। तीन या चार मन्त्रों में इन्द्र का तादात्म्य स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से सूर्य के साथ किया गया है। उत्तम पुरुष में बोलते हुए इन्द्र एक बार कहते हैं कि वे ही मनु ही थे वे ही सूर्य थे।[4] एक बार उन्हें सीधे सूर्य ही कहा गया है।[5] एक दूसरे मन्त्र में सूर्य और इन्द्र का एकत्र आह्वान इस प्रकार किया गया है मानो वे दोनों एक ही व्यक्ति हों। एक मन्त्र में इन्द्र के लिए सवितृ—विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[6] शतपथब्राह्मण भी इन्द्र की तद्रूपता सूर्य के साथ स्थापित करता है और वृत्र की चन्द्रमा के साथ।[7] यहाँ यह तथ्य ज्ञातव्य है कि यद्यपि मैक्डानल वेद के अन्तः साक्ष्य से यह दिखाते हैं कि इन्द्र को ही सूर्य कहा गया है फिर भी वे ऋग्वेद में इन्द्र पद को सूर्य अर्थ का वाचक स्वीकार नहीं करते। वे इन्द्र का लोकोत्तर उत्कर्ष प्रतिपादित करने पर भी इन्द्र शब्द को परमेश्वर वाचक स्वीकार नहीं करते।[8]

---

१ वैदिक देवशास्त्र पृ० १५२-१५४

२ वही, पृ० १५५

३ वही, पृ० १५६

४ ऋग्वेद ४, २६ १
   अहं मनुरभवम् सूर्यश्च।

५ वही, १०, ८ ९२।
   स सूर्य पर्युरू वरास्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।

६ वही २, ३०, १।
   ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।

७ शतपथ ब्राह्मण १ ६, ४, १८।
   तद्वा एष एवेन्द्रः य एष तपत्यथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः।

८ वैदिक देव शास्त्र, पृ० १३६ १३९-१४०।

ऋग्वेद का अंग्रेजी मे सायण भाष्य के अनुसार अनुवाद प्रस्तुत करने वाले पाश्चात्य विद्वान् एच० एच० विल्सन इन्द्र को तीक्ष्ण सींगो वाले साड की तरह भयकर मानते हैं जो अकेले ही सब लोगों को अपने स्थान से दूर कर देता है। वह अदानशील और भक्ति रहित व्यक्ति के धनों को नष्ट कर देता है तथा दानशील भक्त जन को धनों से समन्वित करता है।[1] सायण भाष्य का ही अनुकरण करते हुए विभिन्न प्रसगो म इन्द्र के भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं। कहीं पर इन्द्र सूर्य को चमकाने वाला है तो कहीं इन्द्र ही सूर्य मे वर्णित है।[2] इन्द्र ने अपनी शक्ति से स्वर्ग और पृथ्वी को विशाल बनाया है। इन्द्र ने सूर्य को प्रकाशित किया है। इन्द्र म सब प्राणी समाये हैं। अभिषुत सोम की धाराएँ इन्द्र की ओर प्रवाहित होती हैं।[3] इन्द्र पृथ्वी तथा मनुष्यों का स्वामी है और उस विविध धन सम्पदा का भी स्वामी है जो पृथ्वी पर विद्यमान हैं। उस कारण वह दानी जन को धन प्रदान करता है। हमारे द्वारा स्तुति किया गया वह इन्द्र हम धनों से परिपूर्ण करे।[4]

प्रो० विल्सन क द्वारा कृत ऋग्वेद के अंग्रेजी अनुवाद के अनुसार इन्द्र सारे चराचर का स्वामी है। विश्व का धारक है। जिस प्रकार दूध से भरपूर गाय के स्तन होते हैं उसी प्रकार सोम से भरपूर पात्रों से इन्द्र की स्तुति की जाती है[5] ऋग्वेद के इन्द्र से सम्बन्धित भत्र का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए वे लिखते हैं कि हे इन्द्र! जैसे ही तुम पैदा हुए तुमने अपने बल हेतु सोम को पिया, माता तुम्हारी (अदिति) ने तुम्हारी महत्ता की प्रतिपत्ति की। इसलिए तुमने विशाल अन्तरिक्ष को परिव्याप्त किया हुआ है। तुमने युद्ध मे देवों के लिए धन प्राप्त कराया है।[6]

---

1 Rigveda Sambita (H H Wilson), 5, 2, 29, 1 Vol V pp 162 63
Indra who is fomidable as a sharp hormed bull singly expels all men (from their stations) Than who art the (despoiler) of the ample wealth of him who makes no offerings at the giver of riches to the presenter of frequent oblations

2 Ibid 5 8 14 30, Note 3, p 244

3 Ibid, 5 7 26 6 p 226

4 Ibid 5 3 11 3 Vol 5, p 76
Indra is lord of the earth and of men (his is) the various wealth that exists upon the earth, thence he gives riches to the donor (of oblations) may be, glorified by us, bestow upon us wealth

5 Ibid, 5 3 21 22 p 85
We glorify thee, hero (Indra), the lord of all moveable and and stationery things, the beholder of the universse, (with lad-les with soma) like (the udders of) unmilked kine

6 Ibid, 5 6, XXIII 3 p 186
As soon as born Indra thou last drunk the soma for thine invigoration thy mother (Aditi) proolaimed (thy greatness, hence thou last filled the vast firmament, Indra thou last gained in batlle troasure for the gods

पाश्चात्य वैदिक विद्वान वी०जी० रैले ने शरीर-विज्ञान की दृष्टिगत रखते हुए वदिक देवताओ का सूक्ष्म विश्लेषण किया और यह प्रतिपादित किया कि वदिक देवता मानव मस्तिष्क आदि अगो मे काय करने वाली विविध नाडिया और उनकी शक्तियाँ हैं। इन्होंने इन्द्रादि देवो के अस्तित्व को मानव मस्तिष्क मे प्रतिपादित करने मे आध्यात्मिक प्रक्रिया को अपनाया है। मस्तिष्क का सम्पूर्ण चेतना का केन्द्र ही इन्द्र कहा गया है। इस केन्द्र के समीप स्थित वॅटीकुलर कॅवटीज कही जाने वाली नाडिया म एक रस भरा रहता है। यह रस ही सोमरस कहलाता है। इस सोमरस का पान इन्द्र करता है। रैले के अनुमार इन्द्र ही प्रधान चेतना है। वत्र अवचेतन रूप है। इन्द्र और वत्र की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता है। अन्त म इन्द्र के द्वारा वत्र का हनन कर दिया जाता है।

'ओरिजिनल सस्कृत टेक्स्टस' ग्रन्थ के रचियता जे० मुहर इन्द्र के सम्बन्ध म विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि इन्द्र हविया का पान करने वाले हैं। वह सोम रस को बार बार पीकर अपनी सारी पिपासा शान्त करते हैं। सोम पान के पश्चात इन्द्र की धमनियों मे शक्ति का सचार हो जाता है। इन्द्र का माया चमकना प्रारम्भ कर देता है। इन्द्र की आखो मे तीव्र ज्वालाएँ निकलती हैं। वह अपने सखाओ को आह्वान करता है तथा उन्हे उत्साहित करते हुए शत्रुओ का नाश करता है।[३] इन्द्र वैदिक युग मे आर्यों का लोक प्रिय राष्ट्रीय देवता था। मूल रूप म वरुण मे सयुक्त उच्च विचार वैदिक युग मे इन्द्र के प्रति स्थानान्तरित हो गए। वदिक युग की सबसे बाद की कृति ऋग्वेद के दशम मण्डल में वरुण के प्रति एक भी सूक्त नही कहा गया है।[४] आध्यात्मिक पक्ष को दृष्टिगत

---

1 The Vedic Gods as Figures of Biology, (V G Rele) p 97

2 Indra is the conscious force residing in the cortic layer the brain and vrtra and his allies the wicked demons and serpants are the subconscious forces in the nerve centres which appear as elivated projections on the floor of the fourth ventrical behind the medulla oblongata I am of opinion that this episode of the Idra Vrtra fight is the germ of yogic practices and the phenomena of later yogic literatures the vrtra of Vedic literature being replaced in yoga by Kundalini The biological theory thus interprets the fight between Indra and Vrtra as a conflict b tween the conscious and inconscious from which the former emerges victorious Regarded as a whole the attributes of Indra ralate of physical control over the physical body Ibid p 103 104

३ मूल सस्कृत उद्धरण, पृ० १४४

४ वही प० ८७, १३०-१३१

रखते हुए इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि शब्द एक ही परमात्म-तत्त्व की स्तुति में प्रयोग किए गए विभिन्न पद स्वीकार किए गए हैं।[1] मुइर का मत है कि तारों से भरे आकाश में, उषा में, आकाश में ऊपर उठते हुए प्रातःकालीन सूर्य में, मेघ गर्जन और विद्युत् में, इन वैदिक ऋषियों ने विभिन्न दिव्य और ऐसी शुभ अथवा क्रुद्ध शक्तियों को मिश्रित देखा जिनकी प्रकृति उन भौतिक घटनाओं अथवा दृश्यों के अनुरूप थी, जिनमें वह प्रकट होती थी। ऐसी स्थितियों में किसी देवता अथवा शक्ति को उच्च स्तर पर रखने और दूसरे स्थान पर उसे ही किसी अन्य देवता के अधीनस्थ कर देने के तथ्य को देखकर, कभी उसे स्रष्टा और कभी सर्जित देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए।[2]

'वैदिक इण्डिया' के लेखक जेड० ए० रेगोजीन इन्द्र को आँधी तूफान और युद्ध का देवता स्वीकार करते हैं। इन्द्र प्राचीनकाल के आक्रमण करने वाले आर्यों का नेता था। ये युद्ध करने वाले आर्य सिन्धु से पूर्व में यमुना नदी की दिशा में अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए बढ़े। इन्द्र से ही यह प्रार्थना की जाती है कि हमको धन धान्य से पूर्ण करो तथा हमारा नेतृत्व करो। इससे यही भाव अभिप्रेत प्रतीत होता है कि दस्युओं को पराजित कर पूर्व की ओर आगे बढ़ने में हमारा मार्गदर्शन करो।[3] रेगोजीन भी इन्द्र सम्बन्धी मन्त्रों के वर्णनों में किसी सन्तोषजनक एवम् सुसंगत निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ ही रहते हैं।[4]

१ ऋग्वेद, १ १६४ ४६

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

२ मूल संस्कृत उद्धरण, प्रस्तावना पृ० ८

3 Vedic India (R V Regozine), p 199
As the God of war on earth between men and men Indra is not merely the dryas champion and helper in single battles, he is the leader of the Aryan eastward movement generally it is he who guides them from the Indus to the Yamuna and makes their path one of conquest Look forward Indra as a leader and guide us onwards towards greater riches Take us safely across lead us wisely and in safety Nothing could mean clearly pushing eastward crossing rivers dislodging dasyus

4 Ibid, p 202
There is quite a number of passages even of whole hymns full of allusions, to Indra's birth childhood, early exploits and the like But the wording is so obscure most of the things all ded to are so utterly unknown to us that nothing coherent or satisfactory can be made out of all these texts

जे०एन० फरगुहार और एच०डी० ग्रिववोल्ड ने 'दि रिलीजन आफ दी ऋग्वद ग्रन्थ का निर्माण किया। इसम भी इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति से सम्बन्धित विचारो को सदेह युक्त एवम निश्चितता रहित माना गया है। इन पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार इन्द्र का मूल भौतिक स्वरूप भी कुछ अनिश्चित ही है। कोई इसे आधी वर्षा का देवता मानता है। पाश्चात्य वैदिक विद्वान हिलेब्रान्ट उसे सूर्यदेव कहते हैं। बोगाजकोई म एक सूची मिली है। जिसम मित्र वरुण एवम नासत्य के साथ इन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि पहले इन्द्र एक महान देव के रूप म सुप्रसिद्ध एव सुप्रतिष्ठित थे। अवेस्ता मे असुरो की सूची मे इन्द्र और अन्द्र का नाम आया है।

आल्डनवग भी इन्द्र के स्वरूप निर्धारण म कठिनाई अनुभव करते हैं वह तो प्रागैतिहासिक देवता है। इस भारत यूरोपीय काल का देवता भी कहा जा सकता है।[2] वैदिक काल म भारतीय युद्ध कार्यों मे व्यापत रहते थे। पश्चिम दिशा स पूव दिशा की ओर बढन म युद्ध के देवता के रूप मे इन्द्र ने माग प्रशस्त किया है।[3] इस

---

1 The Religion of Rgveda p 177

The name Indra is of uncertain derivation and meaning being more opague than that of any other divine name in the R V the resultant is that there is some uncertainty as to his original physical basis For most scholars Indra is a storm god who sends thunder and lighting but for Hillebrant he is an ancient sun god In the Boghaz kai Indra is mentioned in the form 'In der alongwith Mitra Varuna and Nasatya (1400 c c) Hence he must have been recognised at that time as a great god In the Avesta he is metioned twice in the veriant form Indra or Andra The name occures in the list of demons hence it is clear that Indra like the other pre-zoroastrian daivas was reduced at the great reform to the status of an evil spirit

2 Ibid p 180

What is Indra ? Lightening or sun ? And what are the waters ? Atmosphere or earthly ? An answer to these questions is compli cated by the fact that Indra is confessed a prehistoric god belonging to the Indo-Iranian and possibly even to the Indo European period

3 Ibid , p 196

These passages reveal at least so much of history as to make it clear that the vedic Indians are often at war among themselves Indra the ward god of Vedic peoples was naturally also the pattern and guide of the Aryan in their migrations eastward

वेदों के अन्त साक्ष्य से सिद्ध करना तो असम्भव ही प्रतीत होता है। आर्य लोगों ने युद्ध करते हुए भारत के पश्चिमी देशों की ओर गमन नहीं किया।[1]

पाश्चात्य वैदिक विद्वानों ने इन्द्र सम्बन्धी प्रमाणों में अधिकतया शब्दार्थ मात्र ही प्रस्तुत किया है। शब्दानुवाद से भी इन्द्र को अस्पष्टार्थक और काल्पनिक देवता ही माना है। वस्तुतः इन्द्र को ऋग्वेदानुसार सत्य कहा गया है।

प्रायः विदेशी विद्वानों ने 'मरुत' शब्द को झंझावात से सम्बन्धित तथा तीव्र गति से बहने वाली वायु का सूचक माना है। वनफे, कून, मायर, श्रोडर आदि विद्वान, आकाश में विचरण करने वाली प्रेतात्मा के रूप में मरुतों का स्वरूप वर्णन करते हैं।[2] मरुत बड़े शक्तिशाली एवम् पराक्रमी देवता है। ये पर्वतों को हिला देने की क्षमता रखते हैं। द्युलोक और भूलोक मरुतों के भय से काँपते हैं। मरुतगण सूर्य को भी ढक लेते हैं। ये वृक्षों को भी चीर डालते हैं। इन्हें आँधी व जल प्रलय का देवता माना गया है।[3] वर्षा करना मरुतों का प्रधान कार्य है। मरुत् वर्षा में आवृत हैं। वे समुद्र से उठकर वर्षा बरसाते हैं। वे सूर्य के नेत्र को मूंद देते हैं। वर्षा आने पर मरुत बादलों के द्वारा घोर-अन्धकार कर देते है।[4]

मरुत जब वायु के साथ दौड़ते हैं तो चारों ओर कुहरा बिछा देते है। इनके द्वारा की गई वर्षा को आलंकारिक रूप 'दुग्ध' व 'घृ' आदि नामों से कहा गया है। मरुत वर्षा करके जन जानवरों को औषध व चैतन्य प्रदान करते हैं।[5] मरुतों का रुद्र इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं से भी सम्बन्ध है। इन्द्र द्वारा विसृष्टि जल को 'मरुत्वती' नाम दिया गया है।[6] मरुतों को पुरुद्रप्सा,' 'दस्मिन' और 'सुदानव' विशेषण प्रदान किए गए हैं। वे गरमी को दबाते है। अन्धकार को नष्ट करते हैं। मरुत सूर्य के लिए भी पथ निर्मात हैं। ये गर्जन करते हैं इसलिए इन्हें गायक कहते हैं। ये दिव्य गायक हैं। इन्द्र द्वारा अहि का संहार किए जाने पर मरुतों ने गीत का गायन किया। इसमें इन्द्र में शक्ति का संचार हुआ।[8]

---

1 गुरुकुल पत्रिका, मई 1974 पृ० 252 55
ऋगादिवेदचतुष्टयाधारेणायसभ्यताया निर्णय वय समीचीन
2 ऋग्वेद, 8 1 6 8
3 रिलीजन प्रथम भाग पृ० 153, 154
4 वैदिक देव शास्त्र, पृ० 197
5 ऋग्वेद, 5, 74 — वातत्विषो मरुतो—महिना द्यौरिवोरव।
6 ऋग्वेद, 7 56 12 — शुची वो हव्या—शुचय पावका?
7 वही, 9 80 4
निरिन्द्र भूम्या अभिवृत्र जघन्य निर्दिव।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अप॥
8 वैदिक देव शास्त्र, पृ० 200

सोमयाग के बन्धन मे इनका भेद स्पष्ट हो जाता है। मरुतो के लिए माध्यन्दिन और सायकालीन सवन विहित किए गए हैं और वायु के लिए प्रात कालीन सवन निश्चित हैं। चातुर्मास यज्ञ मे मरुतो को स्थान मिला है। विश्वामित्र के कुल के साथ मरुतो की उपासना का सम्बन्ध है। विद्युत् वायु तथा वप के साथ स्थिर सम्बन्ध होने से ऋग्वेद मे मरुत तूफान के देवता के रूप मे सम्बोधित किए गए हैं। भारतीय व्याख्याकारो ने मरुतगणो को वायुओ का ही प्रतीक माना है। वेदोत्तरकाल मे मरुत का अर्थ वायु ही लिया जाता है।[1] वायु एक ऐसा देवता हैं जिसकी अवधारणा दृश्यमान भौतिक तत्व से प्रतीत होती है। वायु अन्तरिक्ष के प्रतिनिधि देवता हैं। इन्द्र अन्तरिक्ष के सवप्रमुख देव हैं। दोनो का तादात्म्य होने से दोनो म से किसी को भी महत्त्वपूर्ण देव स्वीकार कर लिया गया है।[2] वायु शब्द वायु देवता का तथा वात शब्द भौतिक वायु का द्योतक है। वायु की इन्द्र के साथ भी स्तुति की गई है।

'वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान' इस निरुक्तवचन से स्पष्ट होता है कि इन दोनो देवताओ को अत्यन्त दृढ रूप म परस्पर सम्बन्ध समझा जाता था।

निष्कर्ष रूप म कहा जा सकता है कि पाश्चात्यविद्वानो एवम तदनुयायी राजेन्द्र लाल मित्र आदि भारतीय विद्वानो की दृष्टि मे इन्द्र एवम मरुत देव अपना स्थूल शरीर रखते हैं। उन्हे आधिभौतिक दृष्टि से ही शरीर धारी देव के रूप म जाना जाता है। इन्द्र शक्तिशाली व देवाधिदेव है। मरुत देव भी इन्द्र के सहायक देव हैं। ओरियन्ट एण्ड आक्सीडेन्ट मे वनफे न मरुत् को मृत रूप से आकाश मे विचरण करती हुई प्रेतात्माओ का वाची माना गया है। म्यूर, मायर एवम श्रयादर आदि पाश्चात्य विद्वान भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। राय के मतानुसार प्राचीनतर 'देव समुदाय' से सम्बन्ध रखने वाले वरुण देव का महत्त्व ही ऋग्वदिक काल मे इन्द्र की ओर सक्रमित हो गया। वत्र की विजय मे मरुतो ने इन्द्र की सहायता की। इन सब तथ्यो म यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य विद्वान इन्द्र और मरुत को शरीरधारी देव स्वीकार ही करते है। शारीरिक पौरुष और भौतिक लोक पर आधिपत्य इन्द्र की विशेषता है।

---

१ वदिक देवशास्त्र पृ० २०३

२ (क) निरुक्त, ७ ५

तिस्र एव देवता इति नरुक्ता,
वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थाना ॥

(ख) बृहद्देवता, १ ६५

अग्निरस्मिन अथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव वा।

(ग) शतपथ ब्राह्मण, १ ३ १८

यो वै वायु स इन्द्रो य इन्द्र स वायु ।

चतुर्थ अध्याय

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत्' का पारमार्थिक स्वरूप

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे इन्द्र एवम् मरुत का पारमार्थिक स्वरूप वर्णन करने म पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि धर्म और समाज म नव जागरण का शंख फूंकने वाले स्वामी दयानन्द ने वेद, स्मृति एवम् दर्शन ग्रन्थो के आधार पर जो स्वरूप वैदिक विचार धारा प्रदान की उस समझ लिया जाय। दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। दर्शन से सीधा सा अभिप्राय है सामारिक और पारमार्थिक सुखो की सिद्धि का प्रशस्त करने वाली विचार दृष्टि। यदि हम भारत के सास्कृतिक इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चार्वाक की भौतिकवादी दृष्टि का और शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन का व्यक्ति और समाज पर दूरगामी प्रभाव पडा। भारतीय दर्शनो मे विश्व के तत्त्वो का विवेचन करने के साथ-साथ साधना मार्ग का भी निरूपण किया गया है। स्वामी दयानन्द के दर्शन को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि विश्व मे तीन तत्त्व हैं—जीवात्मा भोक्ता तथा परमात्मा नियन्ता है। प्रकृति जड होने से स्वयं कुछ नहीं कर सकती। जीवात्मा चेतन तो है किन्तु अल्पज्ञ है। परमात्मा चेतन भी है और सर्वज्ञ भी। जीवात्मा अनेक हैं किन्तु ईश्वर एक है। ईश्वर नियमानुसार सृष्टि रचना करने वाला व कर्मानुसार जीवो को शुभाशुभ फल प्रदान करने वाला है। ईश्वर ही व्यक्ति व समाज के अभ्युदय का साधन है। स्वामी दयानन्द के अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं। सत्यार्थप्रकाश म 'द्वा सुपर्णा' आदि वेदमन्त्र तथा 'अजामेकाम्' आदि श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन उद्धृत करते हुए तीनो के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। तीनो अज है। उनका भी जन्म नहीं होता। परमेश्वर आनन्द स्वरूप, सामर्थ्य गुण कर्म स्वभाव वाला है इसलिए वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन मे नही गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्ध स्वरूप अल्पज्ञ और परिमित गुण कर्म स्वभाव वाला रहता है, वह परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।[1] स्वामी जी ने जगत को दुःख-मय मानकर इसमे पलायन का उपदेश नहीं दिया। संसार म सुख भी है और दुःख भी है। सांसारिक दुःखों से डरने के स्थान पर उनको हिम्मत

1 सत्यार्थप्रकाश समुल्लास, ८ पृ० २७१
2 वही समुल्लास ६ पृ० ३१६

से झेलने म व दूर करन मे तथा परोपकार म ही जीवन की सार्थकता है। परमात्मा की उपासना करत हुए सवा, परोपकार व परिश्रम शीलता आदि सदगुणो को प्राप्त करन के लिए ही बल दिया गया है। प्रसिद्ध गायत्री मत्र म सविता रूप ईश्वर से सद बुद्धि की याचना है।[1]

स्वामी जी ने मन्त्रो म अग्नि, इन्द्र मरुत, विष्णु आदि वैदिक शब्दो की प्रकृति—प्रत्यय के विभिन्न अर्थों के आधार पर पारमार्थिक एवम व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है। परमेश्वर से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को ही परमार्थ कहा गया है। स्वामी दयानन्द ने इन्द्र का पारमार्थिक अर्थ ईश्वर अथवा परमेश्वर किया है। इस अध्याय म यजुर्वेद के दयानन्द कृत भाष्य के आधार पर इन्द्र देवता एवम मरुत देवता से सम्बद्ध मन्त्रो को ध्यान म रखते हुए इन्द्रदेव और मरुत देव के पारमार्थिक स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

इन्द्र शब्द का पारमार्थिक अर्थ एवम् प्रधानार्थ परमेश्वर या परमात्मा है यह सिद्धान्त ही स्वामी जी के यजुर्वेदभाष्यानुसार स्पष्ट किया जायेगा। परमात्मा के अथवा ईश्वर के विविध नाम हैं। वेद और उपनिषद आदि मे ईश्वर का अनेक नामो से वर्णन मिलता है। स्वामी दयानन्द ने भी अपने वेद भाष्य, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश म उन नामो का उल्लेख किया है। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास मे ईश्वर के १०० नामो की विस्तृत व्याख्या की गई है।[2] स्वामी जी की दृष्टि मे सब वेदो का तात्पर्य ईश्वर मे है। सब पदार्थों म ईश्वर ही मुख्य है। ईश्वर का मुख्य नाम प्रणव (= ओ३म्) है। यही परा विद्या म जाना जाता है। अग्नि, इन्द्र, मरुत् आदि का प्रकरणानुसार अन्य अर्थ भी होता है। मुख्य रूप स ईश्वर के लिए ही इनका प्रयोग किया गया है। इन नामो स परमेश्वर के ग्रहण मे प्रकरण और विशेषण नियमकारक है।[3] युक्तियो और प्रमाणो द्वारा ईश्वर की सिद्धि करके उसके स्वरूप व गुणो का निरूपण भी किया गया है।[4]

परमात्मा के कुछ प्रसिद्ध गुणो का ऋग्वेद के एक मन्त्र म उपलक्षण रूप में

---

१ यजुर्वेद, ३ ३५
ॐ भूर्भुव स्व । तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो न प्रचोदयात ॥

२ सत्यार्थ प्रकाश (रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ), तृतीय परिशिष्ट, पृ० ६५०
प० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार नामों का पूर्ण योग १०८ है। कुछ नामो का अन्य नामो म अन्तर्भाव करने पर १०० संख्या बनती है।

३ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ३०६-१०

४ सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १ पृ० १४

उल्लेख किया गया है।[1] सामवेद मे 'सत्य इन्द्र सत्यमिद्रम' इस सामान्य पाठ भेद के साथ भी यह मन्त्र समाजात है।[2] इसकी व्याख्या के अनुसार ईश्वर म कुछ अनिवाय गुण अवश्य प्रकाशित होते हैं। परमेश्वर (इन्द्र) त्विषीमान अर्थात तजयुक्त अथवा स्वप्रकाशस्वरूप है। वह अपने प्रकाश से विश्व के समस्त अन्धकार को पराजित कर देता है (अभ्योजसा क्रिविं युधाभवत)। वह अत्यन्त व्यापक है और अपनी व्यापकता मे समस्त लोको को परिपूण कर रहा है। (रोदसी अपणद अस्य मज्मना)। वह अत्यन्त बलशाली है (प्रवावृध) वह सम्पूण प्रकृति और सभी जीवा को अपने अन्दर धारण करता है (अधत्तान्य जठर)। सबको धारण करते हुए भी सबसे पथक् और सबसे अतिरिक्त भी उसका अस्तित्व है (प्र ईम अरिच्यत)। वह सवज्ञ है, सबको प्रचेतित करता है चेतना प्रदान करता है (प्रचेतय)। वह अविनाशी है और अविनाशी आत्मा को शरीर के साथ युक्त करता है (सश्चद देव सत्यमिदम सत्य इन्दु)।

इस मन्त्र के वणन मे परमेश्वर को स्वय प्रकाश, सवव्यापक, सवशक्तिमान, सर्वाधार निर्विकार, सवज्ञ सष्टिकर्ता, कमफलप्रदाता एवम न्यायकारी कहा गया है। भारतीय आस्तिक दशनशास्त्र मे इन्ही गुणा का विस्तार करके परमात्मा के भिन्न-भिन्न कम और स्वभाव का वणन मिलता है।

स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और सत्याथ प्रकाश मे ईश्वर का दाशनिक विवेचन किया है। स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, आयोद्देश्यरत्नमाला तथा आयसमाज के प्रथम नियम म भी ईश्वर का सक्षिप्त विवरण उपलब्ध होता है।

स्वामी जी के अनुसार—जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं, जिसके गुण, कम स्वभाव पवित्र हैं, जो सवज्ञ निराकार, सवव्यापक, अजन्मा अनन्त, सवशक्तिमान दयालु न्यायकारी, सारी सष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता, सब जीवो को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त हैं वही परमेश्वर है।[3]

जो भूत, भविष्यत वतमान कालो का और समस्त जगत का अधिष्ठाता है तथा काल से परे भी विद्यमान रहता है जिसका केवल विकार रहित सुख ही

---

१ ऋग्वेद, २ २२ ३
अय त्विषीमा अभ्योजसा क्रिविं
युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे।
अधत्तान्य जठरे प्रेमरिच्यत
सैन सश्चद् देवो देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दु ॥

२ सामवेद, उत्तरार्चिक, १४८८

३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, अनुच्छेद १।

स्वरूप है जिसमें दुःख लेशमात्र भी नहीं है, जो आनन्द घन ब्रह्म है उस सर्वोत्कृष्ट महान ब्रह्म के लिए नमस्कार हो।

अत सातत्यगमन धातु से 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। यो तति व्याप्नोति स आत्मा अर्थात जो सब जीवादि जगत में निरन्तर व्यापक हो रहा है। 'परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्य सूक्ष्मेभ्य परोऽतिसूक्ष्म स परमात्मा' अर्थात जो सब जीवादि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, उस ईश्वर का नाम परमात्मा है।[1]

वेदों के अनुसार परमात्मा सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों से युक्त है।[2] परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे सर्वशक्तिमान, सर्वाधिकार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, नित्य, पवित्र साक्षी, अधिष्ठाता इत्यादि बताया गया है। निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए परमात्मा को निर्विकार, निराकार अनादि अजन्मा अनुपम अजर, अमर, अभय, दुःपराहत आदि कहा गया है।[3] इस सम्बन्ध में यजुर्वेद का एक मन्त्र उद्धृत किया जा सकता है जिसमें ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव का उल्लेख मिलता है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥[5]

स्वामी दयानन्द कृत भाष्य के अनुसार इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि वह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है सर्वशक्तिमान एवं शीघ्रकारी, स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर से रहित छिद्र रहित या छेदन करने योग्य नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित अविद्या आदि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, पाप में प्रीति न करने वाला सर्वज्ञ अर्थात सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला अनादि स्वरूप अर्थात जिसकी उत्पत्ति, वृद्धि व विनाश आदि नहीं होते ऐसा परमात्मा अपनी शाश्वती प्रजाओं के लिए यथार्थ रूप से वेदादि ज्ञान एवं सभी प्रकार के पदार्थों का विशेष रूप से विधान करता है रचना एवं निर्माण करता है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० २६३

२ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १ पृ० २०-२१

३ एको देव सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६।११

४ वर्मों में योग विद्या, पृ० १४१-४७

५ यजुर्वेद ४०।८

ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार ऋक, यजु, साम रूपी तीनों वाणियों का प्रकाश परमात्मा करता है। ये वाणियां सृष्टि के नियम और ब्रह्माण्ड के ज्ञान विज्ञान को धारण करती हैं। विद्वान इनका शब्द रूप प्राप्त करते हैं। परन्तु वास्तविक ज्ञान मनीषी ही प्राप्त कर सकते हैं। इस आधार पर परमात्मा ही वेद का प्रकाशक व ससार के नियमों का सचालक है। परमात्मा के रहस्यमय स्वरूप को परमात्मा के गुण, कर्म तथा स्वभाव को जानकर ही जाना जा सकता है, परमात्म तत्त्व का इदमित्थ रूप (अर्थात यह इसी प्रकार का है) वर्णन तो असम्भव ही है। स्वामी जी ने वेद उपनिषद् तथा निरुक्त आदि प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि आर्य लोग 'अग्नि' इन्द्र आदि नामों से एक ही ईश्वर की उपासना किया करते थे। 'एक सद्‌ विप्रा बहुधा वदन्ति'[2] अर्थात एक ही शक्ति का विद्वान् बहुत से रूपों मे कहते हैं। मनु महाराज जी का वचन है—

एतमग्नि वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥[3]

इन्द्र देवता से सम्बन्धित कुछ मन्त्रों में पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत करके स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव का वर्णन किया है। इन्हीं मन्त्रों के आधार पर इन्द्रदेव का पारमार्थिक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

वेदों में बहुत से विशेषणों से इन्द्र की स्तुति की गई है—हरिकेश, हरिश्मश्रु हरिशिप्र वज्री हिरण्यबाहु वृत्रहा हर्यश्व, वृषा सोमपा वज्री, युध, समृष्टजित, उग्रधन्वा, शक्र सुमख सुतपा, वृषभ त्वेषनृम्ण, पुरुहूत ऋजीषी, शविष्ठ मघवत्ऋतु, गोपति शतक्रतु, अङ्गिरस्वान, चित्रभानु, सोमपातम, मन्दी, नवसस्मति, अमितौजा अद्रिवा पुरन्दर वावातृथ, पुरुवसु, विश्वायु, पाकस्थामा, भोज, सुशिप्र सुपार, सुव्रत सखा, उग्र, महामह, सूर, वृत्रहन्तम, सुश्रवस्तम, विपश्चित सत्पति, शचीपति, नन्य नर, नषाद, महिष्ठ ज्येष्ठराज, तुविकूर्मि अभिभूति, पप्रि तुविग्रीव, वपोदर आखण्डल, मुनीना सखा, दिवावसु, युवा सखा, 'रयीतमो रयीताम', पुरुनृम्ण, ऋभुक्षा, आजिपति, प्रभङगी तुवीमघ, सोमी, हिरण्यय अश्व्य, मक्ष, शूर मायी, महावीर, मदच्युत, रातहव्य, सत्यशुष्मा, मरुत्वान स्त्रजकर, अकल्प, उरुव्यचा, वीर, दानौका, भूतश्रवा, दर्मा, ऋग्मिय,

---

१ तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्नि।
ऋतस्य धीतिम ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्तिगोर्शति पच्छमाना।
सोम यन्ति मतयो वावराना॥ —ऋग्वेद, ९ ९७ ३४

२ ऋग्वेद, १ १६४ ४६

३ मनुस्मृति, १२ १२३

सहस्रचेता, शतनीय, ऋभ्वा, चर्षणीप, पाञ्चजन्य, तरस्वी, राजेन्द्र, सप्तरश्मि, क्षामप, स्वर्जित सत्राजित, उवराजित अभिभङग, वधा, सुविप्र, दुष्टरीतु, च्यवन, वतचय, सहुरि गम्भीर असमष्टकाव्य, रध्रचोद, वीलितस्पृथ, विप्रतम, सत्रीयन अरण्य, सहोदा चर्षणीधृत, पुष्टितम, धनञ्जय, चिकित्वान स्वयु, स्वराट् ऋजीष, अषव्ह शाची, वाजसनि, गवस, सूनु, अर्वाचीन, वय विभीषण, धन्वचर, दान, ऋष्व, सासहवान ईशानकृत, सुमनुनामा, अच्युतच्युत तुवन, प्रर्न, क्षत्रनी धृष्णु ओजिष्ठ, व्यास, अध्रिगु, धमकृत जेता हन्ता शतमूति, वज्र दक्षिण दीधश्रवसस्मति, रोध, अथवण, विश्वम्याद उत्तर, बलविजाय, स्थविर, प्रवीर गोत्राभिद वीर्ण्य महिवीर सुनामा, मित्रसाद अद्भुत, स्वस्तिदा, विमघ अधिभू आदि।

य सब विशेषण इन्द्र क एश्वय क द्योतक हैं। इन्द्र ही सम्पूण जगत का स्वामी रक्षक पालक व दुष्ट सहारक है। यहां इन्द्र का ईश्वरत्व है।[1]

१ स्वप्रकाशमय तथा सर्वप्रकाशक

इन्द्र अर्थात ईश्वर अपन प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। इसे प्रकाशित होन क लिए किसी दूसर प्रकाश की आवश्यकता नहीं।[2] ससार क सभी प्रकाशक पदाथ जिसस प्रकाश प्राप्त करत हैं वह स्वप्रकाशमय एवम् सवप्रकाशक परमात्मा ही इन्द्र पदवाच्य है जिस ज्योति को आत्मवता जन जानत हैं, वह सभी ज्योतियों म श्रेष्ठ है।[3]

> यदादित्यगत तेजो जगद् भासयते खिलम्।
> यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥[4]

इस गीतोक्त वचन के अनुसार आदित्य म विद्यमान प्रकाश, जो सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा और अग्नि म जो प्रकाश विद्यमान है, उन सबका मूल परमात्मा का प्रकाश ही है। इन्द्र को विद्युत् के समान परमेश्वर कह कर सम्बोधित किया गया है।

हे (इन्द्र) विद्युत के समान वतमान परमेश्वर। (त) आपकी (यावती) जितनी (द्यावा पृथिवी) सूय भूमि (च) और (यावत्) जितने बड़े (सप्त सिन्धव) सात समुद्र (वितस्थि र) विशेषकर स्थित हैं (तावन्तम्) उतने अक्षितम्) नाश

१ वद समुल्लास प० ६

२ मुण्डकोपनिषद २ २ ११
तमेव भान्तमनुभाति सवम। तस्य भासा सवमिद विभाति।

३ वही २ १०
यच्छुभ्र ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदु।

४ गीता १५ १२

रहित (ग्रह्य) ग्रहण के साबनरूप सामर्थ्य को (उर्जा) बल के साथ मैं (ग्रहणामि) स्वीकार करता हूँ तथा ऊतने (अक्षितम) नाशरहित सामर्थ्य को मैं (मयि) अपने मे (ग्रहणामि) ग्रहण करता हूँ।[1]

यहा यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि आधुनिक वैदिक विद्वान् वैज्ञानिक दष्टि से ही वेद मन्त्रो की व्याख्या करना अधिक महत्त्वपूण समभते हैं। उनका मत है कि चारो वेदो के मन्त्रो का अध्ययन यह स्पष्ट सकेत दे देता है वे सब जिनका देवता अर्थात विषय इन्द्र है वे प्रकृति के अन्तगत त्रिगुणात्मक शक्ति की ही स्तुति के निमित्त है। वेद मे स्तुति का अभिप्राय है पदाथ के गुण, कम और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना, उनका प्रयोग कर जीवन को सुखी व उन्नत करना।

इन्द्र त्रिगुणात्मक शक्ति है जो परमाणु के भीतर रहती है। नियन्त्रण करने वाले परमात्मा द्वारा दी गई लगाम त्रित ने स्वीकार कर ली। इस त्रित पर पहले इन्द्र अधिकार रखता था।[3] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—

असदा इदमग्र आसीत तदाहु किं तदसदासीदित्यषयो वाव ते ग्रेसदासी तदाहु केत ऋषय इति प्राणा वा ऋषयस्ते यत्पुरास्यात सवस्मादइमिच्छन्त श्रमेण तपसारिष स्तम्यादृषय ॥

स योत्य मध्ये प्राण । एष एवे द्रस्तानेपु प्राणात्मध्यत ई द्रयेणेन्द्र यदैन्द्र तस्मादि ध इन्धो ह व तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्ष परोक्षकामाहि देवास्त इदधा सप्त नाना पुरुषानसजन्त ॥[4]

अर्थात पहले यह असत अर्थात अव्यक्त प्रकृति ही थी। असत क्या था ? ये ऋषि थ। ऋषि ही प्राण थ। ये परमाणु से अशान्त हो गये। इसी से इनका नाम ऋषि हुआ। यह मध्य मे अर्थात परमाणु के मध्य म ही इन्द्र है। इन्द्र इन्ध से व्युत्पन्न होता है। दीप्त करने वाला इन्द्र इ ध म ही बना है।

स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेदभाष्य मे एक मन्त्र मे इन्द्र को विद्युत तुल्य ईश्वर माना है। ईश्वर विद्युत क समान प्रकाशित होने वाला है। सुख प्राप्ति के लिए उस प्रकाशमान ईश्वर की स्तुति करनी चाहिए।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३८ २६
यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमि द्र त ग्रहूर्जा गह णाम्यक्षित मयि गृहणाम्यक्षितम् ॥

२ वदो मे इन्द्र प० ७१ ७२

३ ऋग्वेद १ १६३ २
यमेन दत्त त्रित एनमायुनगिन्द्र। एण प्रथमो अध्यतिष्ठन।

४ शतपथ ब्राह्मण, ६ १ १ १ २

मन्त्र में आए 'इन्द्रो विश्वस्य राजति' अंश का अर्थ करते हुए कहा गया है इन्द्र पद से आदित्य तथा परमेश्वर-दोनो का ग्रहण किया है।[1]

सम्पूर्ण मन्त्र का स्वामी दयानन्द कृत भाष्य इस प्रकार है—हे जगदीश्वर! जो आप (इन्द्र) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) ससार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आपकी कृपा से (न) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए (शम) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (शम) सुख होवे।[2] भाव यह है कि हे जगदीश्वर! जिससे आप सवत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इससे सबको उपासना करने योग्य हैं।

यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र म दो बार 'इन्द्राय' पद का प्रयोग हुआ है तथा इसके दो अर्थ स्वीकार किए गए हैं। एक बार तो इस पद का 'ऐश्वय प्राप्ति के लिए' तथा दूसरी बार परमेश्वर के लिए' यह अर्थ किया गया है।

हे राजन्! मैं (इन्द्राय) ऐश्वय प्राप्ति के लिए (व) तुम्हारे लिए (सूय) के प्रकाश म (सन्तम) वत्तमान (समाहितम) सवप्रकार चारो ओर धारण किये (उद्वयसम) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम) जलो के (रसम) सार को ग्रहण करता हू (य) जो (अपाम) जलो के (रसस्य) सार का (रस) वीय धातु है (तम) उस (उत्तमम) कल्याणकारक रस को तुम्हारे लिए (गह्णामि) स्वीकार करता हू जो आप (उपयाम गृहीत) साधन तथा उपसाधनो से स्वीकार किए गए (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (जुष्टम) प्रीतिपूवक वत्तने वाले

---

१ उवट—इन्द्रोविश्वस्य द्विपदाविराट्। सोय महावीर इन्द्र आदित्यो वा। वस्याधिष्ठात्री देवता। विश्वस्य जगत राजति देदीप्यते ईष्टे वा। तस्य प्रसादात। अस्माकम अस्तु द्विपदे च चतुष्पदे द्विपदाचतुष्पदा चेति विभक्ति-व्यत्यय।

महीधर—द्विपदा विराट इन्द्र देवत्या। विश्वस्यसराड्द्विपदा विराट् कथ्यते। विश्वस्य सवस्य जगत इन्द्र इन्दि परमैश्वर्ये इ इतीन्द्र परमेश्वर महावीर आदित्यो वा यो राजति ददीप्यते ईष्टे वास्तु ना स्माक द्विपद। विभक्तिव्यत्यय। द्विहन्ता पुत्रादीना श सुखम्पा स्तु। चतुष्पद चतुष्पदा गवादीना च श सुखमस्तु॥ —शुक्लयजुर्वेद सहिता (उवट महीधर) ३६ ८ पृ० ५८३

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३६ ८
इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शन्नो अस्तु द्विपदे श चतुष्पदे॥

आपको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। जिस (ते) आपका (एष) यह (योनि) घर है उस (जुष्टम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आपको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

भाव यह है कि राजा अपने प्रजा पुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ने के लिए ब्रह्मचर्य औषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे।

सम्राट

जो अच्छी प्रकार प्रकाशित हो अर्थात 'य सम्यग राजते प्रकाशते' वह सम्राट् कहलाता है।[1] सम् उपसर्गपूर्वक दीप्तिअर्थ वाली 'राज्' धातु से क्विप् प्रत्यय करके सम्राट शब्द निष्पन्न होता है। चक्रवर्ती राजा' अर्थ में भी 'सम्राट्' शब्द प्रयुक्त किया गया है।[2] इन्द्र (ईश्वर) को सम्राट के रूप में गृहीत किया गया है।

स्वयुरिन्द्र स्वरा सि स्वदिष्टि स्वयश स्तर।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवान सुश्रवस्तम ॥[4]

हे (पुरुष्टुत) बहुभि प्रशसित (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् न त्वम् (स्वयु) य स्व धन याति स (स्वराट्) य स्वेनैव राजते स (स्वद् दिष्टि) कल्याणोपदेष्टा (स्वयशास्तर) स्वकीय यशो धन प्रशसन वा यस्य सो तिशयित (असि) स त्वम् (ओजसा) पराक्रमेण (वावृधान) वर्द्धमान (सुश्रवस्तम) सुष्ठुधन श्रवणयुक्त सो तिशयित (न) अस्मध्यम भव।

अर्थात हे वन्दनीय म प्रशसित परमैश्वर्यशाली सम्राट जो आप धन को पाने वाले स्वतन्त्र राज्यवर्ती कल्याण कर्म का उपदेश देने वाले, अतिशय धनी और प्रशसास्पद है, वह आप अपने पराक्रम से बढ़ते हुए अत्यन्त शुभ धन वाले और प्रार्थना को सुनने वाले हमारे लिए हों।

भाव यह है कि वह ही सम्राट बनने के योग्य है जो अतिशय प्रशसित गुण कर्म स्वभाव वाला हो। वह ही सबको बढ़ाने वाला होता है।[5]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ९ ३
अपा रसमुद्वयस सूर्ये सन्त समाहितम। अपा रसस्य यो रसस्त वो गृह्णाम्युत्तम-मुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्ट गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतम ॥

२ यजुर्वेद ३ ३८

३ दयानन्द वैदिक कोष प १००४

४ ऋग्वेद ३ ४५ ५

५ स एव सम्राट भवितु योग्यो जायते यो तिशयेन प्रशसित गुण कर्मस्वभावो भवति। स एव सम्राट् सर्वेषा वर्द्धको भवतीति ॥
—ऋग्भाष्य (दयानन्द), ३ ४५ ५

२ सर्वज्ञानदाता तथा सर्वज्ञानमय

ईश्वर सवज्ञानमय भी है और सवज्ञान प्रदाता भी। वह सम्पूर्ण विद्याओ का अधिपति है तथा वदादिरूप मे सम्पूण विद्याआ को प्रकट करने वाला भी है। ईश्वर सववित है तथा उसका तप ज्ञानमय है।

य सवज्ञ सवविद्यस्य ज्ञानमय तप —यह वचन विशिषता की ओर सकेत करता है।[1] स्मृति, ज्ञान तथा सशय भ्रम विपयय आदि का निवारण रूप अपोह यह सब ईश्वर की प्रेरणा से ही होता है।[2] स्वामी जी के अनुसार तीनो कालो क बीच मे जो कुछ होता है उन सब व्यवहारो को वह यथावत जानता है।[3] ईश्वर का ज्ञान नित्य है उसकी वद्धि क्षीणता और विपरीतता कभी नही होती। उसमे निरतिशय नित्य स्वभाविक ज्ञान है। जो पदाथ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानन का नाम ज्ञान है। जस ईश्वर अनन्त है अपन आपको अनन्त जानना ही उसका ज्ञान है। वह पूण ज्ञानी है।[4]

विद्यादि धन युक्त जगदीश्वर

इन्द्र अर्थात परमात्मा उत्तम उत्तम विद्यादिधन युक्त है। उससे प्राथना की गई है।

ह (मघवन) उत्तम उत्तम विद्यादिधन युक्त (इन्द्र) परमात्मन! (वयम) हम लोग (सुसदृशम) अच्छे प्रकार व्यवहारा को देखने वाल (त्वा) आपको (नूनम) निश्चय करके (वन्दिपीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगो से (स्तुत) स्तुति किए हुए आप (वशान) इच्छा किए हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त कराते हो और (ते) अपन (हरी) बल पराक्रमो को आप (अनुयोज) हम लोगो के सहाय के अथ युक्त कीजिए।[5]

इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालकार है। इसका अथ दूसरी तरह से भी किया गया है। (वयम) हम लोग (सुसदृशम) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने, (मघवन) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णं व धुर) सब जगत के बन्धन के हतु

---

१ मुण्डकोपनिषद, १ ९
२ श्री मद्भगवदगीता, १५ १५
मत्त स्मतिज्ञानम।
३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २६४
४ सत्याथ प्रकाश, समुल्लास ७ पृ० २६२
५ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३ ५२
सुसदृश त्वा वय मघवन वन्दिषीमहि।
प्रनून पूणबन्धुर स्तुतो यासि।
वशा अनु योजान्विन्द्र ते हरी॥

(त्वा) उस सूय लोक की (नूनम) निश्चय करके (व दिधीमहि) स्तुति करें अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके (स्तुत) स्तुति किया हुआ यह हम लोगो को (वशान्) उत्तम उत्तम व्यवहारो की सिद्धि करान वाली कामनाओ को (यासि) प्राप्त कराता है (नु) जसे (त) इस सूय के (हरी) धारण आकषण गुण जगत मे युक्त होत है वैसे आप हम लोगो को विद्या की सिद्धि करन वाले गुणो को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए।

भाव यह है कि मनुष्यो को सब जगत के हित करन वाले जगदीश्वर की ही स्तुति करनी चाहिए। जैसे सूय लोक सब मूर्तिमान द्रव्यो का प्रकाश करता है वसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्त जनो के आत्माओ मे विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्य व्यवहारो को प्रकाशित करता है।

इस मन्त्र मे श्लेष और उपमा अलकार है। श्लेष म इन्द्र शब्द के ईश्वर और सूय दो अथ लिए जाते है। उपमा वाचक 'नु' पद मन्त्र मे पठित है। यहा सूय से ईश्वर तथा विद्वान की उपमा की गई है।

जैस सूय मूत्त द्रव्यो को पकाशित करता है वैसे ही उपासना द्वारा वह जगदीश्वर भी भक्त जनो की आत्माओ म विज्ञान उत्पन्न करके सब सत्य व्यवहारो को प्रकाशित करता है।

जैसे सूय मूत्त द्रव्यो का पकाशित करता है वैस ही विद्वान भी विद्या के सिद्धिकारक गुणो से प्रकाशित करता है।

मन्त्र मे आए 'सुसन्दृशम' पद का अथ 'य सुष्ठु पश्यति दशयति वा तम' *अर्थात अच्छी प्रकार देखने वाले अथवा दिखान वाले को किया है।* ईश्वर पक्ष मे 'भक्तजनात्मसु विज्ञानोत्पादनेन सवसत्यव्यवहार प्रकाशकम' तथा सूय पक्ष मे 'मूत्त-द्रव्यप्रकाशकम' व्याख्या की गई है।[1]

इन्द्र मघवन अर्थात (परमोत्कृष्ट धनयुक्तेश्वर) अत्यन्त उत्तम धन से युक्त जगदीश्वर के रूप मे सम्बोधित किया गया है। वह स्तुति किया हुआ पूण स्नह से भरपूर बना हुआ अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने वाला है। अत वह 'स्तुत' (स्तुया लक्षित अर्थात स्तुति (प्राथना) से दिखाई देने वाला) तथा 'पूणबन्धुर' (य पूण-श्चासौ बन्धुरश्च स) कहा गया है।

विश्ववेदस्[2]

जो सम्पूण विश्व को जानने वाला है उस परमेश्वर को ही 'विश्ववेदस' कहा है। यजुर्वेद मे इन्द्र के विशेषण के रूप मे यह शब्द प्रयुक्त किया गया है।[3] स्वामी

---

१ दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर, पृ० २५४

२ यजुर्वेद, ३ २८

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २५ १६

दयानन्द न इसका अर्थ—विश्व अर्थात सम्पूर्ण जगत वेद अर्थात् धन है जिसका वह परमेश्वर किया है। एक मन्त्र म इस शब्द का विश्व को जानन वाला' अर्थ भी किया गया है।[1] 'विश्व' शब्द के साथ 'विद' धातु से 'वसि प्रत्यय करके 'विश्ववेदस्' शब्द निष्पन्न होता है।[2]

सम्पूर्ण मन्त्र का ऋषि कृत भाष्यानुवाद निम्न प्रकार है—

हे मनुष्यो! जो (वृद्धश्रवा) बडे श्रवण विज्ञान (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (न) हमारे (स्वस्ति) सुख को धारण करता है जो (विश्ववेदा) जगत रूप धन वाला (पूषा) सब ओर से पोषक ईश्वर (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है जो (तार्क्ष्य) घोडे के समान (अरिष्टनेमि) सुखों को प्राप्त कराने वाला हमारे (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख का धारण करता है जो (बृहस्पति) महत्तत्त्व आदि का स्वामी एवम पालक (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है वह तुम्हारे लिए भी सुख को धारण करे।[3]

भाव यह है कि सभी मनुष्य ऐसी प्रार्थना करें कि जो ईश्वर बड विज्ञान-वाला परम ऐश्वर्यवान, सकल जगत रूप धन वाला, सब ओर से पोषक घोडे के समान सुखो का पापक महत्तत्व आदि का स्वामी है वह हमारे लिए तथा तुम्हारे लिए भी सुख को उत्पन्न करे।

उवट और महीधर ने भी इन्द्र से स्वस्ति (कल्याण) कामना करने वाला अर्थ किया है।[4]

---

१ यजुर्वेद, ५ २१
२ उणादि कोश ४ २३८
३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २५ १९
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा
स्वस्ति न पूषा विश्व वदा।
स्वस्ति न स्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
४ शुक्ल-यजुर्वेद संहिता पृ० ४६३
उवट—स्वस्ति न स्वस्ति स्वस्त्ययनम न अस्माकम इन्द्र दधातु स्थापयतु। कथभूत। वृद्धश्रवा प्रभूतधन। महाशब्दो महाकीर्तिर्वा स्वस्ति नो स्माकम पूषा ददातु। कथभूत। विश्ववेदा सवनो वा। स्वस्ति न तार्क्ष्यो दधातु। कथभूत। अरिष्टनेमि अनुपहिंसितामु। स्वस्ति न अस्माक बृहस्पतिश्च दधातु।
महीधर—विराट्स्थाना। आद्यौ पादौ नववर्णौ तृतीयो दशक तुर्यो व्यूहेनैका-दशक। नवको वैराजस्त्रिष्टुभश्च इति वचनात। इन्द्र नोऽस्माकम स्वस्ति अवि-नाश शुभ दधातु ददातु। कीदृश। वृद्धश्रवा वृद्धम महत श्रव कीर्तिर्यस्य स।
क्रमश

विद्वान[1]

स्वामी जी द्वारा 'विद्वान' शब्द का अर्थ 'समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर' किया गया है। एक अन्य मन्त्र म भी इस शब्द का इसी प्रकार 'सर्वज्ञ परमेश्वर' अर्थ किया है।[2] ज्ञानार्थक 'विद' धातु से 'शतृ' एवम् उसके स्थान पर 'वसु' प्रत्यय करके 'विद्वान' शब्द निष्पन्न होता है।[3] ऋग्वेद म 'सम्पूर्ण विद्याओं को देने वाला'[4] और 'अनन्त विद्या देने वाला ईश्वर'[5] इस अर्थ म भी विद्वान शब्द प्रयुक्त है।[6]

इन्द्र की स्तुति करते हुए इन्द्र के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह सर्वथा सत्य है, असत्य नहीं है। इन्द्र 'विश्वस्य विद्वान्' अर्थात सबको जानने वाला है सर्वज्ञ है। सदाचरण से ऐसे इन्द्र (ईश्वर) की कृपा प्राप्त की जा सकती है।[7] एक मन्त्र मे कहा गया है कि हे मनीषी लोगो। इन्द्र के लिए मनीषा अर्थात स्तुति को किया करो जसी जसी तुम मनुष्यों की बुद्धियां हों, वैसी वैसी स्तुतियां करो। हम ऋषि लोग सत्य मन्त्रों और सत्य कर्मों से इन्द्र को अपने अभिमुख करते हैं। वह वीर इन्द्र हमे निश्चित रूप से सत्कर्म के लिए प्रेरित करने वाले, ज्ञानवान तथा हार्दिक रूप से स्तुति करने वालो को चाहने वाला है।[8]

पूषा न स्वस्ति ददातु। कीदृश। विश्ववेदा विश्व सर्व वेदो धन यस्य विश्व वेत्तीति वा विश्ववेदा। तार्क्ष्यो रथो गरुडो वा न स्वस्ति दधातु। कीदृश। अरिष्टनेमि अरिष्टा अनुपहिंसिता नेमिश्चक्रधारा पक्षो वा यस्य स। बृहस्पति देवगुरु वो स्मभ्य स्वस्ति ददातु।

१ यजुर्वेद, ५ ३६
२ वही ४ १६
३ विदे शतुर्वसु। अष्टाध्यायी, ७ १ ३६
४ ऋग्वेद, १ ६४ १५६
५ वही, १ ६० १
६ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० ८६५ ६६
७ ऋग्वेद ८ ६२ १२
सत्यमिद वा उ त वयमिन्द्र स्तवाम नानृतम।
महा असुन्वतो वधो भूरि ज्योतीषि सुन्वत
भद्रा इन्द्रस्य रातय ॥
८ वही, १० १६० २
तुभ्य सुतास्तुभ्यम सोत्वासस्त्वा गिर श्वात्र्या आह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवन जुषाणो विश्वस्य विद्वा इह पाहि सोमम ॥
६ वही, १० १११ १
मनीषिण प्रभरध्व मनीषा यथा यथा मतय सन्ति नृणाम।
इन्द्र सत्यैरेरयामा कृतेभि सहि वीरो गिर्वणस्युर्विदान ॥

परमेश्वर की पूजा सत्य भाव और सत्याचरण से ही सम्भव है। जिससे समस्त प्राणी कर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसने इस विश्व को अभिव्याप्त किया हुआ है, उस परमात्मा को अपने सत्कर्मों से पूजित करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है।[1]

सर्वज्ञ और सर्वगत ब्रह्म (ईश्वर) के लिए इन्द्र शब्द परोक्ष रूप से प्रयुक्त किया गया है। इन्द्र की विभूति और ऐश्वर्य का वर्णन जो किया गया है वह परमात्मा में घटित होता है।[3]

५ अत्यन्त शुद्ध स्वरूप तथा सर्वशोधक

परमेश्वर अत्यन्त शुद्ध स्वरूप है। ईश्वर अत्यन्त निर्मल, पवित्र व निष्पाप है।[4] निष्पाप ईश्वर के सम्पर्क में आने वाला भक्त भी निष्पाप हो जाता है।[5] दुष्ट व्यक्ति भी परमेश्वर की उपासना से साधु बन जाता है।[6]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में इन्द्र को 'मघवन्' अर्थात् पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त कह कर सम्बोधित किया है। इन्द्र (ईश्वर) दिव्य अर्थात् शुद्ध है।

हे (मघवन) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर! (वाजिन) वेगवाले (गव्यन्ति) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्त) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्य) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आपके तुल्य (दिव्य)

---

१ गीता, १८४६

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

२ ऐतरेयारण्यक, २४३ व ऐतरेयोपनिषद, ११३-१४

स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यद् इदमदर्शमितीम्। तस्मादिदन्द्रो नामेन्द्रो वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण इति।

३ वैदिक साहित्य, पृ० ३८०

४ यजुर्वेद, ४८

५ ऋग्वेद २२३४

यस्तुभ्यं दाशान्न तमहो अश्नवत्।

६ गीता ९३०

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

गीता ४३६

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

शुद्ध (न) न कोई (पार्थिव) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न) न कोई (जात) उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यति) होगा। इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं।

भाव यह है कि न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है, इसी से सब मनुष्यों को चाहिए कि अपनी शुद्धता के लिए उसी शुद्ध ईश्वर की उपासना करें।[1]

यजुर्वेद के कई मन्त्रों में इन्द्र को ईश्वर मानते हुए प्रार्थनाएँ की गई हैं। इन मन्त्रों का पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत है—

वह (सदावृध) सदैव बड़ा, (चित्र), अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाला परमेश्वर (न) हमारी (कया) किस (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ+भुवत) बनता है। (कया) किस (वर्ता) वर्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त प्रज्ञा से हमें शुभ गुण कर्म स्वभाव में प्रेरित करता है।[2]

भाव यह है कि हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हमको प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय से ही हम लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने में समर्थ हो सकते हैं।

हे मनुष्यो! (मदानाम) आनन्दों के मध्य में (महिष्ठ) अत्यन्त बड़ा (क) सुख स्वरूप, (सत्य) सब पदार्थों में श्रेष्ठ ईश्वर (अन्धस) अनादि से (त्वा) मुझे (मत्सत) आनन्दित करता है, (आरुजे) दुःखों के भञ्जक तुझ जीव के लिए (चित) भी (दृढा) दृढ़ (वसु) धन प्रदान करता है।[3]

भाव यह है कि जो ईश्वर आनन्दों में सबसे बड़ा है, सुख स्वरूप है, प्रजा पालक है सब पदार्थों में श्रेष्ठ है, अनादि से आनन्दित करता है, दुःख भञ्जक जीव को स्थिर धन प्रदान करता है। उस सुख स्वरूप परमात्मा की ही नित्य उपासना करनी चाहिए।

हे जगदीश्वर! क्योंकि तू (शतम) असंख्य ऐश्वर्य देता है, (ऊतीभि) रक्षादि से (न) हमारे (सखीनाम) मित्रों एवं (जरितणाम्) सत्य की स्तुति करने

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २७ ३६
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो
न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥

२ वही, ३६ ४
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा
कया शचिष्ठया वृता॥

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३६ ५
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु॥

वाले जनों का (अविता) रक्षक (सु+भवासि) उत्तम रीति से बनता है, अत हमारे लिए (अभीषुण) सब ओर से सत्कार के योग्य है।[1]

इस मन्त्र का भाव यह है कि जो परमेश्वर राग द्वेष से रहित, अजात शत्रु, सबके मित्र जनों को असंख्य ऐश्वर्य और अतुल विज्ञान प्रदान करके सब ओर से रक्षा करता है, उसी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिए।

हे (वृषन्) सुख की वर्षा करने वाले ईश्वर तू (कया) किस (ऊत्या) रक्षादि क्रिया से (न) हम (अभि+प्र+मन्द से) सर्वत्र आनन्दित करता है? (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्य) प्रशंसक जनों के लिए सुख को धारण करता है?[2]

भाव यह है कि हे परमात्मन्! जिस युक्ति से तू धार्मिक जनों को आनन्दित करता है, उनका सब ओर से पालन करता है, उस युक्ति का हम बोध करें।

इन मन्त्रों का देवता इन्द्र है। वह इन्द्र (=ईश्वर) ही सदावृध' अर्थात् सदैव बड़ा, चित्र' अर्थात् अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाला, मदानाम मंहिष्ठ' अर्थात् आनन्दों के मध्य अत्यन्त बड़ा, क' अर्थात् सुख स्वरूप, सत्य' अर्थात् सब पदार्थों में श्रेष्ठ, शतत' अर्थात् असंख्य ऐश्वर्य देने वाला और सखीनाम् जरीतॄणाम् अविता' अर्थात् मित्रों एवं सत्य की स्तुति करने वालों का रक्षक कहा गया है।

वह हमारा मित्र बनता है, वह हमारी रक्षा करता है, अपनी अत्यन्त प्रज्ञा से हमें शुभ गुण कर्म स्वभाव में प्रेरित करता है, अन्नादि से आनन्दित करता है व स्थिर धन प्रदान करता है।

वह इन्द्र (=ईश्वर) 'वृषन्' अर्थात् सुख की वर्षा करने वाला है।

इन मन्त्रों का भाष्य करते हुए उवट व महीधर ने भी इन मन्त्रों का देवता 'इन्द्र' स्वीकार किया है तथा उसे हर्ष प्रदान करने वाला व (सुख) वर्षा करने वाला कहा है।[3]

४ सर्व व्यापक

परमेश्वर सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। यह सब कुछ जो भूत भविष्य और वर्तमान में सत्ता से युक्त है वह पुरुष ही है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३६६
  अभीषुण सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभि ॥

२ वही, ३६७
  कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर॥

३ शुक्लयजुर्वेद संहिता (उवट महीधर) ३६४,५,६,७, पृ० ५८२
  उवट—कया त्वम। गायत्री। ऐन्द्री अनिरुक्ता। हे इन्द्र, कया ऊत्या केन वा गमनेन त्वम न अस्मान अभिप्रमन्दसे अभिमोदयसि हर्षयसि। हे वृषन् सक्त कया च ऊत्या केन वा गमनेन स्तोतृभ्य दातु धनानि अमर आहरसि। लडर्थे लोट्। तत्त्वयम। येन तथानुतिष्ठाम।
  महीधर—इन्द्र देवत्या गायत्री अनिरुक्तेन्द्रपदहीना। आद्यपादे व्यूहद्वयम्। हे वृषन्! वर्षतीति वृषा है सेक्त इन्द्र 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यभिधानम्। कया ऊत्या केन तर्पणेन हविर्दानेन नो स्मानभिप्रमन्दसे अभिमोदयसि। मदि-स्तु स्वपन जाड्यो मदे मोद स्तुतौ गतौ सदा। कया च ऊत्या तृप्त्या स्तोतृभ्य स्तुतिकर्तृभ्यो यजमानेभ्य आभर आहर आहरसि। धन दातुमिति शेष तदुपायेन तथा वयं कुर्म इति भाव।
  आभरेति लडर्थे लोट्।

पुरुष एवेद सर्व यदभूत यच्च भाव्यम्'।[1]

सब भूतो में परमात्मा का निवास है तथा परमात्मा में सब भूतों का निवास है।[2] *वास्तव में यह सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है।*

ईशावास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत।[3]

ऋग्वेद के अनुसार इन्द्र चारों ओर व्याप्त महान व्योम (=अन्तरिक्ष) से भी परे है। उसने द्युलोक और अन्तरिक्ष को सब तरफ से व्याप्त किया हुआ है। उस इन्द्र तुल्य कोई नहीं है। इन्द्र की व्याप्ति का अन्त न द्युलोक पा सकता है और न ही पृथ्वी लोक।[4] इन्द्र आकाश से अति सूक्ष्म, अतिव्यापक तथा समस्त जगत का रचने वाला है।[5]

इन्द्र अपनी सर्वगतत्व रूप सूक्ष्मतम एव महत्तम शक्ति से प्रत्येक रूप वाली वस्तु के रूप वाला हो जाता है। इन्द्र का यह रूप प्रत्येक वस्तु के निराकार में दिखाई देने के लिए होता है। वह इन्द्र ही अपनी माया में बहुत रूपों से युक्त होकर चेष्टा कर रहा है।[6]

इन्द्र *सर्वव्यापक और अखिल जगदीश्वर है, उसका ही भजन पूजन, भक्ति,* स्तुति और उपासना करनी चाहिए। सायण ने इन्द्र को सच्चिदानन्द सर्वगत परमात्मा कहा है।[7]

---

१ ऋग्वेद, १० ९० २

२ यजुर्वेद ४० ६
 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
 सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥
 केनोपनिषत, २ ८
 भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा।
 प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

३ यजुर्वेद, ४० १

४ ऋग्वेद, १ ५२ १२,१३,१४

५ ऋग्वेद भाष्य (सायण), १० ५५ २
 आकाशात्सूक्ष्मत्वाद्धि परमेश्वररूपाद् (इन्द्रात) भूतभव्यात्मक जगत उत्पद्यते॥

६ (क) ऋग्वेद, ६ ४७ १८
 रूप रूप प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
 इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयत, युक्ता ह्यस्य हरय शता दश॥
 (ख) द्र०—वेदवाणी, वर्ष २०, अङ्क ६, पृ० ४८

७ ऋग्वेद भाष्य (सायण), ६ ४० १८
 इदि परमैश्वर्य इत्यस्य धातोरर्थानुगमादिन्दु परमात्मा। स चाकाशवत सर्वगत सदानन्दरूप। स चेन्द्र परमेश्वरो मायाभिर्मायाशक्तिभि पुरुरूपो वियदादिभिर्बहुभिर्धर्मपरपत सन ईयते चेष्टते। एतदप्यस्य परमात्मन प्रति चक्षणाय भवति। अस्य च दशशता सहस्र सख्याका हरय इन्द्रियवृत्तय युक्ता विषय-ग्रहणायोद्युक्ता सन्ति। तदप्यस्यावास्तवरूपस्य दर्शनाय भवति।

इन्द्र ही परमात्मा है। हे मनुष्यो ! तुम जिस (समुद्रव्यचसं) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले (रथीनाम) प्रशंसा युक्त सुख के हेतु पदार्थ वालो मे (रथीतमम) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों मे युक्त (वाजानाम) ज्ञानी आदि गुणी जनो के (पतिम) स्वामी (सत्पतिम) विनाश रहित और जीवो के पालन हार (इन्द्रम्) परमात्मा को (विश्वा) समस्त (गिर) वाणी (अवीवृधन्) बढाती अर्थात विस्तार से कहती है उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो।[1]

भाव यह है कि सब मनुष्यो को चाहिए कि सब वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं योगीजन जिसकी उपासना करते हैं और मुक्त पुरुष जिसको प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्ट देव मानें।

५ सर्वपालक तथा सर्वरक्षक

स्वामी दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेदभाष्य मे 'इन्द्र' को पालन करने वाला भी माना। इन्द्र का यह सर्वपालकत्व गुण उसे परमात्मा के समान सर्वपालक सिद्ध करता है।

हे मनुष्यो ! जस (इन्द्र) पालन वाला (वाजस्य) विशेष ज्ञान का (प्रसव) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (मा) मुझ (उदग्राभम्) अच्छे ग्रहण करने के साधन से (इत्, अग्रभीत) ग्रहण कर चुके जो (अध) इसके पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष मान सिखाने वाला पुरुष (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (निग्राभेण) पराजय से (अधरान्) नीचे गिराया (अक) करे उसको तुम लोग भी सेनापति करो।

भाव यह कि जैसे ईश्वर पालना करने वाला है वैसे मनुष्य पालना के लिए धार्मिक मनुष्यो को अच्छे प्रकार ग्रहण करने और दण्ड देने के लिए दुष्टो को नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं।

इस मन्त्र मे इन्द्र (ईश्वर) को 'वाजस्य प्रसव' अर्थात 'विज्ञान का उत्पादक' कहा गया है।

---

१ इन्द्र विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचस गिर ।
रथीतम रथीना वाजाना सत्पति पतिम ॥
यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७ ६१

२ वही १७ ३
वाजस्य मा प्रसव उदग्राभमोदग्रभीत ।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरान् अक ॥

मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। ईश्वर साधुओं व सज्जनों का रक्षक व पालक है तथा दुष्टों का संहारक है।[1] जैसा ईश्वर है वैसे ही जो मनुष्य पालन के लिए सज्जनों को ग्रहण करते हैं तथा ताडन के लिए दुष्टों को वश में करते हैं वही राज्य कर सकते हैं, वही सेनापति बनाने योग्य है।

जैसे भक्त गण भक्तिभाव में तन्मय होकर भगवान को माता, पिता आदि शब्दों से सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं,[2] वैसे ही ऋग्वेद में इन्द्र को सम्बोधित करके प्रार्थना की गई है कि हे सबको बसाने वाले बहुकर्मन् और ब्रह्मप्रज्ञ इन्द्र! आप निश्चय से हमारे पिता, रक्षक व पिता के समान पालन करने वाले हो। आप माता के समान वात्सल्यगुण युक्त हो, आपसे हम सुख की कामना करते हैं।[3]

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥[4]

इस मन्त्र में कहा गया है कि हे इन्द्र! जिस प्रकार पिता पुत्रों के लिए सुन्दर विचारों तथा कर्मों की शिक्षा देकर उन्हें सर्वथा योग्य बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसी प्रकार आप भी हमें क्रतुमय अर्थात संकल्पशील, कर्मठ और यजनशील बनाइये। हे बहुतों द्वारा पुकारे जाने वाले इन्द्र! हम इस जीवन काल में अन्तर्यामी रूप से शिक्षित करते रहिये और जीते जी ही हमें ज्योति प्राप्त हो, ऐसी कृपा कीजिए।

एक मन्त्र में इन्द्र को जगदीश्वर मान कर उनसे रक्षा की प्रार्थना की गई है। हे (इन्द्र) जगदीश्वर आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देव) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिए तथा हे (द्युम्निन्) अनन्त बलयुक्त परमेश्वर! (स्य) वर्तमान (ते) आपकी (मह) बड़ी (गीः) वेद वाणी (हि) जिस कारण इन (मीढुषः) विद्या आदि अच्छे गुणों के सींचने वाले (हविष्मतः) उत्तम उत्तम हवि वाले (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वालों के (वितः) सन्देश जैसे ये पूर्व कहे हुए आपके गुणों का प्रकाश करते हुए रात्रिदिन करते हैं वैसे जो (अवया) विशेष करके यज्ञ करने वाला विद्वान है वह आपकी आज्ञा से

---

१ तुलना गीता, ४ ८

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्टतकृताम
धर्म सस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥

२ त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

३ ऋग्वेद ८ ९८ ११ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता
शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे ॥

४ वही, ७ ३२,२६

जो (यव्या) उत्तम उत्तम यव आदि हवियों को अग्नि म होम करता है, वह सब प्राणिया को सुख देन वाली होती है।[1]

इस मन्त्र मे उपमालकार है तथा भाव यह है कि जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को सग्रह करके युद्ध मे शत्रुओ को जीत कर चक्रवर्ती राज्य का प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बडे आनन्द का सेवन करत हैं, तब उत्तम राज्य होता है।

यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र म इन्द्र को परमेश्वर के रूप मे स्वीकार किया गया है। (इन्द्र) परमेश्वर (मयि) मुझ मे (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम) ऐश्वय की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और जो सब सुखा को सिद्ध करान वाले विद्वाना को दिया है, जिसको वे इन्द्र अथात विद्वान लोग प्रीतिपूवक सेवन करते हैं उन्ह तथा (राय) विद्या सुवण वा चक्रवर्ती राज्य आदि धना को (दधातु) नित्य स्थापना करे और उसकी कृपा से तथा हमार पुरुषाथ म (मघवान) जिमम कि वहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं, जिन करके हम लोग पूण ऐश्वय युक्त हो वसे (अस्मान) हम विद्वान धर्मात्मा लोगो को धन (सचन्ताम) प्राप्त हो तथा इसी प्रकार (अस्माकम) हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओ की (आशिष) कामना (सत्या) सत्य सिद्ध (सन्तु) हो और ऐसे ही (न) हमारी (आशिष) जो न्याय पूवक इच्छा युक्त क्रियाएँ हैं वे भी सत्य सिद्ध (सन्तु) हो तथा इसी प्रकार (माता) धम, अथ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करन हारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देन वाली भूमि है (उपहूता) जिसको राज्य आदि सुख के लिए मनुष्य क्रम से प्राप्त होने हैं वह (माता, पृथिवी माम्) मुख की इच्छा करने वाले मुझ को (उपह्वयताम्) अच्छे प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्नि) भौतिक अग्नि जिसको कि (आग्नीध्रात्) इन्धनादि से प्रज्वलित करत हैं वह वाञ्छित सुखो का करन वाला होकर हमारे सुखा का आगमन करन, क्योकि एस ही अच्छे प्रकार होम का प्राप्त हो के चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करन हारा होता है। (स्वाहा) सब मनुष्यो के लिए वेदवाणी इस

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३ ४६

मा पू ण इन्द्राव पत्मु
दवरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवाय।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या
हविष्मतो मरुतो वन्दते गी ॥

कम को कहती है।'[1] भाव यह है कि जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं।

आध्यात्मिक प्रसंग में आत्मा से अभिप्राय है जीवात्मा, सचेतन शरीर तथा परमात्मा।'[2] इन्द्र का पारमार्थिक दृष्टि से विचार करते हुए परमात्मा तथा जीवात्मा के रूप में वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

६ इन्द्र जगत् का स्वामी

इन्द्र जगत का स्वामी है। वह देवाधि देव है। महान् ऐश्वर्य का आधार है। स्वयं भी ऐश्वर्यवान है तथा ऐश्वर्य प्रदाता भी है।

शौनक ने इन्द्र को जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकार के प्राणियों का प्राण रूप और सम्पूर्ण जगत का स्वामी कहा है।'[3] सूर्य, अग्नि, विद्युत, वायु जल आदि देवों में सर्वोपरि इन्द्र देव है अतः वह देवों का अधिपति है। ऋग्वेद के मन्त्र '१ ६ १' की परमेश्वर परक व्याख्या करते हुए भाष्यकारों ने इन्द्र को जगत का स्वामी परमेश्वर माना है।'[4] मन्त्र का देवता अर्थात प्रतिपाद्य विषय इन्द्र है। सायण के अनुसार ब्रह्म सूर्य है अरुण अग्नि है तथा चरणशील वायु है और

---

१ यजुर्वेद-भाष्य (दयानन्द), २ १०
मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवान सचन्ताम्।
अस्माकं सन्त्वाशिष सत्या न सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोप
मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥

२ (क) वाचस्पत्यम, भाग-१, पृ० १३६
अध्यात्मम देहमिन्द्रियादिकम् आत्मानं ब्रह्म वाऽधिकृत्येत्यर्थो तत्र देहाधिकारे अध्यात्ममिति वृ०उ० अधिदेवताशब्दे दृश्यम। स्वस्यैव ब्रह्मण एवांशतया जीवस्वरूपेण भावो भवन स एवात्मानं देहमधिकृत्य भोक्तृत्वेन वर्तमानोऽध्यात्मशब्देनोच्यते इति श्रीधर। तत्र नैयायिकवैशेषिकमते आत्मा द्विविध जीवात्मा परमात्मा च।

(ख) एतरेयालोचनम् पृ० १८२
अध्यात्मव्याख्यानं तु त्रिविधं भवति आत्मशब्देन परापरात्मनो शरीरस्य च बोधात्।

३ बृहद्देवता २ ३५, पृ० ४०
चतुर्विधानां भूतानां प्राणो भूत्वा व्यवस्थित।
इष्टे चैवास्य सर्वस्य तेनेन्द्र इति स्मृत।

४ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि।

द्युलोक मे चमकने वाले रोचनशील लोक नक्षत्र और तारे हैं। ये सब इन्द्र के ही रूप हैं जो कि परमैश्वर्य से परिपूर्ण है। ऐसे सूय, अग्नि, वायु और नक्षत्रो के रूप मे विराजमान इन्द्र को तीनो लोको के प्राणी अपने कर्म मे देवता रूप से सम्बद्ध करते हैं।[1]

स्वामी दयानन्द के अनुसार—जो योगी विद्वान् लोग (परितस्थुष) चारो ओर के जगत के पदार्थों अथवा मनुष्यों को (चरन्तम) जानने वाले सर्वज्ञ, (अरुषम्) अहिंसक करुणामय (ब्रध्न) विद्यायोगाभ्याम प्रेम के द्वारा सर्वानन्दवर्धक महान् परमेश्वर को अपने साथ युञ्जन्ति युक्त करते हैं वे (रोचना) ज्ञान से प्रकाशमान तेजस्वी होकर (दिवि) द्योतनात्मक सबके प्रकाशक परमेश्वर मे (रोचन्ते) परमानन्द के योग से प्रकाशित होते हैं।[2]

स्कन्द स्वामी के अनुसार आध्यात्मिक पक्ष म मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि दीप्त और महान इन्द्र की स्तुति करने वाले और यज्ञ करने वाले लोग स्तुति और हवियो से सम्बन्धित करते हैं। आधिदैविक दृष्टि से विचारें तो मन्त्र म इन्द्र नाम से आदित्य की स्तुति की गई है। आदित्य रश्मियां जो आकाश मे चमकती हैं, वर्षा ऋतु के आरम्भ म इस इन्द्र का जो सोम पान और असुरो के साथ युद्ध के लिए लालुप रहता है तथा सम्पूर्ण स्थावर जगमात्मक जगत मे परिभ्रमण करता है, वृष्टि-कम मे उद्योगिन करती हैं।[3]

शुक्ल यजुर्वेद म मधु-माधव आदि युगल मासो के नाम स वसन्त आदि छ ऋतुओ का कुछ मन्त्रो म वणन किया गया है।

इन्द्रमिव देवा अभिसविशन्तु तया
देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम ॥[4]

यह अश प्रत्येक मन्त्र के अन्त मे है। यहा पर भी इन्द्र को देवो म प्रधान तथा

---

१ इन्द्रो हि परमैश्वर्ययुक्त । परमैश्वय च अग्निवाय्वादित्यनक्षत्ररूपेणावस्थानादुपपद्यते। ब्रध्न आदित्यरूपेणाव स्थितम्, अरुष हिंसकरहितोग्निरूपेणावस्थितम चरन्तम-वायुरूपेण सर्वत प्रसरन्तमिन्द्रम, परितस्थुष —परितो वस्थिता लोकत्रयवर्तिम प्राणिन युञ्जन्ति स्वकीय कर्मणि देवतात्वेन सम्बद्ध कुर्वन्ति। तस्येवेन्द्रस्य मूर्ति विशेष भूतानि रोचना रोचनानि नक्षत्राणि दिवि द्युलोके रोचन्त प्रकाशन्ते। ऋग्वेद भाष्य (सायण) १ ६ १।

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (दयानन्द) (अजमेर सवत् २००६), पृ० २३६

३ ऋग्वेद भाष्य (स्कन्द स्वामी), १ ६ १

४ यजुर्वेद १३ २५, १४ ६ १४ १५ १४ १६, १४ २७, १५ ५७।

विशिष्ट कहा गया है। उवट तथा महीधर ने इन्द्र को देवराज कहा है तथा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है।[1]

इन्द्र का अभिप्राय ईश्वर होने पर प्रकृति के दिव्य पदार्थ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि उसके अधीन और अनुशासन में रहने वाले देव हैं।[2] अत इन्द्र देवाधि देव है।

यदि जीवात्मा अथवा मन इन्द्र पद वाच्य है तो चक्षु श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिया और हस्तपादादि कर्मेन्द्रिया उसके अनुशासन मे रहने वाले देव हैं। यदि मनुष्यो मे राजा इन्द्र पद वाच्य है तो उसके अनुशासन म रहने वाले विद्वान सभासद आदि देव हैं। इन्द्र सबका स्वामी है। वह देवाधि देव है। अत कहा गया है कि इन्द्र देवगण तुम्हारी मित्रता के लिए सर्दव नियम म रहने का प्रयत्न करते रहे, करते हैं तथा करते रहेंगे।[3]

इन्द्र को सामगान करने वाले बृहत्साम द्वारा, ऋग्वेदाध्यायी ऋचाओ के द्वारा तथा यजुर्वेदाध्यायी याजुष मन्त्रो के द्वारा स्तुति करते है।[4] इन्द्र ने आकाश मे सूर्य को ऐसे स्थापित किया हुआ है, जिससे वह सुदीर्घकाल तक प्राणियो को दिखाई दे सके। वह इन्द्र ही जल से भरे मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है।[5] सबके ऊपर वर्तमान जिस एकमात्र देव को मनुष्यादि प्राणी रक्षा आदि के लिए पुकारा करते हैं, वह इन्द्र हैं।[6] सर्वाधिक स्तुति को प्राप्त होने वाला, सबका नियन्तक व स्वामी इन्द्र परमात्मा ही हैं।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (उवट व महीधर) १३ २५
इन्द्रमिव देवा। यथा इन्द्र देवाना राजानम् परिचरणाय देवा अभिसंविशन्ति एव वस तमृतमया इष्टका परिचरणाया भिसंविशन्तु।

२ यजुर्वेद, २५ १३
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा।
यस्यच्छाया मृत यस्य मत्यु कस्मदेवाय हविषा विधेम॥

३ वही, ३३ ६५
देवास्तु इन्द्र सख्याय यमिरे।

४ ऋग्वेद, १ ७ १
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्के भिरर्किण।
इन्द्रवाणीरनूषता।

५ वही, १ ७ ३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि।
वि गोभिरद्रिमरैयत्।

६ वही, १ ७ १०
इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य।
अस्माकमस्तु केवल॥

इन्द्र विश्वा अवीवृधम
समुद्रव्यचस गिर ।
रथीतम रथाना वाजाना
सत्पतिम पतिम ॥[1]

जो इन्द्र समुद्र की व्याप्ति के समान महान है प्रशस्त रथ वाले वीरो मे भी श्रेष्ठ वीर और प्रशस्त रथ वाला है सग्रामो, अन्नो और बलो का रक्षक, सत्य व सज्जनो का सरक्षक तथा ऐश्वय का स्वामी है सम्पूर्ण वाणिया उसके यश को फैलाती है।

पारमार्थिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से यहा इन्द्र शब्द से ससार रूपी रथ का स्वामी होने के कारण परमेश्वर अथ अभिप्रेत है। व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम रथ वाला परमैश्वय युक्त प्रजापालक राजाधिराज अथ लिए जा सकते है।

७ सुख प्रदेश्वर इन्द्र

इन्द्र को सुख देने वाला ईश्वर भी माना गया है और प्राथना की गई है कि (इन्द्र) सुख देने वाले ईश्वर ! जो आप (स्तर) सुखो से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिए (कदाचन) कभी (इत्) दान को (नु) शीघ्र (न) नही (सश्चसि) प्राप्त कराते, तो है (मघवन) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर। (देवस्य) कमफल के देने वाले (ते) आपका (दानम) दिया हुआ (इत्) ही दान (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिए (भूय) फिर (नु) शीघ्र (उपोप पृच्यते) (कभी नही) प्राप्त होता।[2]

भावाथ यह है कि जो जगदीश्वर कम के फल को देने वाला नही होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नही हो सकता।

एक अय म त्र मे इन्द्र को परमेश्वर मान कर सुख की कामना की गई है।

हे मनुष्य ! तुम (रोदसी) आकाश भूमि (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुमखम) सुन्दर यज्ञ जिसमे हो ऐसे (नृम्णम) धन (मह) बल (च) और (महि) बडे (श्रव) यश को (सपयत) सेवते हैं उस विश्वानराय (सब मनुष्य जिसमे हो महे) महान (मन्दमानाय) आनन्दस्वरूप (विश्वाभवे) सबको प्राप्त व सब पृथिवी के स्वामी व ससार जिसमे हो उस ईश्वर के अथ (प्र अचत) पूजा करो अर्थात् उसको मानो वह (व) तुम्हारे लिए (अन्धस) अन्नादि के सुख को देवे।

---

१ यजुर्वेद, १२ ५६, १५ ६१ व १७ ६१

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३ ३४
कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपो पेन्नु मघवन भूयऽइन्नु ते दान देवस्य पृच्यते ॥

भाव यह है कि हे मनुष्यो ! जिसके उत्पन्न किए धन और बलादि को सब सवत उसी महाकीर्ति वाले सबके स्वामी आनन्द स्वरूप सवव्याप्त ईश्वर की तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिए वह तुम्हारे लिए धनादि से होने वाले सुख को देगा।'

परमैश्वय युक्त परमात्मा उत्तम पदार्थों की रचना करके प्राणी मात्र को सुख देता है। इसी दष्टि से इन्द्र का भी सबका सुख देने वाला कहा गया है।

हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वय युक्त परमात्मा के लिए जो आप (उपयामगहीत) यागविद्या के प्रसिद्ध अग यम के सेवन वाले पुरुषो स स्वीकार किये (असि) हो। उस (ध्रुवसदम) निश्चल विद्या विनय और याग धर्मों म स्थित (नपदम) नायक पुरुषो म अवस्थित (त्वा) आपका तथा (मन सदम) विज्ञान म स्थिर (जुष्टम) प्रीतियुक्त (त्वा) आपको (गहणामि)स्वीकार करता हू। जिस (ते) आपका (एष) यह (योनि) सुखनिमित्त है, उस जुष्टतमम अत्यन्त सवनाय (त्वा) आपको (इन्द्राय) राज्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धारण करता है। हे राजन ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वय धारण के लिए जो आप (उपयाम गहीत) प्रजा और राज पुरुषो से स्वीकार किये (असि) हो। उस (अप्सुसदम्) जलो के बीच चलते हुए (घनसदम्) की आदि पदार्थों को प्राप्त हुए (त्वा) आपको और (व्योम सदम) विमानादि याना से आकाश मे चलते हुए (जुष्टम) सबके प्रिय (त्वा) आपका गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

हे सबकी रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष राजन ! जिस (ते) आपका (एण) यह (योनि) सुखदायक घर है, उस (जुष्टतमम) अतिप्रसन्न (त्वा) आपका (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओ के मारन के लिए स्वीकार करता हू। हे सब भूमि मे प्रसिद्ध राजन्। मैं (इन्द्राय) विद्या, याग और मोक्षरूप ऐश्वय की प्राप्ति क लिए जो आप (उपयामगहीत) साधन उपसाधनो से युक्त (असि) हा, उस (पृथिवी सदम्) पृथिवी मे भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) अवकाश मे चलने वाले (त्वा) आपका और (दिविसदम) न्याय क प्रकाश मे नियुक्त (देवसदम) धर्मात्मा और विद्वानो के मध्य मे अवस्थित (नाकसदम) सब दुखो से रहित परमेश्वर और धम म स्थिर (जुष्टम) सेवनीई (त्वा) आपको (गृह्णामि) स्वीकार करता हू। हे सब सुख दने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एष) यह (योनि) रहो का स्थान है उस (जुष्टतमम) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आपको (इन्द्राय) समग्र ऐश्वय सुख होने के लिए (गृह्णामि) ग्रहण करता हू।

भाव यह है कि हे राज प्रजावनो ! जसे सवव्यापक परमेश्वर सम्पूण ऐश्वय

---

१ प्रवो महे मन्दमानायान्धसोर्चा
विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमख सहो
महि श्रवो नम्ण च रोदसी सपयत ॥ यजुर्वेद भाष्य, ३३ २१

के लिए जगत रच के सबके लिए सुख देता है, वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिससे अर्थ, धर्म काम और मोक्ष फलो की प्राप्ति सुगम होवे।[1]

हे (मरुत) विद्वान् मनुष्यो। (ऋतावृध) ऋत अर्थात सत्य को बढाने वाले आप लोग (देवाय) दिव्य गुणो वाले (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त ईश्वर के लिए (देवम) दिव्य सुखदायक (जागृवि) जागरूक (ज्योति) तेज को (अजनयत्) उत्पन्न करो उस (वृत्रहन्तमम) वृत्र अर्थात् मेघ का हनन करने वाले सूर्य के समान (बृहद्) महान साम का (तस्य) उस ईश्वर के लिए (गायत) गान करो अर्थात् उसकी स्तुति करो।[2]

भाव यह है कि मनुष्य सदा ही युक्त आहार विहार से शरीर और आत्मा के रोगो का निवारण करके, पुरुषार्थ को बढा कर, परमेश्वर के प्रति स्तुति गगन करे।

हे विद्वान। जसे—(देवम) दिव्य (वारितीनाम) वरण के योग्य पदार्थों के मध्य म वर्तमान (स्वासस्थम) अच्छे प्रकार बैठने के आधार (इन्द्रेण) ईश्वर के साथ (आसन्नम) समीपस्थ (इन्द्रम) विद्युत एवम (बर्हि) अन्तरिक्ष (देवम्) दिव्य गुण का (अवर्धयत्) बढाता है, (अन्या) अन्य (बर्हीषि) अन्तरिक्ष के अवयव (अभि+अभूत) सब ओर व्याप्त है, (वसुवने) पदार्थ विद्या के याचक के लिए (वसुधेयस्य) सब द्रव्यो के आधार जगत के मध्य मे (वेतु) पदार्थों का प्राप्त कराता है, वैसे (यज) यज्ञ कर।[3]

जसे आकाश समीपवर्ती है वैसे ईश्वर का समीपवर्ती जीव है। यहाँ उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलकार है। भाव यह है कि जैसे सब ओर व्याप्त आकाश सब पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है, सबके समीप है, वैसे ईश्वर के समीपवर्ती जीव को जानकर इस ससार मे सुपात्र याचक को ही विद्यादि का दान दो।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ९ २
ध्रुवसद त्वा नृषद मन सदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्ट गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। अप्सुषद त्वा घृतसद व्योमसदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह णाम्येष त योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम। पृथिविसद त्वा ऽन्तरिक्षसद दिविसद देवसदम् नाक सदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्टम गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम॥

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २० ३०
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देव देवाय जागृवि॥

३ देव बर्हिवारितीना देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्ही ष्यभ्यमूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥
वही, २८ २१

जिनका (इध्म) प्रदीप्त, (पृथु) विस्तीर्ण (स्वरु) प्रतापी (युवा) युवक (बृहन्) महान (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान परमात्मा (सखा) मित्र है (एषाम) इन मनुष्यो का (इत) ही (भूरि) बहुत (शस्तम) स्तुति योग्य कर्म होता है।[1]

इस मन्त्र म उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त होने के कारण वाचक लुप्तोपमा अलकार है। परमात्मा के सखा सूर्य के समान प्रतापी होते हैं। भाव यह है कि प्रदीप्त, विस्तीर्ण प्रतापी युवक महान परम ऐश्वर्य वाला परमात्मा जिन मनुष्यो का मित्र है वे अत्यन्त प्रशसा को प्राप्त होते है और जैसे इस ब्रह्माण्ड मे सूर्य प्रताप से युक्त है, वैसे प्रतापी होते हैं।

इस मन्त्र म इन्द्र (=ईश्वर) को 'इध्म' अर्थात प्रदीप्त पृथु' अर्थात् विस्तीर्ण 'स्वरु' प्रतापी, युवा' अर्थात युवक और बृहत अर्थात महान् कहा गया है।

ऋग्वेद म इन्द्र से सम्बन्धित कुछ मन्त्रो मे इन्द्र का हरियो अर्थात अश्वो के साथ अथवा अश्वो से जुडे हुए रथ मे बैठकर इतस्तत आ जाना, सग्रामो को जीतना, सोमपान के लिए अत्यन्त लालायित रहना, सोमपान से उत्पन्न शक्ति स अनेक वीरता युक्त कार्यों को करना, सब पर शासन करना, अपने अधीन प्रजा को अच्छे कार्यों मे लगाना व अशुभ कार्यों स रोकना, दुष्ट प्रकृति को अर्थात वृत्रादि का अपने वज्र से मारना, सासारिक भोगो और वैभवो को भोगना आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार के वर्णनो म इन्द्र शब्द सामान्य जीव अथवा जीवात्मा का वाचक ही प्रतीत होता है। वास्तव मे जीवात्मा ही विविध क्रियाओ का कर्त्ता और विविध भोगो का भोक्ता है।[2]

स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य मे शरीर परक अध्यात्म का चित्रण करते हुए जीवात्मा योग, प्राणादि सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए हैं। एक मन्त्र मे अग्नि के दृष्टान्त से जीवात्मा के गुणो का वर्णन किया गया है। एक मन्त्र मे जीवात्मा को 'चित' अर्थात विद्युत् के समान स्वप्रकाश, 'अमृत' अर्थात स्वरूप के नाशरहित, 'सहोजा' अर्थात बल का उत्पादन करने वाला, 'होता' अर्थात कर्मफल का भोक्ता, सब

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३३ २४
बृहन्निदिध्मएषा भूरि शस्त पृथु स्वरु ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥

२ साख्य दर्शन, सूत्र १ १०४ व ६ ५०
चिदवसाना भोग । चिदवसाना
भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ।

मन और शरीर का धर्ता 'दूत' अर्थात सबको चलाने हारा और 'देवताता' अर्थात् दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्य स्वरूप कहा गया है।[1]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा है कि मरण को प्राप्त हुआ जीव अपने कर्म से तीव्र स्वभाव वाला और शान्त, भयकारी और निर्भय, अन्धकार को प्राप्त और प्रकाश को प्राप्त, कांपता हुआ और निष्कम्प वस्तु, सहनशील और न सहने वाला, संयुक्त और वियुक्त तथा विक्षेप को प्राप्त होता है।[2]

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च।
सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥[3]

इसी मन्त्र का ऋषिकृत पदार्थ अन्वयानुसार इस प्रकार होगा—पुनः के जीवा विगुणाः सन्तीत्याह। हे मनुष्या मरणं प्राप्तो जीवः (स्वाहा) स्वकीयया क्रियया (उग्रश्च) तीव्र स्वभावः शान्तस्वभावः[4] (भीमः) बिभेति यस्मात् स भयङ्करः निर्भयश्च (ध्वान्तश्च) ध्वान्तमन्धकारं प्राप्तः प्रकाशं गतश्च, (धुनिश्च) कम्पमानः निष्कम्पश्च (सासह्वान् च) भृशं सहमानः असहमानो वा (अयुग्वा च) यो मितो युक्तो वियुक्तश्च (विक्षिपः) यो विक्षिपति विक्षेपं प्राप्नोति स जायते।

स्वामी जी ने जीवात्मा की परमात्मा से पृथक् स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है, जीव भी परमात्मा के समान अजर-अमर है, किन्तु परमात्मा सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ। परमात्मा द्रष्टा है तथा जीव अपने कर्म फलों का भोक्ता है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'[5] 'न नूनमस्ति नो श्वः'[6] 'अयं होता प्रथमः'[7] आदि मन्त्रों के भाष्य से ये सम्यक् प्रमाणित कर दिया गया है।

---

१ ऋग्वेद १.५८.१

नूचित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते
होता यद् दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो
मम आ देवताता हविषा विवासति ॥

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३९.७

३ वही, ३९.७

४ ऋग्भाष्य (सायण) १०.१६०.१

च से अन्य सत्य अथवा विरोधी वस्तुओं का ग्रहण कर लिया जाता है।
चकाराभ्याम् अयदर्थिन्यार्थेषु धर्मावाम समुच्चीयते।

५ ऋग्वेद भाष्य (दयानन्द) १.१६४.२०

६ वही, १.१७०.१

७ वही १.१६४।

यह शरीर एक यज्ञ स्थली है मन सप्त होता यज्ञ को रचा रहा है। पाँच प्राण, जीवात्मा व अव्यक्त मे मानस यज्ञ के सात होता माने गए हैं।[1] आत्मा का कत्तव्य परमात्मा का दर्शन करता है। कहा भी गया है—'युञ्जते मन उत युञ्जत धिय'[2] अर्थात जीवात्मा को परमात्मा के साथ याग करना है। स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य मे अनेक मन्त्रो म 'इन्द्र' का अर्थ जीव अथवा जीवात्मा किया है।[3]

इन्द्रिय शब्द से भी सिद्ध होता है कि इन्द्र का अर्थ जीवात्मा है। जब कोई मरता है तो भी कहा जाता है कि इसके प्राण चले गए अथवा आत्मा चला गया।[4]

जीवात्मा ही प्राण और इन्द्रिय रूप देवो का प्रमुख व राजा है। इन्द्र शब्द जीवात्मा का वाचक है।[5] देवराज यज्वा ने अपने निघण्टु भाष्य मे इन्द्र को आत्मा का वाचक माना है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३ ४४।

२ ऋग्वेद, ५ ८१ १।

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १६ ७६, २२ ५४, २८ ८, २८ ६, २८ १८, २८ २६, २८ २८ २८ ३३, २८ ३५, २८ ३६, २८ ३७, २८ ३६, २८ ३६, २८ ४०, ३२ १३।

४ इन्द्रिय शब्देन सिद्ध्यति यद आध्यात्मिक दृष्ट्या इन्द्र=जीवात्मा यथा कश्चित म्रियते तथा कथ्यते—प्राणा (वायव) निगता, जीवात्मा (इन्द्र) वा निगत।

मनुष्य स्वजीवात्मानम् (इन्द्रम्) प्रार्थयत यत्षटशत्रुभ्यो मोह क्रोध मात्सर्य-काम मद लोभेभ्यो मम रक्षा कुरु, एषा च शत्रूणाम् दृषदेव पेषण कुरु।

उलूकयातु शुशुलूकयातुम।

जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।

सुपर्णयातु मुत गृध्रयातुम्

दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥

ऋग्वेद, ७ १०४ २२।

वेद समुल्लास पृ० १०।

५ (क) अष्टाध्यायी, ५ २ ९३।

इन्द्रियमिन्द्रलिगमिन्द्रदष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमितिवा।

काशिका, ५, २ ९३।

इन्द्रियमिति रुढिरेषा चक्षुरादीना करणानाम।

इन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियम। इन्द्र आत्मा, स चक्षुरादिना करणेनानुमीयते, नाकतृ क करणमस्ति। इन्द्रेण दृष्टम्, आत्मना दृष्टमित्यर्थ।

(ख) तैत्तिरीय ब्राह्मण, २ २ १० ४

अस्मिन् वा इदमिन्द्रिय प्रत्यस्थादिति तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम्।

'इन्द्र । इदि परमैश्वर्ये । परमैश्वर्ययुक्त उच्यते । इन्द्रस्य लिंगम्, प्रनेन हि ऐश्वर्ययुक्त इति व्यज्यते । अत्र षष्ठी समर्थात लिंगार्थप्रत्ययः । यद्वा इन्द्रेण दृष्टमिन्द्रियम । यद्वा इन्द्र आत्मा तेनेन्द्रेण शुभाशुभेन कर्मणा सृष्टम । इन्द्रजुष्टम वा आत्मना सेवितम तद्द्वारेण भोगोत्पत्ते ।'[1]

दुर्ग ने भी आत्मा को इन्द्र पद वाच्य माना है ।[2]

द्वावात्मानौ अन्तरात्मा शरीरात्मा च ।[3] इस वचन के अनुसार आत्मशब्द से अन्तरात्मा और शरीरात्मा दोनो का ग्रहण कर लिया जाता है । ऋग्वेद के अनुसार जीवात्मा अमर्त्य परन्तु मरणशील शरीर के साथ आविर्भूत और तिरोभूत होने वाला है ।[4] ऋग्वेद के एक मन्त्र का भाष्य करते हुए सायण ने स्वीकार किया है कि मन्त्र में इन्द्र की जो स्तुति की गई है वह इन्द्र नाम से अन्तरात्मा की ही स्तुति की गई है ।[5]

स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र स्तुति को जीवात्मा अथवा जीव की स्तुति मान कर पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत किया है । एक मन्त्र का अर्थ करते हुए कहा है कि इन्द्र नामक यह जीव बुद्धियो से रूपो मे प्रत्यक्ष वर्णन करने के लिए तदाकार बुद्धि वाला होता है और अनेक प्रकार के शरीरो को धारण कर चेष्टा करता है और शरीर के प्रति तत्तत् स्वभाव वाला होता है और विद्युत से युक्त इसके शरीर मे जो असंख्य नाडियाँ, इन्द्रिय अन्तःकरण व प्राण है उनमे यह सारे शरीर के समाचारो को जाना करता है ।[7]

---

१ निघण्टु भाष्य (देवराज यज्वा) २ १० २ ।

२ निरुक्त टीका (दुर्ग), १ १ २ ।

इन्द्रियनित्य वचनमौदुम्बरायाण

निरुक्त टीका (दुर्ग) १ १ २ ।

इन्द्र आत्मा स येन ईयते लिंग्यते अनुमीयते चास्त्यसाव यस्येदम करणम ।

३ महाभाष्य १ ३ ६७ ।

४ ऋग्वेद १ १६४ ३० ।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुव मध्य आ पस्त्यानाम ।

जीवोमृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनि ॥

वही, १ १६४ ३८ ।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येनासयोनि ।

ताशश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्य चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् ।

५ ऋग्वेद १० २७ २४ ।

६ ऋग्वेद भाष्य (सायण), १० २७ २४ ।

७ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), ६ ४७ १८ ।

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति ना य प या विद्यतेऽयनाय'[1] तथा
उर्वारुकमिव ब धना मृत्योमु क्षीयमामतात' ।[2]

शुक्लयजुर्वेद के इन म त्राशो को ध्यान मे रखते हुए इ द्र का दूसरा आध्यात्मिक स्वरूप यह भी है कि वह स्वयम तो अत्य त सूक्ष्म, सत चित स्वरूप, अज मा और विनाशरहित है कि तु कम के अधीन होन स शरीर को धारण करके सुख दु खादि भोगो का भोगता रहता है। अ त मे परम पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार करके मत्यु रूप ब धन से मुक्त होता है।[3]

ऋग्वेद के समान यजुर्वेद मे भी अनेक म त्रो मे इ द्र पद जीवात्मा अथ का बोधक है।

ऐ द्र प्राणोऽङ्गेऽङ्गे निदीध्य द्र
उदानोऽङ्गेऽङ्गे निधीत ।[4]

यजुर्वेद के इस म त्र मे शरीर मे रहने वाले प्राण और उदान का मुख्य सम्ब ध इ द्र स बताया गया है। इ द्र से सम्बन्धित प्राण और उदान अग अ ग मे रहते हैं। इ द्र पद जीवात्मा का प्रत्यायक है। सायण, उवट, महीधर और स्वामी दयान द— इन भाष्यकारो म इस स्थल पर कोई विरोध नही है। इतन अश म चारो वेदभाष्यकारो का ऐकमत्य है।[5]

इ द्रो जीवो देवता अस्य स ए द्र । (प्राण) शरीरस्थो वायुविशेष (अग अगे) यथा प्रत्यग प्रकाशते।'[6]

---

१ शुक्लयजुर्वेद, ३१ १८।
२ वही, ३ ६०।
३ वेद मे इ द्र, पृ० ३९।
४ यजुर्वेद, ६ २०।
५ (क) यजुर्वेदभाष्य (उवट), ६ २०।
पशु समशति। ऐ द्र प्राण।
इ द्र आत्मा तस्य स्वभूत प्राण ऐ द्र, प्राण।
(ख) यजुर्वेद भाष्य (महीधर), ६ २०।
ऐ द्र प्राण इति पशु समशतीति, पशुरूपम् हवि स्पृशेदिति सूत्राथ । इ द्र आत्मा तत्सम्ब धी प्राण प्राणवायुरस्य पशोरगे अ गे सर्वेष्वगेषु निदीध्यत्। निहित तथा ऐ द्र इ द्रसम्ब धी, उदान वायु पशो सर्वेष्वगेषु निधीत निक्षिप्त।
(ग) काण्वसहिता भाष्य (सायण) १ ६ ४ ४।
ऐ द्र इ द्रसम्ब धी प्राणवायु।
६ यजुर्वेदभाष्य (दयान द) ६ २०।

यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों मे इन्द्र और इन्द्रिय शब्द का साथ साथ प्रयोग हुआ है।[1] इन स्थलो में इन्द्र से सम्बन्धित वस्तु इन्द्रिय कही गई है। इन्द्र का अर्थ जीवात्मा होने पर प्रकरणानुसार इन्द्रिय का अर्थ भी शरीरस्थ करचरणादि कर्मेन्द्रिय व चक्षु श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय लिया जाएगा। प्रकरण भेद में इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्यवान मानने पर इन्द्रिय का अर्थ परमैश्वर्य होगा। जो इन्द्रिय युक्त है अर्थात् ऐश्वर्य युक्त है वह इन्द्र है।

अश्विना तेजसा चक्षु प्राणेन सरस्वती वीर्यम्।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।[2]

मन्त्र के उत्तरार्ध का भाव है कि इन्द्र ने वाणी और बल से इन्द्र के लिए इन्द्रिय का धारण किया। महीधर के अनुसार प्रथमान्त इन्द्र से पूर्व जन्म मे उत्पन्न इन्द्र और चतुर्थ्यन्त इन्द्र में वर्तमान इन्द्र का बोध होता है।[3] स्वामी दयानन्द के अनुसार 'इन्द्र' अर्थात सभा का अधिष्ठाता 'इन्द्राय' अर्थात जीव के लिए तथा 'इन्द्रियम्' अर्थात जीव के चिह्न को—यह अर्थ करके मन्त्र की सगति लगाई गई है।[4]

एक मन्त्र में इन्द्रम् का अर्थ सूर्य के तुल्य जीव किया गया है।

हे विद्वन्! जो (इन्द्र) प्राणों के द्वारा (भारती) धारण करने वाली वाणी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञान से युक्त वाणी (यज्ञम्) सगति के योग्य

---

१ यजुर्वेद ९ ४०, १० १८।
इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते।
ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय॥
वही, १० १७।
सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा
सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण।
वही २० ५६, ७०, ७३, ७८, ८०।
वही १६ ७२ ७६।
इन्द्रस्येन्द्रियम्०
२ यजुर्वेद, २० ८०।
३ यजुर्वेदभाष्य (महीधर), २० ८०।
इन्द्र कल्पान्तरीण वाचा बलेन च राह इन्द्रायैतत्कल्पोत्पन्नाय इन्द्रिय सामर्थ्य ददौ।
एवमश्विसरस्वत्यौ इन्द्राय तेज आदि दधुरित्यर्थ।
किन्तु यजुर्वेद के एक मन्त्र ९ ४० मे—
महीधर ने ही इन्द्रस्येन्द्रियाय का अर्थ आत्मा के पराक्रम के लिए अथवा आत्मा के ज्ञान के लिए किया है। 'इन्द्रस्यात्मन इन्द्रियाय वीर्याय आत्मज्ञानसामर्थ्याय।
४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) २० ८०।

व्यवहार को (वसुमती) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसनीय वाणी (गृहान्) गृहस्थों व घरों का धारण करती हुई (देवी तिस्र) ये तीन दिव्य वाणियां (तिस्र देवी) तीन दिव्य क्रियाओं को तथा (पतिम्) पालक (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य जीव को (अवर्द्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार (वसुवने) संसार में (गृहान्) गृहस्थों वा घरों को (व्यन्तु) व्याप्त करती हैं, उनका तू (यज) संगत कर और उनकी (अस्पृक्षत्) स्पृहा अथवा कामना करो।[1]

भाव यह है कि जैसे जल, अग्नि और वायु की गतियां दिव्य क्रियाओं को और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे सब मनुष्य उक्त तीनों वाणियों को जानें तथा इस संसार में लक्ष्मी को प्राप्त करें।

इन्द्र ही वायु को धारण करने वाला जीव है। हे (होतारा) विद्या आदि के दाता अध्यापक और उपदेशको। जैसे—(देव्या) कमनीय विद्वानों में कुशल (देवा) कमनीय विद्वान् (वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले (देवम्) कामना करने वाले (इन्द्रम्) जीव को (देवौ) शुभ गुणों की कामना करने वाले माता पिता तथा (देवम्) कमनीय पुत्र के समान (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वीताम्) प्राप्त करते हैं।

हे विद्वन्! (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुम् नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाश से युक्त (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय तथा (वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर।[2]

भाव यह है कि विद्वान लोग माता-पिता के समान वेद विद्या से सबको बढ़ावें एवम् मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें। इन्द्र (=जीव) को प्राणों का धारक भी कहा गया है।

हे (होतः) यजमान! जैसे (होता) विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला विद्वान् (वृत्रहन्तमम्) वृत्र अर्थात् मेघहन्ता सूर्य के तुल्य (इन्द्रम्) सुशिक्षित

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २८ १८
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवी: पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
अस्पृक्षद् भारती दिवं रुद्रैर्यज्ञं सरस्वतीडा वसुमती
गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥

२ यजुर्वेद-भाष्य (दयानन्द) २८ ४०
देवा देव्या होतारा देवमिन्द्रम्।
वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे
वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥

वाणियो स (ईडेन्यम्) स्तुति के योग्य (ईडितम) प्रशस्त (सह) बल (वयम) प्रशसा के योग्य (सामम) साम आदि आषधि गण (वयोधसम्) कमनीय प्राणों के धारक (इन्द्रम) जीव को (यक्षत) सग करता है (इन्द्रियम) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (अनुष्टुभम्) स्तुति क योग्य (छन्द) स्वतन्त्रता (पञ्चाविम) पाच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम) पृथिवी और (वय) कमनीय वस्तु को (आज्यस्य) विज्ञेय वस्तुओं के मध्य मे (दधत) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त करता है वैसे इन्हे (यज) प्राप्त कर।

भाव यह है कि जो मनुष्य न्याय से प्रशस्त गुण वाले सूर्य क तुल्य प्रशस्त होकर जानने योग्य वस्तुओ को जानकर स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियता और राज्य को धारण करते हैं, वे प्रशसा क योग्य होते हैं।[1]

हे विद्वन ! जसे (दुघे) सुख मे पूर्ण करने वाली, (सुदुघे) अच्छे प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने वाली (देवी) सुखदात्री (ऊर्जाहुती) सुगन्धित अन्न की आहुतियाँ (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को (देवी) पतिव्रत विदुषी स्त्री (देवम) स्त्रीव्रत विद्वान के तुल्य (अवधताम) बढाती हैं। (पक्त्या) पक्ति नामक (छन्दसा) छन्द मे (इन्द्रे) जीव म (शुक्रम्) वीर्य और (इन्द्रिय) धन को (वीताम) प्राप्त कराती है, वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवन) धन सेवक के लिए (वय) कमनीय सुख को (दधत) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर।[2]

भाव यह है कि मनुष्यो, जैसे अग्नि म डाली हुई आहुती, मघ मण्डल म पहुँच कर और फिर लौट कर शुद्ध जल से सब जगत् को पुष्ट करती है, वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट करना चाहिए।

हे विद्वन् ! जैसे (उषासानक्ता) रात्रि और दिन के तुल्य (देवी) विद्यादि गुणों से देदीप्यमान अध्यापिका और अध्येत्री स्त्रियाँ (वयोधसम) आयु को धारण करने वाले (देवम) दिव्य गुणो से युक्त (इन्द्रम) जीव को तथा (देवी) दिव्य पतिव्रता स्त्री (देवम) दिव्य स्त्रीव्रतपति के तुल्य (अवधताम) बढाती हैं और जम (वसुधेयस्य) कोष क (वसुवने) द्रव्य याचक के लिए (वीताम) प्राप्त होती है वस जीवन को (दधत)

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ २६
होता यक्षदीडेन्यमीडित वृत्रहन्तममिडाभिरीड्य सह सामामिन्द्र वयोधसम।
अनुष्टुभ छन्द इन्द्रिय पञ्चावि गा वयो दधद्वेत्वा ज्यस्य होतयज॥

२ वही, २८ ३९
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे
पयसेन्द्र वयोधस दवी देवमवर्धताम।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रिय शुक्रमिन्द
वयादध द्वसुवन वसुधेयस्य वीता यज॥

धारण करता हुआ (अनुष्टुभा) अनुष्टुप नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (इन्द्रियम) जीव से सेवित इन्द्रिय एवम् (बलम) बल को (यज) प्राप्त कर।[1]

भाव यह है कि जैसे प्रीति से स्त्री पुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धन व्यवस्था से आप लोग बढ़ें।

हे मनुष्यो! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया अथवा वाणी से जिस (सन्स) सभा, ज्ञान न्याय व दण्ड के (पतिम) पालक (अदभुतम) आश्चर्यपूर्ण गुणकर्मस्वभाव वाले (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव के लिए (काम्यम) कामना करने योग्य (प्रियम) प्रीति विषय वाले अथवा सदा प्रसन्न करने वाले व रहने वाले परमात्मा की उपासना और सेवा करके (सनिम) सत्य और असत्य का सधिभाव करने वाली (मेधाम) मगत मेधा बुद्धि को (अयासिषम) प्राप्त करता हूँ, उसकी सेवा करके इसे तुम भी प्राप्त करो।[2]

इन मन्त्रों में इन्द्र (जीव) को 'वयोधसम' अर्थात आयु को धारण करने वाला, 'देवम्' अर्थात दिव्य गुणों से युक्त, 'पतिम्' अर्थात पालक, 'ईडितम' अर्थात प्रशस्त आदि विशेषणों से युक्त किया गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र देवता का पारमार्थिक दृष्टि से अर्थ करते हुए अध्यात्म ईश्वर परक अर्थ 'परमेश्वर' स्वीकार किया है तथा अध्यात्म शरीरपरक अर्थ जीवात्मा' माना है। महर्षि के विचारानुसार वेदों का मुख्य तात्पर्य ईश्वरानुभव में ही है। वे विज्ञान विषय को ही मुख्य बताते हैं। अतः वेद भाष्य में भी ईश्वरपरक अर्थ को ही प्रधानता दी है।[3]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ ३७
देवी उषा सानक्ता देवमिन्द्रम
वयोधस देवी देवमवधताम।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियम
बलमिन्द्रेवयो दधद्वसुवने
वसुधेयस्यवीता यज॥

२ वही, ३२ १३
सन्सस्पतिमद्भुत प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्
सनि मेधामयासिष स्वाहा।

३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय विचार प्रकरण
तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्यास्ति।
तस्यपरमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्त पदार्थेषु साक्षाद् बोधान्वयत्वात।
तत्रापि ईश्वरानुभवो मुख्यो स्ति। कुतः? अत्रैव सर्वेषा वेदानाम् तात्पर्यमस्ति, ईश्वरस्य खलु सर्वेभ्य पदार्थेभ्य प्रधानत्वात्॥

इन्द्र के पारमार्थिक स्वरूप का विवेचन करने के उपरान्त मरुत के पारमार्थिक स्वरूप का विवेचन किया जाता है। यद्यपि स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य में मन्त्र के संस्कृत पदार्थ अथवा हिन्दी पदार्थ में मरुत का परमात्मा अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं मिलता किन्तु यजुर्वेद के एक 'मरुत' देवता वाले मन्त्र में परमात्मा का स्वरूप वर्णन किया गया है। पारमार्थिक दृष्टि से यही मरुत का पारमार्थिक अर्थ भी है। ईश्वर शुद्ध प्रकाश युक्त अद्भुत प्रकाश वाला विनाश रहित एवं विस्तृत प्रकाश वाला, शुद्ध स्वरूप और सत्य की रक्षा करने वाला है।

हे मनुष्यो। जैसे (शुक्र ज्योति) शुद्ध है जिसका प्रकाश (च) और (चित्र ज्योति) अद्भुत है जिसका प्रकाश (च) और (सत्यज्योति) विनाशरहित है जिसका प्रकाश (च) और (ज्योतिष्मान्) जिसके बहुत प्रकाश है (च) और (शुक्र) शीघ्रता करने वाला व शुद्ध स्वरूप (च) और (अत्यहा) जिसने दुष्ट काम को दूर किया (च) और (ऋतपा) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वैसे तुम लोग भी होओ।[1]

मरुत' की शक्ति ईश्वरीय शक्ति ही है। वैदिक मन्त्र अग्नि इन्द्र, मरुत, पर्जन्य उषस आदि प्राकृतिक शक्तियों के प्रति कहे गए हैं। वैदिक देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के ही मानवीकरण हैं। वेदों के मन्त्रों में प्राकृतिक दृश्यों में व्यक्त दैवीशक्ति का ही वर्णन है।

इन्द्र और मरुत का पारमार्थिक दृष्टि से स्वरूप विवेचन करते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि ये दोनों पद ईश्वर अथवा परमात्मा बोधक हैं। वेदों में एक ईश्वर ही उपास्य है। निस्सन्देह वेदों में स्थान स्थान पर अनेक देवों का वर्णन मिलता है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र व प्रजापति—इन ३३ देवों का भी उल्लेख किया गया है। मन्त्र में देवता शब्द से वेद मन्त्रों का भी ग्रहण किया जाता है। माता-पिता आचार्य अतिथि को भी देव कहा है। किन्तु ये सब देव परमेश्वर से दिव्यता प्राप्त करते हैं। अतः परमेश्वर ही एक मुख्य देव है, वही, उपास्य है।[2]

शतपथ ब्राह्मण में भी उसी को एक देव कहा गया है। वही परमेश्वर उपासना करने योग्य है जो अन्य देव की उपासना करता है वह नहीं जानता कि वह तो विद्वानों के बीच पशु के समान है।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७.८०
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यं हा ॥

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३६
अतो मुख्यो देव एक परमेश्वर एव उपास्योऽस्तीति मन्यध्वम्।

३ शतपथ ब्राह्मण १४.४.२.२२
योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।

वेदों में जहाँ जहाँ उपासना का विधान है वहाँ देवता रूप म ईश्वर का ही ग्रहण है।[1]

मैक्समूलर ने वेदो मे हीनोथीइज्म (=उपास्य श्रेष्ठतावाद) की कल्पना की है।[2] इसका अभिप्राय यह है कि अनेक देवो मे से प्रत्येक का ही उस समय, जबकि उसकी स्तुति की जा रही है, कवि सबसे बडा और स्वतन्त्र सवशक्तिमान समझता है। उस स्तुति के समय वही एक मात्र स्तोत व भक्त के मन म विद्यमान होता है।[3]

स्वामी दयानन्द के अनुसार आय लोग सष्टि के आरम्भ से आज पयन्त इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि नामा से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आए हैं।[4]

इस अध्याय मे यजुर्वेद के 'इन्द्र' एव मरुत' देवता वाल कुछ मन्त्रा की स्वामी दयानन्द भाष्यानुसारी व्याख्या के आधार पर 'इन्द्र देव के तथा मरुत देव के पारमार्थिक स्वरूप का वणन किया गया है। आय समाज के दूसरे नियम के अनुसार ईश्वर, सच्चिदानन्द, निराकार, सवशक्तिमान न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सवव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर अभय, नित्य पवित्र और सष्टि कर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

स्वप्रकाशमयता, सर्वप्रकाशमयता सवज्ञानमयता, सर्वशुद्धता, सवशोधकता, सवव्यापकता, सवशक्तिमत्ता, सर्वान्तर्यामिता परमैश्वर्यवत्ता, यज्ञरूपता, सर्वोत्पादकता, सवरक्षकता, सवव्यवस्थापकता व सवसहारकता आदि ईश्वर की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

यजुर्वेद मे तथा अन्य वेदो मे भी दूसरे देवताओ से सम्बन्धित विशेषण पदों म परमेश्वर की अप्रतिम विशेषताओ का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद के ऋषि का यह वचन है कि एक ही सत्य को मेधावी विद्वानो ने अनेक नामो से कहा है। 'इन्द्र' और 'मरुत' भी उसी परम तत्व की ऐश्वय शालिनी शक्ति का नाम है। आध्यात्मिक

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४४
वेदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र तत्र देवतात्वेनेश्वरस्यैव ग्रहणात।

2 F Maxmuller The Vedas p 85
In the veda, however the gods worshipped as supreme by each sect stand still side beside—no one is first always no one is last always Even gods of a decidedly inferior and limited character, assume occasionally in the eyes of a devoted poet a supreme place above all other gods

३ वेदो का यथाथ स्वरूप, पृ० १८२।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४७।

व्याख्याकारो का यह दढ मत है कि वह एक परमतत्व ही लौकिक और अति लौकिक रूपो म सवम ओत प्रोत है। वास्तव म परमात्मा की महिमा अनन्त है। मानव की तुच्छ बुद्धि उस परमात्मा को जानन मे असमथ ही सिद्ध होती है। उस कौन जान सका है तथा उसके स्वरूप का वणन कौन कर सकता है।[1]

उस वणनातीत परमतत्त्व का वणन ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा भक्त एव विद्वान यथा बुद्धि अपनी अपनी भाषा और शैली म करत रहे हैं। स्वामी दयानन्द ने भी ईश्वर की विशेषताओ का वदिक म त्रो का भाष्य करत हुए स्पष्ट किया है। इस अध्याय मे परमात्मा अथवा परमेश्वर की विशेषताओ का ही वर्णन किया है चाहे यह वणन, मुख्य रूप से इन्द्र एवम 'मरुत क पारमार्थिक स्वरूप क रूप मे ही प्रस्तुत है। वस्तुत इन्द्र मरत अग्नि, विष्णु वहस्पति आदि सभी देवता उस परमात्मतत्त्व की विशेषताओ क ही द्योतक हैं। य विभिन्न दवता उसक विशेषण रूप हैं। वद इन विभिन्न दवो को स्वतन्त्र व पृथक्-पृथक मानता हुआ भी इन्हे एक ही महान देव की विभिन्न अभिव्यक्तिया स्वीकार करता है।

ऋग्वद के अनुसार वह एक ही परन्तु विद्वान् लाग उसे बहुत प्रकार स निर्देश करत हैं। वह अग्नि है यम है तथा मातरिश्वा है।[2] यह सहिता, भाग के तत्त्व ज्ञान का सक्षिप्त निदशन है। एकत्व की भावना पर ही वैदिक देवता तत्त्व आश्रित है।

विभिन्न विशेषणो को धारण करने वाला परमात्मा तो एक ही है। एक वही द्रष्टव्य है अर्थात् देखने योग्य है तथा जिज्ञासा करने योग्य है। उसी एक परमात्मा की शरण म सभी भुवन समर्पित हैं व उसी के व्यक्त रूप हैं।[3]

---

१ ऋग्वेद, १० १२ ९६
को अद्धा वेद क इह प्रावोचत।

२ ऋग्वेद १ १६४ ४६
इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्य स सुपर्णो गरुत्वान।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

३ (क) अथववेद २ १ १
वेनस्तत पश्यन परम गुहायत
यत्र विश्व भवत्येकनीडम।

(ख) वही २ १ ३
यो दवाना नामध एक एव
त सप्रश्न भुवना यति सर्वा

पचम अध्याय

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य मे 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का व्यावहारिक स्वरूप

स्वामी दयानन्द ने मन्त्राथ करते हुए व्यावहारिक प्रक्रिया को भी अपनाया है। परमेश्वर सम्बन्धी विषय से भिन्न शेष विषय व्यवहाराथ मे ग्रहण किए गए हैं। मन्त्रा का व्यावहारिक विद्यापरक अथ ही व्यावहारिक अथ कहलाता है। स्वामी दयानन्द ने इन्द्र के व्यवहार परक अथ किए हैं। इस पचम अध्याय म स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य को ध्यान मे रखते हुए इन्द्र' व 'मरुत' के व्यावहारिक स्वरूप को प्रस्तुत किया जा रहा है। व्यावहारिक शब्द स मानव समाज एव पूरे विश्व के लिए उपयोगी व कल्याणकारी सिद्धा त, विद्याए, साधन और मानव समाज के मुख्य अगो के आदश आदि अभिप्रेत है। मानव समाज क प्रमुख अगो मे योगी योगिराज राजा, विद्वान, उपदेशक, गहस्थ, गृहपति, सद्वद्य सभाध्यक्ष, सेनापति सभ्यजन, तेजस्वी आदि अभिप्रेत है।[1] इनके अतिरिक्त 'इन्द्र' शब्द के अथ के रूप मे स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य मे वायु, विद्युत तथा सूय यह आधिदैविक अथ व सर्वोच्च शासक, राजा, सेनाध्यक्ष आदि यह आधिभौतिक अथ भी अभिप्रेत है। 'मरुत' शब्द भी व्यावहारिक अथ म वायु विद्वान्, ऋत्विग तथा अतिथि का बोधक है।

प्रथम वग मे योगी विद्वान, आचाय, उपदेशक, वैद्य आदि मानव शरीर मे मुख अथवा मस्तिष्क के समान मुख्य अग के रूप म प्रतिष्ठापित किए गए हैं।[2] द्वितीय वग मे राजा, सेनापति राजपुरुष सभापति इत्यादि अभिप्रेत है जो शरीर मे बाहु के समान, समाज की रक्षा करने का उत्तरदायित्व धारण करते हैं। अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से भी गहपति पिता आदि मानव समाज के ऐसे अनिवाय व उपयोगी अग हैं जिन पर परिवार की उन्नति का और इस प्रकार पारिवारिक उन्नति के द्वारा समाज की उन्नति का भार रहता है। समाज के इन प्रमुख अगो तथा वर्गों के द्वारा

---

१ स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य मे अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन, डा० कपिलदेव शास्त्री।

२ ऋग्वेद, १० ९० १२

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्य कृत ।
उरुतदस्य यद्वैश्य पदभ्या शूद्रो अजायत ॥

वैदिक आदर्शों व मान्यताओं को अपनाने व आचरण में लाने से ही सम्पूर्ण मानव समुदाय का कल्याण निश्चित है। इस दृष्टि से इन्द्र व मरुत् पद के तथा उनके विशेषणों के कुछ महत्त्वपूर्ण अर्थों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

इन्द्र योगी के रूप में

सम्पूर्ण संसार में आध्यात्मिक व अध्यात्म से सम्बन्धित भावनाओं को अपनी पवित्र प्रेरणा से प्रसार करके मानव समुदाय की उन्नति करने वाले योगियों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वामी दयानन्द ने कई स्थलों पर इन्द्र से सम्बन्धित मन्त्र में इन्द्र का अर्थ योगी किया है।

हे सभापते राजन्! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्यों के (सविता) सूर्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्नि) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोम) शान्तिदाता के सदृश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालन हारों के मध्य में (सत्य) सज्जनों में सज्जन (वरुण) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्र) सखा के तुल्य (वाचे) वेद वाणी के लिए (बृहस्पति) महाविद्वान के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिए (इन्द्र) परमैश्वर्य से युक्त योगी के तुल्य (पशुभ्य) गौ आदि पशुओं के लिए (रुद्र) शुद्ध वायु के सदृश है उन (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें।[1] भावार्थ यह है कि हे राजन्! जो आप को अधर्म से हटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का संग करो, औरों का नहीं।

स्वामी जी ने यहाँ इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्य से युक्त योगी करके मन्त्र की व्यावहारिक अर्थ में संगति लगाई है। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में इन्द्र का अर्थ योग का उपदेशक लेकर अन्वय किया गया है।

हे (इन्द्रवायू) योग के उपदेशक तथा अभ्यासी पुरुषो! तुम दोनों (हि) सूर्य और प्राण के सदृश हो। इसलिए (इमे) ये (सुताः) सब उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुख कारक जल आदि पदार्थ (युवाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) चाहते हैं। इसलिए तुम दोनों इन (प्रयोभिः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों के साथ (उप—आगतम्) हमारे समीप आओ।

हे योगाभिलाषी! इस योगाभ्यास के द्वारा तू (वायव) वायु के समान गति आदि की सिद्धि के लिए अथवा योग बल से व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले योग -

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ९।३९
सविता त्वा सवानां
सुवतामग्निर्गृहपतीनां सोमो वनस्पतीनाम्।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः
पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्॥

कुशल योगी बनाने के लिए (उपयामगृहीत) योग के यम नियम आदि अंगों सहित स्वीकार किया गया (असि) है। हे योगैश्वर्य से युक्त योगाध्यापक। यह योग (ते) तेरा (योनि) सब दुःखों का निवारण करने वाले घर के समान है। (इन्द्र वायुभ्याम्) विद्युत और प्राण के समान श्वास को खींचता और बाहर निकालता हुआ योग विद्या से (जुष्टम्) युक्त (त्वा) तुझे तथा (हे) योग के जिज्ञासु पुरुष! (सजोषोभ्याम्) सेवन करने योग्य इन उक्त गुणों से (जुष्टम्) युक्त (त्वा) तुझे मैं (वशिम) चाहता हूँ।

भाव यह है कि वे ही लोग योगी बन सकते हैं जो योग विद्या का अभ्यास करके ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को साक्षात करने का प्रयत्न करते हैं।[1]

भूतों (=प्राणियों) से सम्बन्ध रखने वाला पक्ष आधिभौतिक कहलाता है। इसमें राजा, शासक, सेनापति सभापति सभेश, नेता, विद्वान आदि सभी का समावेश हो जाता है। वेदों में प्रयुक्त शब्द यौगिक माने जाते हैं। वे रूढ़ि नहीं हैं।[2] इन्द्र शब्द का व्यावहारिक अर्थ करने पर आधिभौतिक तथा आधिदैविक दोनों दृष्टियों से विचार करना अपेक्षित है। आधिभौतिक दृष्टि से विचार करने पर राजा, शासक, सेनापति, विद्वान्, योग का उपदेष्टा अनेक रूपों में इन्द्र का स्मरण किया गया है। वह परमैश्वर्यवान स्वामी शत्रुविदारक, दुष्टों का नाशक, दारिद्र्य विदारक, ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है। वह धन दाता है।

ऋग्वेद में भी इन्द्र के आधिभौतिक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। वह दस्यु अव्रत अयज्वा, वनयु (=युद्ध का इच्छुक), शत्रु मायी, शुष्ण तथा वृत्र का विनाशक कहा गया है। वह वेदविहित कर्मों को करने वालों का रक्षक है तथा गौ आदि सम्पत्तियों को बढ़ाने वाला है। वह अच्छा शासक है, राजा है व सेनापति के लक्षणों से भी युक्त है। इन्द्र नृमण अर्थात मनुष्यों के कल्याण में लगे हुए मन वाला व्यक्ति है।[3] आर्य अर्थात श्रेष्ठ और दस्यु अर्थात हिंसक लोगों के मध्य आर्यों की रक्षा

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ७.८

इन्द्र वायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम।

इन्दवो वामुशन्ति हि।

उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्याम्

त्वैष ते योनि सजोषोभ्यां त्वा॥

२ (क) निरुक्त, १.१२

नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च।

(ख) महाभाष्य ३.३.१

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।

३ ऋग्वेद १.५१.५

त्वं मायाभिरपमायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।

त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ॥

व दस्युओ का दमन करने वाला इन्द्र ही है।[1] इन्द्र पापात्मा राक्षस का ह न्ता है तथा धर्माचरण करने वाले विद्वज्जन का त्राता है।[2]

इन्द्र विद्वान् के रूप में

स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य म अनेक स्थलो पर 'इन्द्र शब्द का 'विद्वान् अथ किया है। विद्वान् की प्रमुख विशेषताओ म उसकी विशिष्ट ज्ञानवत्ता, परोपकारपरायणता, ज्ञान पिपासा ज्ञान वधन की अभिलाषा, सत्यभाषण, सबजन-वन्दनीयता, ईश्वर निष्ठा, धनश्वय सम्पन्नता द्रोहराहित्य भयराहित्य व निश्छलता का उल्लेख किया जा सकता है। यजुर्वेद के म त्रो का भाष्य करते हुए स्वामी दयानन्द न इन्द्र पद का अथ विद्वान् भी किया है।

हे (शत क्रतो) जिसकी सैकडो प्रकार की बुद्धि और (गोमत) प्रशसित वाणी है सा एसे ह (इन्द्र) विद्वान् पुरुष। आप (आ, याहि) आइये (इह) इस ससार में (विद्भि) विद्यमान (ग्रावभि) मघा स (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमबल्ली आदि औषधियो के रस का (पिब) पियो जिसस आप (उपयामगहीत) यम नियमो स इन्द्रियो का ग्रहण किये अर्थात इन्द्रियो को जीते हुए (असि) हो इसलिए (गोमत) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिए और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वय के लिए (त्वा) आपको और जिन (ते) आपका (एप) यह (योनि) निमित्त है उस (गोमत) प्रशसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशसित एश्वय से युक्त पुरुष के लिए (त्वा) आपका हम लोग सत्कार करते हैं।[3] भाव यह है कि जो वैद्यक शास्त्र विद्या से सिद्ध और मेघा से उत्पन्न हुई औषधियो का सेवन और योगाभ्यास करत हैं वे सुख तथा ऐश्वय युक्त होत हैं।

यद्यपि प्राचीन भारतीय वदिक परम्परा के अनुसार यजुर्वेद कमकाण्ड का प्रतिपादन करने वाला ग्रथ माना जाता है। यज्ञ प्रधान कर्मों का ही प्रत्यक्ष व

---

१ ऋग्वेद, १ ५१ ८
विजानीह्यार्यान ये च दस्यवो बर्हिष्मते र धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥

२ वही १ १२९ ११
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावत।
अधाहि त्वा जनिता जीजनद् वसो रक्षोहणम
त्वा जीजनद् वसो॥

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २६ ४
इन्द्र गामन्निहा याहि पिबा
सोम शतक्रतो विद्यदिभर्ग्रावभि सुतम।
उपयामगहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते
योनिरिन्द्राय त्वा गोमते॥

पराभ रूप से वर्णन किया गया गया है। शुक्लयजुर्वेद संहिता के पहले दोनों अध्यायों का विनियोग दश पूर्णमास यज्ञों में है।[1] शुक्लयजुर्वेद संहिता के प्रथम मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में आधियाज्ञिक और आधिदैविक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए की गई है।[2]

'आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्'

शुक्लयजुर्वेद संहिता (माध्यन्दिनी) के प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र के उपरिलिखित पदों का अर्थ करते हुए उवट और महीधर इन्द्र को क्षीरादि हविभक्षण करने वाला देवता मानते हैं।[3]

शुक्लयजुर्वेद (काण्व संहिता) में इसी मन्त्र के सायण-भाष्य में इन्द्र को देवता विशेष माना गया है। तथा दधि के हेतुभूत दूध को इन्द्र का भाग माना है।[4]

स्वामी दयानन्द जी ने इस मन्त्र में इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्य किया है। अब इस मन्त्र की स्वामी दयानन्दानुसार की गई व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

हे मनुष्य लोगो! जो (सविता) सब जगत की उत्पत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त (देव) सब सुखों को देने वाला और सब विद्या को प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है सो हमारे और (व) तुम्हारे (वायव) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने हारे जो स्पर्शगुण वाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियाँ (स्थ) हैं, उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिए (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा

---

१ शुक्लयजुर्वेद संहिताभाष्य (उवट, महीधर), १ १, पृ० ४
अत्र इषे त्वा द्वावध्यायौ दर्शपूर्णमासमन्त्राः।

२ नूनमेषो ऽर्थो धियज्ञ, परमेतेनैव पदव्याख्यानेनाधिदैवतोऽर्थोऽपि सम्पद्यते।
ऐतरेयालोचनम्, पृ० ६

३ (क) यजुर्वेदभाष्य (उवट) १ १, पृ० ४ ५
यूयम् (गाव) अपि यज्ञाय सगमिता सत्य आप्यायध्वम्।
हे अघ्न्या अनुपहिंस्या गाव। कम इन्द्राय भाग तावधये चतुर्थी।
इन्द्राय यो भागस्तमिति सम्बन्ध। इन्द्रो ऽत्र हविर्भाक्।

(ख) यजुर्वेद भाष्य (महीधर), १ १, पृ० ४-५
ते अघ्न्या गाव गोवधस्योपपातकरूपत्वाद्धन्तुमयोग्या अघ्न्या उच्यन्ते।
तथाविधा यूयम इन्द्राय भागम इन्द्रमुद्दिश्य सम्पादयिष्यमाणदधिरूपहेतु क्षीर समन्ताद वर्धयध्वम। सर्वास्वपि गोषु प्रभूतक्षीर कुरुत।

४ शुक्लयजुर्वेद काण्व संहिता भाष्यम् (सायण), १ १ १, पृ० १८
हे अघ्न्या गाव —यूयमिन्द्राय भागम् इन्द्रदेवतामुद्दिश्य सपादयिष्यमाणदधिहेतुभूतम् क्षीरम् आप्यायध्वम् समन्ताद् वर्धयध्वम्।

के लिए (त्वा) उक्त गुण वाले और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात उत्तम रस की प्राप्ति के लिए (भागम) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणा के देने हारे आप का सब प्रकार मे आश्रय करने हैं। हे मित्र लोगो। तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम) उन्नति का प्राप्त हो तथा हम भी हो।

हे भगवन् जगदीश्वर। हम लोगो के (इन्द्राय) परमश्वय की प्राप्ति क लिए (प्रजावती) जिनके बहुत सतान हैं तथा जा (अनमीवा) व्याधि और (अयक्ष्मा) जिनमे राजयक्ष्मा आदि राग नहो है वे (अघ्न्या) जा जो गौ आदि पशु या उन्नति करने योग्य है, जा कभी हिंसा करने योग्य नही तया जा इन्द्रियाँ व पृथिवी आदि लोक हैं, उनको सदैव प्राप्त कराइय। हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से हम लोगो मे स दु ख दने के लिए (अघशस) पापी वा (स्तन) चार डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकारक रूप धम के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ, घोडे और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरतर रक्षा कीजिए जिसस (व) इन पदार्थों क हरने का पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समथ न हा। (अस्मिन) इस धार्मिक (गोपतो) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाल सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वी) बहुत से उक्त पदाथ (ध्रुवा) निश्चल सुख के हेतु (स्यात्) हो।[1]

हे (हरिव) प्रशस्तहरि (=घोडो) वाल (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वय का बढाने वाले विद्वान्! तू (उप आयाहि) हमारे समीप आ और (तूतुजान) शीघ्रकारी होकर (न) हम (सुन) सिद्ध व्यवहार म स्थापित करने के लिए (ब्रह्माणि) धमयुक्त कम से प्राप्त पदार्थों तथा (चन) भोग्य अन्न का (दधिष्व) धारण कर। भाव यह है कि विद्या और धम की वद्धि के लिए कोई भी आलस्य न करे।[2]

हे (अध्वर्यो) यज्ञ का युक्त करने वाले मनुष्य! तू (इन्द्राय) परम् ऐश्वयवान पुरुष के (पातले) पीने क लिए (अद्रिभि) मेघो से (सुतम) निष्पन्न (=तैयार) हुए (सोमम) सोमलता आदि ओषधियो के सार रूप रस को (पवित्रे) शुद्ध व्यवहार मे

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १ १, पृ० ६, २५ २६
इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो व सविता
प्रापयतु श्रेष्ठतमाय कमण आप्यायध्वमघ्न्या
इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन
ईशत माघश सो ध्रुवा अस्मिन् गापतौ स्यात
बह्वीयजमान स्पशून् पाहि।

२ वही, २०, ८६
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिव।
सुत दधिष्व नश्चन॥

(आ+नय) ला, उससे तू (पुनीहि) सबको पवित्र कर। भाव यह है कि यज्ञ करने वाले विद्वान् वद्यराज लोग शुद्ध देश में उत्पन्न औषधियों के सारभूत रसों का निर्माण करके इनके दान से सब मनुष्यों के रोगों की निवृत्ति सदा करें।[1]

हे (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य में सम्पन्न (इषित) प्रेरणा से युक्त (विप्रजूत) मेधावी लोगों से शिक्षित (वाघत) वाणी से जानने वाला तू (धिया) बुद्धि से (सुतावत) पदार्थों को तैयार करने वाले पुरुष के (ब्रह्माणि) अन्नों व धनों को (उप आ याहि) ग्रहण कर। भाव यह है कि विद्वान् मनुष्य जिज्ञासु लोगों का संग करके इनमें विद्याकोश को स्थापित करे।[2]

हे मनुष्यो! जैसे (कवय) बोलने में चतुर (वृषाणम्) अतिवीर्यवान (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले, (वीरम्) बलवान वीर पुरुष के प्रति (धावमाना) दौड़ती हुई स्त्रियाँ (दुर) द्वारों (=घरों) को (यन्तु) प्राप्त होती हैं। जैसे (प्रथमाना) प्रख्यात, (सुवीरा) सुन्दर वीर पुरुष (महोभि) सुपूजित गुणों से, (द्वार) द्वार के तुल्य वर्तमान (देवी) विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (जनय) सन्तान उत्पन्न करने वाली (सुपत्नी) सुन्दर पत्नियों को (अभित) सब ओर से (विश्रयन्ताम्) प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी प्राप्त करो। भाव यह है जहाँ लोग परस्पर प्रीति से विवाह करते हैं वहाँ सब आनन्द से रहते हैं।[3]

हे विद्वान! जैसे (बर्हिष्मत) अन्तरिक्ष से सम्बन्ध रखने वाले वायु, जल आदि का (अत्ययात्) लाँघता है, (वसुवन) पृथिवी आदि वसुओं को धारण करने वाले जगत् के (वसुवने) धन के सेवन में (वेद्याम्) हवनाधार कुण्ड में (स्वीणम्) काष्ठों और हवि से आच्छादित करने योग्य, (वस्तो) दिन में (वृतम्) स्वीकृत, (अक्तो) रात्रि में (भूतम्) धारण किया हुआ होम द्रव्य आरोप्य को (प्रावर्द्धयत्) बढ़ाता है, सुख (वेतु) पहुँचाता है, वैसे (बर्हि) अन्तरिक्ष के समान (राया) धन के साथ (देवम्) दिव्य गुणों वाले विद्वान् का, (देवं) दिव्य गुणों वाले विद्वानों के साथ (वीरवत) वीरों के तुल्य बर्ताव करने वाले (सुदेवम) उत्तम (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २० ३१
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय।
पुनाहीन्द्राय पातवे॥

२ वही, २० ८८
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः॥

३ वही, २० ४०
इन्द्रं दुर कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ता सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः॥

कारक विद्वान का (यज) सग कर। भाव यह है कि जैस यजमान वेदी म समिधाओ म रखे हुए घृत का होम किए हुए अग्नि को बडा कर, अतरिक्ष म स्थित वायु और जल आदि का शुद्ध करके रोग निवारण से सब प्राणियो को प्रसन्न करता है, वस ही सज्जन लोग धन आदि से सबको सुखी करते हैं।[1]

परम ऐश्वय स युक्त विद्वान की स्तुति करने वाले लोग जला के समान वढते हैं आच्छादित करने वाली किरणो के समान सत्य को व्याप्त करते हैं। इन्द्र अर्थात ऐश्वय प्रदान करने वाला विद्वान आज के कारण महान होता है सब ओर स पूज्य होता है। मनुष्य इस विद्वान को प्राप्त करे तथा अन्न की वद्धि सेवन और आहार-विहार का ज्ञान।[2]

हे (चित्र) आश्चयस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ मे लिय (अद्रिव) प्रशस्त पत्थर क बन हुए वस्तुओ वाले (इन्द्र) शत्रु नाशक विद्वान। (धृष्णुया) ढीढ़ता से (मह) बहुत (स्तवान) स्तुति करत हुए (स) सो पूर्वोक्त (त्वम) आप (जिग्युषे) जय करन वाले पुरुष के वाला तथा (न) हमारे लिय (सत्रा) सत्य (वाजम) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम) बैल तथा (रथ्यम) रथ क योग्य (अश्वम्) घोडे को (स किर) सम्यक प्राप्त कीजिए।[3]

भाव यह है कि जैस मेघ सम्बन्धी सूय वर्षा से सबको सम्बद्ध करता है वसे विद्वान सत्य क विज्ञान स सबक ऐश्वय को प्रकाशित करता है।

हे विद्वन्! जस (देवं) ददीप्यमान गुणा क साथ वतमान, (हिरण्यपर्ण) तेजस्वी पत्तों वाला (मधुशाख) मधुर शाखाओ वाला, (सुपिप्पल) सुदर फलो वाला (देव) दिव्य गुण प्रदान करने वाला (वनस्पति) किरणो का पालक सूय एव

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ १२
देव बर्हिरिन्द्र सुदेव देवैर्वीरवत् स्तीर्ण वेद्यामवर्धयत ।
वस्तोव त प्रोक्तोम त राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

२ वही, ३३ १८, २५
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृत जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्व हि धीभिदयसे वि वाजान् ॥
इन्द्रहि मत्स्यन्धसो विश्वेभि सोमपर्वभि ।
महा अभिष्टिरोजसा ॥

३ वही, २७ ३८
स त्व नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह
स्तवानो अद्रिव ।
गामश्व रथ्यमिन्द्र स किर सत्रा
वाज न जिग्युषे ॥

वनस्पति (इन्द्रम्) दरिद्रता के विदारक (देवम्) दिव्य गुणा वाले तारों का व मेघो का (अवर्धयन्) बढाता है (अग्रेण) अग्रसर होकर (दिवम्) प्रकाश की (अस्पृक्षत्) स्पृहा करता है, (अन्तरिक्षम्) आकाश एवम् उसमें स्थित तारों को और (पृथिवीम्) भूमि को (आ+अदृंहीत) सब ओर से धारण करता है (वसुवने) धन प्रदान करने वाले जीव के लिए (वसुधेयस्य) संसार के सब धन (वेतु) प्राप्त कराता है, वैसा (यज) यत्न कर। भाव यह है कि जैसे वनस्पतियाँ मेघों को बढ़ाती हैं। सूर्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान लोग विद्या के याचक विद्यार्थी को पढ़ाते हैं।

हे (इन्द्राग्नी) अध्यापक और उपदेशक लोगो—(अपात्) बिना पग वाली उषा (पद्वतीभ्य) बहुत पग वाली सोई हुई प्रजा के लिए (पूर्वा) प्रथम (आ+आगात्) आती है, (शिर) शिर को (हित्वा) छोड़कर प्राणियों की (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) बहुत बोलती है (चरत्) विचरण करती है (त्रिंशत्) तीस (पदा) मुहूर्तों के पश्चात् (न्यक्रमीत) प्रत्येक प्रदेश में गति करती है उस उषा को तुम जानो। भाव यह है कि निद्रा और आलस्य को छोड़कर सुख के लिए उषा का सेवन करना चाहिए।[2]

इन्द्र परमैश्वर्य परमैश्वर्यकारक व परमैश्वर्यवान रूप में

यजुर्वेद के एक मन्त्र में मित्र और वरुण के लिए द्विवचनान्त इन्द्र शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में किया गया है।[3] इन्द्र का स्वर्गाधिपति देवराज अर्थ करने वाले उवट, महीधर[4] तथा सायण आदि भाष्यकार भी यहाँ आध्यात्मिक पक्ष

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ २०
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृ
हीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥

२ वही, ३३ ९३
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्॥

३ यजुर्वेद १० १६
हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च।
आरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि॥

४ शुक्लयजुर्वेद संहिता, १० १६
उवट—हे हिरण्यरूपौ मित्रावरुणौ यौ युवाम् उषसः विराके उषसो व्युत्थानकाले।
उभावपि हे इन्द्रौ, इदि परमैश्वर्ये परमेश्वरौ उदिथः उदगच्छथः। सूर्यश्च।
सूर्यश्च यथायुवयोः कार्यसम्पादनाय सूर्य उदेति तौ युवाम् आरोहतम्।
महीधर—हे वरुण शत्रुनिवारक, दक्षिण बाहो, हे मित्र सखिवत्पालक वामबाहो,

में ईश्वर और आधिदवत पक्ष म सूय अथ स्वीकार करत हैं। वास्तव म इन्द्र शब्द वेदो म रुढ अर्थ अथवा व्यक्ति विशेषमात्र का वाचक नही है। यह तो यौगिक शब्द है।

स्वामी दयानन्द न इस स्थल पर भी इन्द्र का यौगिक अथ ही किया है। इन्द्री (परमैश्वयकारकौ) अर्थात परमैश्वय को उत्पन्न करने वाले 'मित्र' अर्थात सबके मित्र उपदेशक तथा वरुण अर्थात् शत्रुओ का उच्छेदन करन वाले श्रेष्ठ सेनापति तुम दोनो (गत्तम्) उपदेशक के घर (आरोहतम) जाओ और (अदितिम) अविनाशी व (दितिं) विनाशशील पदार्थों का (चक्षाथाम) उपदेश करो।[1]

यहाँ मित्र और वरुण ऐश्वय युक्त होने के कारण 'इन्द्री' इस विशेषण से विशेषित हैं। 'इन्द्र शब्द का द्विवचनान्त रूप 'इन्द्री है। इन्द्र का यौगिकत्व स्पष्ट है। इसी प्रकार 'इन्द्रतम' शब्द म भी यौगिकत्व है।[2] तमप् प्रत्यय का प्रयोग व्यक्तिवाचक अथवा रूढि शब्द के पश्चात् नही होता। विशेषण व भाववाचक शब्दो के पश्चात ही इसका प्रयोग होता है। भाष्यकारो ने यौगिक दृष्टि स ही इन्द्र शब्द की व्याख्या की है।[3]

जसे निवत्तिमाग म योगी सब सिद्धियो को प्राप्त करता है वैस गहस्थ भी

तौ युवा गत पुरुषमारोहतमारोहण कुरुतम। बाहू वै मित्रावरुणौ पुरुषा गत (५ ४ १ १५) इति श्रुतिरध्यात्मविषय व्याचष्टे। तौ कौ। यौ युवाम यौ द्वौ उपसा विरोके रात्रे समाप्तौ उदिध उदय कुरुथ। कि भूतौ युवाम्। हिरण्यरूपौ—हिरण्यवद्भासमानौ। तथा इन्द्रौ सामर्थ्यपितौ। एवमध्यात्ममय। अधिदैव त्वमघ। हे वरुण! हे मित्र! मित्रावरुणौ देवविशेषौ, युवा गत्त रथो परिभाग गत्तसदशमारोहतम्। हिरण्यरूपौ अतितजस्विनौ। इन्द्रौ—परमश्वरौ। तता अदिति दितिं दीन च युवा चक्षाथाम अतितिमदीन विहितानुष्ठातार दितिं दीन च नास्तिकवत्त च पश्यतम।

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १० १६

२ यजुर्वेद, ३८ १६

३ (क) शुक्लयजुर्वेद सहिता ३८ १६

उवट—इन्द्रतमे=इन्द्रियवत्तम वीयवत्तम।

महीधर—अग्नौ मधु मधुर घमाज्य हुतमस्माभि कीदृशेऽग्नौ। इन्द्रतमे इन्द्रे वीयमस्यास्ति इन्द्रियवान अत्यन्तमिन्द्रवानिन्द्रतम। वत्प्रत्यय लोप वीयवत्तम इत्यथ। मधुहुतमिन्द्रियवत्तमेऽग्नाविति पर्वंतदाह इति श्रुते।

(ख) यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३८ १६

(मधु) मधुरादिगुणयुक्तम (घृतादिभिर हुतम) वह नौ प्रक्षिप्तम (इन्द्रतमे) अतिशयेनश्वयकारके विद्युद्रूपे (अग्नौ) पावके (अश्याम) प्राप्नुयाम।

प्रवृत्ति मार्ग में (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य रूप सिद्धियों का (रूपम्) स्वरूप प्राप्त करे।[1] सब मनुष्य उत्तम गुणों वा व (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करें तथा विघ्नों का निवारण करें। जो विद्वान् जितना सामर्थ्य प्राप्त हो सबके (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए वह उतने सामर्थ्य मे सेवा रत हो[2] सब मनुष्य ऐश्वर्य के लिए विद्वानों की सेवा करें।[3] यहाँ 'इन्द्रस्य' अर्थात परम ऐश्वयरूप सिद्धियों का, इन्द्रम् ऐश्वर्य को तथा 'इन्द्राय' अर्थात परम ऐश्वर्य के लिए—इन पदों का प्रयोग करते हुए 'इन्द्र' का अर्थ ऐश्वर्य ही लिया गया है।

इसी प्रकार अन्य कई मन्त्रों मे भी 'ऐश्वर्य' इन्द्र पद वाच्य है। हे[4] (होत) यजमान! तू जैसे (होता) विद्वान् (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य वाले (त्वष्टारम्) देदीप्यमान, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि को बढाने वाले (रूपाणि) रूपों को (पृथक्) अलग-अलग (बिभ्रतम्) धारण करने वाले, (वयोधसम्) चिरायु को धारण करने वाले (पुष्टिम्) पुष्टिकारक (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को तथा (द्विपदम्) दो चरणों वाले (छन्द) छन्द, (इन्द्रियाम्) धन (उक्षाणम्) वीर्य सेचन मे समर्थ (गाम्) युवा अवस्था वाले साड के (न) समान (वयः) गति को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान को (यक्षत्) संगत करता है, (वेतु) उसे प्राप्त करता है, वैसे (यज) यज्ञ कर। भाव यह है कि गृहस्थ लोग स्त्रियों से प्रजा को बढावें तथा जैसे सूर्य रूप का ज्ञापक है वैसे विद्वान् विद्या को प्रकाशित करने वाला है।[5]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) १९ ९१
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्॥
२ वही, २५ ३
मशकान् केशैरिन्द्र स्वपसा ... रोराभ्याम्॥
वही, २६ १७
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वीरवोवित्परि स्रव॥
३ वही, २७ २२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्॥
४ वही, २८ ११, १३, १६, २८, ३३, ६६।
५ वही, २८ ३२
होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतम्।
पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो।
दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

हे स्त्री व पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्यवाणी व सत्य क्रिया से (वसुमते) बहुत धन से युक्त तथा (इन्द्राय) परमऐश्वर्यवान होने के लिए (त्वा) तुझे, स्त्री व पुरुष को (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (आदित्यवते पूर्ण विद्या से युक्त पाण्डित्य वाला होने, (रुद्रवते) बहुत प्राणों वाला होने तथा (इन्द्राय) दुःखों का विदारक बनने के लिए (त्वा) तुमको (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (अभिमातिघ्ने) शत्रुओं का घातक होने तथा (इन्द्राय) परमैश्वर्य का दाता बनने के लिए (त्वा) तुझे (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (सवित्रे) सूर्य-विद्या का ज्ञाता, (ऋभुमते) बहुत मेधावी जनों से युक्त (विभुमते) नाना पदार्थों का वेत्ता (वाजवते) पुष्कल अन्न से युक्त होने के लिए (त्वा) तुझे (स्वाहा) सत्यवाणी व सत्य क्रिया से (बृहस्पतये) वाणी का पति तथा (विश्वदेव्यावते) सब दिव्य गुणों वाला होने के लिए (त्वा) तुझे (उप+यच्छामि) स्वीकार करता हूँ। भाव यह है कि जो स्त्री-पुरुष ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं व विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान सन्तानों को प्राप्त करके सबकी रक्षा कर सकते हैं।[1]

स्वामी जी ने 'इन्द्र' पद का ऐश्वर्यवान (वैद्य) के रूप में भी अर्थ किया है।

हे (होत) शुभ गुणों का दाता जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्ता जन (त्वष्टारम्) धातु वैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रमयुक्त (मघमानम्) परमप्रशस्त धनवान् (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर संग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान (वैद्य) का (यक्षत्) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिए (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियाँ व धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर।[2] भाव यह कि हे मनुष्यो ! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोग निवारक सुन्दर औषधि देने वाले ऐश्वर्यवान वैद्यजन का सेवन कर शरीर, आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३८.८।
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत स्वाहेन्द्राय त्वाऽऽदित्यवते।
स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्न स्वाहा।
सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमत वाजवत स्वाहा
बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावत स्वाहा।

२ वही २८.९।
होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्र देवम्
भिषजं सुयजं घृतश्रियम्॥
पुरुरूप सुरेतस मघोनमिन्द्राय त्वष्टा
दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

इन्द्र सम्राट के रूप में

इन्द्र को सम्राट् भी कहा गया है। यह प्रजा की सेवा करने वाला है। यजुर्वेद के एक मंत्र में इन्द्र सम्राट है तथा वरुण राजा है। उवट और महीधर वाजपेय यज्ञ का कर्ता होने के कारण इन्द्र को सम्राट मानते हैं तथा राजसूय यज्ञ का कर्ता होने के इन्द्र वारुण राजा माना जाता है।[1]

किन्तु ये सब वर्णन आधियाज्ञिक हैं। स्वामी जी ने इनका व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्यान किया है।

हे प्रजाजन ! जो (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (च) राज्य के अंग-उपांग सहित (सम्राट) सब जगह एक चक्र राज करने वाला (वरुण) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (त) तेरा (भक्षम) सेवन अर्थात नाना प्रकार से रक्षा (चक्रतु) करें और (अहम) मैं (तयो) उनके (एतम) इस (भक्षम) सेवन करने योग्य पदार्थ का (अनुभक्षयामि) पालन करता हूँ। जो (सोमस्य) विद्या रूपी ऐश्वर्य की (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेद वाणी है, उस (स्वाहा) सत्यवाणी से (प्राणेन सह) बल के साथ सब मनुष्य (तृप्यतु) सन्तुष्ट रहें।[2]

इन्द्र द्यौ और पृथिवी का महान् सम्राट है।[3] न केवल मात्र बौद्धिकता में इन्द्र बहुत और बहुस्तुत है किन्तु उसकी शक्ति उग्र है। वह भीम है और शक्तिशाली है।[4]

---

१ (क) इन्द्रश्च सम्राट् यो वाजपेययाजी। वरुणश्च। चकारौ समुच्चयार्थीयो राजा यो राजसूय याजी। राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड् वाजपेयेन इति श्रुतेः।
यजुर्वेदभाष्य (उवट), ८ ३७ पृ० १४४।
(ख) हे पात्रगिग्रह तौ देवौ इन्द्रावरुणौ
ते एव एत सामग्र्यं प्रथम भक्ष चक्रतु।
तौ कौ ? इन्द्रो वरुणश्च। चकारौ समुच्चये।
किं भूत इन्द्र ? सम्राट परमैश्वर्ययुक्त वाजपेययाजी यः किं भूतो वरुण ? राजा राजसूययाजी, राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड वाजपेयेन इति श्रुतेः।
यजुर्वेदभाष्य (महीधर), ८ ३७ पृ० १४४।

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ८ ३७
इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्ष चक्रतुरग्र एतम।
तयोरहमनुभक्ष भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥

३ ऋग्वेद १ १०० १
महोदिव पृथिव्याश्च सम्राट।

४ वही, १ १००,१२
चम्रीषो न शवसा।

इन्द्र की शक्ति का अन्त देव और मनुष्य नहीं जान सकते। अपने बल से वह पृथिवी और द्यौ लोक का प्रकृष्ट रोचक 'प्ररिक्वा' अर्थात् बल में बढ़ा हुआ है।[1] जो शूर हैं जो भीरु हैं, जो दौड़ते हैं और जीतने के इच्छुक हैं इन सबों से इन्द्र आह्वातव्य है।[2]

स्वामी जी ने इन्द्र का व्यावहारिक अर्थ करते हुए प्रकरणानुसार उसे सम्राट् भी कहा है। वह इन्द्र (सम्राट्) स्तुत अर्थात् प्रशंसित, 'शूर' अर्थात् वीर पुरुष, 'सत्पति' अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहारों अथवा विद्वानों का पालक पति अर्थात् स्वामी, 'सुत्रामा' अर्थात् अच्छी प्रकार रक्षा करने वाला, 'स्ववान्' अर्थात् प्रशस्त कुल और धन वाला 'विश्ववेदा' अर्थात् समस्त धन वाला 'समृद्धीक' अर्थात् अत्यन्त सुखकारी, 'वज्रबाहु' अर्थात् वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाला 'तनूनपात' शरीरों की रक्षा करने वाला, 'जेता' अर्थात् जयशील, 'स्वर्विद' अर्थात् सुख को प्राप्त, 'देव' अर्थात् दिव्यता युक्त अथवा विद्या-विनय युक्त 'वृत्रहा' अर्थात् शत्रुओं का विनाश करने वाला 'वज्र हस्त' अर्थात् हाथों में वज्र वाला 'षोडशी' अर्थात् सोलह कला युक्त, 'महान्' अर्थात् बड़ा, 'वयोधस' अर्थात् जीवन को धारण करने वाले जन्म का दाता 'अविता' अर्थात् तृप्त करने वाला 'सुहव' 'अर्थात् अच्छी प्रकार आह्वान करने वाला, 'पुरुहूत' अर्थात् बहुत विद्वानों से निमन्त्रित, 'सुसंदृश' अर्थात् सुन्दर प्रकार से देखने योग्य और सुहव अर्थात् सुन्दर प्रकार के बुलाने योग्य है।

स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में इन्द्र का अर्थ सम्राट् अथवा राजा स्वीकार किया है उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

जो (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को धारण करने वाला (इह) इस समय (स्तुत) प्रशंसित (शूर) वीर पुरुष (पूर्वी) पूर्व विद्वानों के द्वारा सुशिक्षा से उत्तम की हुई (तविषी) सेनाओं को (वावधान) बढ़ाता है (यस्य) जिसका (अभिभूति) शत्रुओं का अभिभव करने वाला (क्षत्रम) राज्य (द्यौ) सूर्य प्रकाश के (न) समान है, जो (न) हमको (पुष्यात्) पुष्ट करता है, वह हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (उप+आ+यातु) समीप आवे और (सधमात) समान स्थान से रक्षक (अस्तु) हो।

भाव यह है कि हृष्ट पुष्ट सेना वाले, प्रजापालक व दुष्टनाशक राज्य के अधिकारी बनें।[3]

जो (अभिष्टिकृत्) सब प्रकार से इष्ट सुख उत्पन्न करने वाला (वज्रबाहु) वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाला (नृपति) नरों का पालक (आजिष्ठेभि) बलिष्ठ

---

१ ऋग्वेद १ १०० १५।
२ वही १ १०१ ६।
३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २० ४७
आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुत सधमादस्तु शूर।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्॥

योद्धाओं के कारण, (उग्र) दुष्टों पर क्रोध करने वाला (तुवणि) शीघ्र शत्रुओं का हनन करने वाला (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक राजा (न) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (समत्सु) संग्रामों में (सग) साथ (दूरात्) दूर देश से एवम् (आसात्) समीप देश से (आ+यासत्) आवे, वह (न) हम (पृत यून) अपनी सेना के इच्छुक शूरवीरों की सदा रक्षा व मान करें। भाव यह है कि जो दूत प्रेषण द्वारा प्रजा की रक्षा करते हैं व शूरवीरों का सत्कार करते हैं वे राज्य के अधिकारी हैं।[1]

(विश्वा) सब (गिर) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणियाँ (समुद्र-व्यचसम्) आकाश के समान गुणों की व्याप्ति वाले (रथीनाम्) शूरवीरों के मध्य में (रथीतमम्) अत्यन्त शूरवीर (वाजानाम्) विज्ञानवान जनों के एवम् (सत्पतिम्) श्रेष्ठ व्यवहारों अथवा विद्वानों के पालक, प्रजा के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त सभापति को (अनीवृधन्) बढ़ावें।

भाव यह है कि राजा और प्रजा जब राजधर्म से युक्त, ईश्वर के समान वर्तमान न्यायाधीश सभापति को सदा प्रोत्साहित करें तथा इसी प्रकार सभापति भी इन्हें प्रोत्साहित करें।[2]

जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला (स्ववान्) प्रशस्त कुल और धन वाला (इन्द्र) पिता के समान वर्तमान सभापति राजा (अस्मे) हमारे (द्वेष) शत्रुओं को (आरात्) दूर व समीप देश से (चिद्) भी (सुनुत) सदा (युयोतु) दूर करे। (तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ करने वाले सभापति राजा की (सुमतौ) श्रेष्ठ मति, (भद्रे) कल्याण कारी (सौमनसे) श्रेष्ठ मन में विद्यमान व्यवहार में भी हम अनुकूल (स्याम) रहें। वह हमारा राजा है और (वयम्) हम उस राजा की प्रजा हैं। भाव यह है कि सभापति राजा अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, प्रशस्त कुल व धन वाला और पिता के समान व्यवहार करने वाला हो। प्रजा उसकी सम्मति में रहे।[3]

जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार पुरुषों वाला (विश्ववेदा) समस्त धन वाला, रक्षा करने वाला (स्ववान्) अपने बहुत से उत्तम (सुमृडीक) अत्यन्त सुखकारी (भवतु) हो, वह (इन्द्र) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला राजा (अवोभि) न्यायपूर्वक रक्षा आदि से प्रजा की रक्षा करे, वह (द्वेष) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे, प्रजा को (अभयम्) निर्भय

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २०.४८
आ न इन्द्रो दूरादा नु आसादभिष्टि कृदवसे यासदुग्र ।
ओजिष्ठेभिर्न पतिर्वज्रबाहु सगे समत्सु तुवणि पृतन्यून् ॥

२ वही, २०.५२
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेष सनुतर्युयोतु ॥

३ वही, १५.६१
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिर ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।

(कृणोतु) करे, स्वयं भी वैसा ही निर्भय (भवतु) हो जिससे हम (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम के (पतय) पालक (स्याम) हों। भाव यह है कि राजा अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, अपने बहुत से श्रेष्ठ पुरुषों वाला समग्र धन वाला अत्यन्त सुख देने वाला व ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला हो।[1]

हे (वसिष्ठास) अत्यन्त वास करने वाले प्रजाजनो! जो विद्वान् लोग (वृषणम्) बलिष्ठ (वज्रबाहुम्) वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाले (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारक राजा को (अर्कै) पूजित कर्मों से (अभ्यर्चन्ति) सब ओर से सत्कार करते हैं, उसको (एव) निश्चय से तुम (इत) भी सत्कार करो। (स) वह (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त राजा (न) हमारे (गोमत) प्रशंसित गौ आदि पशुओं तथा (वीरवत्) वीरों से युक्त राज्य को (धातु) ग्रहण करे। (यूयम) तुम (स्वस्तिभि) कल्याण कारक कर्मों से (न) हमारी (सदा) सब काल में (पात) रक्षा करें।

भाव यह है कि जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे प्रजा जन भी उनकी रक्षा करें।[2]

हे राजा और प्रजा के पुरुषो! ((इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के समान प्रकाश मान तुम दोनों (आगतम) आओ और (गीभि) उत्तमशिक्षायुक्त वचनों से हमारे लिए (वरेण्यम) वरण करने योग्य (नभ) सुख को (सुनम) उत्पन्न करो और (धिया) ज्ञान व कर्म से (इषिता) प्रेरित व प्रार्थित होकर तुम दोनों (अस्य) इस सुख की (पातम) रक्षा करो। हे प्रजा के जन! तू (उपयामगृहीत) उत्तमनियमों से स्वीकृत है (त्वा) तुझे (इन्द्राग्निभ्याम) सभापति और सभासद से स्वीकृत मानते हैं। (एष) यह राजा का न्याय (त) तेरा (योनि) घर है इसलिए (त्वा) तुझे (इन्द्राग्निभ्याम) सभापति और सभासद के सत्कार के लिए सचेत करते हैं।

भाव यह है कि अकेला पुरुष यथोक्त राज्य के कार्य नहीं कर सकता इसलिए प्रजा जनों का सत्कार करके उन्हें राज्य के कार्यों में नियुक्त करें और वे यथोक्त व्यवहार से उस राजा का सत्कार करें।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २०.५१
इन्द्र सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभि सुमृडीको भवतु विश्ववेदा ।
बाधता द्वेषो अभय कृणोतु सुवीर्यस्य पतय स्याम ॥

२ वही, २०.५४
एवेदिन्द्र वृषण वज्रबाहु वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कै ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥

३ वही ७.३१
इन्द्राग्नी आगत सुत गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पात धियेषिता ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्या त्वैष त
योनिरिन्द्राग्निभ्या त्वा ।

हे (इन्द्र) राजन ! जो (सोम्यास:) ऐश्वर्य आदि में श्रेष्ठ (सुखाय) मित्र जन (सुम्नम्) ऐश्वर्य आदि को (सुन्वन्ति) निष्पन्न करते हैं, (प्रयांसि) कामना करने योग्य विज्ञान आदि को (दधति) धारण करते हैं और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचन को (आ+तितिक्षन्ते) सब ओर से सहन करते हैं उनका तू सदा सत्कार कर। (हि) क्योंकि (त्वत्) तुझ से (प्रकेत:) उत्तम प्रज्ञा वाला (कश्चन) कोई नहीं है, अत: सब तुझे चाहते हैं। भाव यह है कि जो मनुष्य यहाँ निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि को सहन करने वाले पुरुषार्थी, सबके साथ मैत्री करने वाले हैं उनकी सब सेवा करें। वे ही उपदेश देने वाले हों।[1]

हे (होत:) यजमान ! तू जैसे (होता) सुख का दाता विद्वान (ऊतिभि:) रक्षा आदि एवं (मधुमत्तमै:) अत्यन्त मधुर जल आदि एवं (पथिभि:) धर्मयुक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों की रक्षा करने वाले, (जेतारम्) जयशील (अपराजितम्) अन्यों से पराजित न होने वाले (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त, (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राजा का (यक्षत) सग करता है, (नराशंसेन) नरों से प्रशंसित (तेजसा) तेज से (आज्यस्य) विज्ञान को (वेतु) प्राप्त करता है वैसे (यज) सग कर। भाव यह है कि यदि राजा स्वयं न्याय मार्ग पर चलते हुए प्रजा की रक्षा करें तो वे अपराजित होकर शत्रुओं को जीतने वाले होते हैं।[2]

हे (वृत्रहन्) शत्रुओं का विनाश करने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य से युक्त राजन्! तू (अस्माकम्) हमारी (अर्द्धम) वृद्धि को (आ+गहि) सब ओर से प्राप्त कर। तू (महान्) पूज्यतम होकर (महीभि:) महान (ऊतिभि:) रक्षा आदि से (न) हमें (तु) शीघ्र (आ+दधनत्) सब ओर से पुष्ट कर। भाव यह है कि शत्रुओं का विनाशक परम ऐश्वर्य से युक्त राजा प्रजा की वृद्धि को सब ओर से प्राप्त करे। जैसे राजा प्रजा का रक्षक हो, वैसे प्रजा भी राजा को बढ़ावे।[3]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३४।१८

इच्छन्ति त्वा सोम्यास: सुखाय सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेत: ॥

२ वही, २८।२

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्।
इन्द्रं देवं स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशंसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

३ वही ३३।६५

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।
महान्महीभिरूतिभि: ॥

हे (इन्द्र) राजन ! जो (आयव) सत्य को प्राप्त करने वाले प्रजाजन (सकृत्स्वम) एक बार प्रसव वाली (पुरुपुत्राम) अन्न आदि रूप में प्रकट बहुत पुत्रों वाली (सहस्रधाराम) असंख्य प्राणियों को धारण करने वाली (बृहतीम) विस्तीर्ण (महीम) विशाल भूमि को (दुदुक्षन) दुहना चाहते हैं, जो (गोमतम) दुष्ट इन्द्रियों वाले (ऊवम) हिंसक का (अभितितत्सान) मुख्य रूप से हनन करना चाहते हैं और जो (त) तेरे (तद) उस राजकर्म की (पनन्त) प्रशंसा करते हैं उन्हें तू सदा उन्नत कर।

भाव यह है कि जो मनुष्य राजभक्त, दुष्टों के हिंसक, एक बार में बहुत पुष्प और फल प्रदान करने वाली, सबको धारण करने वाली भूमि दुह सकते हैं, वे राज कार्यों को कर सकते हैं।

हे (इन्द्र सूर्य के तुल्य जगत के रक्षक राजन ! (वाजस्य) विद्या का विज्ञान से हुए कार्य के (हि) ही (कारव) करने वाले (नर) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम) आपको जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम) सत्य के प्रचार से रक्षक (त्वाम) आपको (अर्वत) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में दबे(काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम) आपको (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें।

भाव यह है कि सेना और सभा के पति ! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ।[1]

हे मनुष्यो ! (वज्रहस्त) जिसके हाथों में वज्र (षोडशी) सोलह कलायुक्त (महान्) बड़ा (इन्द्र) और परम ऐश्वर्यवान राजा (शर्म) जिसमें दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों को (द्वेष्टि) वैरभाव से चाहता उस (पाप्मानम) पापात्मा खोटे कर्म करने वालों को (हन्तु) मारे। जो आप (महद्राय) बड़े-बड़े गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीत) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किए हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (ते) आपका

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३३.२८

आ तत इन्द्रायव पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितत्सान।
सुकृत्स्वं ते पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन ॥

२ वही, २७.३७

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥

(एष) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (योनि) निमित्त हैं उन (त्वा) आपका भी हम लोग सत्कार करें।[1]

भाव यह है कि हे प्रजाजनो! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मार और महान ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है।

हे विद्वन! जैसे (देवी) विद्या से देदीप्यमान (जोष्ट्री) प्रीति से युक्त (वसुधिती) विद्या को धारण करने वाली स्त्रियाँ (वयोधसम) जीवन को धारण करने वाले, (इन्द्रम) अन्न के दाता (देवम) दिव्य गुणों वाले सन्तान को तथा (देवी) धर्मात्मा स्त्री (देवम) धर्मात्मा पति के तुल्य (अवर्धताम) बढ़ाती है और (दवहत्या) बहती नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (श्रोत्रम) शब्द को सुनने वाले श्रोत्र नामक (इन्द्रियम) ईश्वर के रचे इन्द्रिय को (वीताम) प्राप्त करती हैं, वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुधन) द्रव्य याचक के लिए (वय) कमनीय सुख को (दधत) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर। भाव यह है जैसे अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक उपदेशिका विद्या देकर अपनी सन्तति को बढ़ाती हैं वैसे ही स्त्री पुरुष भी परमप्रीति से सन्तति को बढ़ावें और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो।[2]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि मैं कार्य-कारण वाले सविता देव के उत्पन्न जगत में बृहस्पति तथा इन्द्र के उत्तम नाक (दुःख रहित लोक) में आरूढ होऊं।[3] यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन्द्र या बृहस्पति का यह उत्तम नाक

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २६ १०

महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्त षोडशी शर्म यच्छतु।
हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते
योनिर्महेन्द्राय त्वा॥

२ वही, २८ ३८

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्र वयोधस देवी देवमवर्धताम्।
बृहत्या छन्दसेन्द्रिय श्रोत्रमिन्द्रेवयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीता यज॥

३ यजुर्वेद, ९ १०

देवस्याह सवितु सवे सत्यसवसो
बृहस्पतेरुत्तम नाक रुहेयम।
देवस्याह सवितु सवे सत्यसवस
इन्द्रस्योत्तम नाक रुहेयम्॥

कौन है ? उवट और महीधर इसका कोई स्पष्ट समाधान प्रस्तुत नहीं करते।[1] स्वामी जी ने यहां बृहस्पति से तात्पर्य बडे प्रकृति आदि पदार्थों और बडी वेद वाणी के पालक, परमेश्वर तथा वेदविद्वान् से लिया है। इन्द्र से तात्पर्य है परमैश्वर्ययुक्त सम्राट तथा दुष्ट विनाशक सेनाध्यक्ष।[2] नाक (न+अ+क) शब्द से अतिशय सुख और आनन्द का बोध होता है।[3] परमेश्वर की शरण में जाने से मोक्ष का सुख, गुरु की शरण में जाने से विद्या का सुख तथा सम्राट अथवा सेनाध्यक्ष की शरण में जाने से वैभव प्राप्ति का सुख प्राप्त होता है। यही बृहस्पति का नाक तथा इन्द्र का नाक है।

हे सेनाध्यक्ष ! राजन ! मैं (हवे हवे) प्रत्येक युद्ध में (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) दुष्टों के विदारक (अवितारम्) तप्त करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य के दाता (सुहवम्) अच्छे प्रकार आह्वान करने वाले (शूरम्) शत्रुओं के हिंसक (इन्द्रम्) राज्य के धारक (शक्रम्) आशुकारी (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों से निमन्त्रित (इन्द्रम्) शत्रु दल के विदारक तुझको (ह्वयामि) पुकारता हूँ, सो (मघवा) परम पूज्य इन्द्र) प्रशस्त मनों का धारक तू (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को (धातु) धारण कर। भाव यह है कि मनुष्य उसका सदा सत्कार करे जो विद्या, न्याय और धर्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय होकर सबकी सुख-वृद्धि के लिए प्रयत्न करे।[4]

---

१ शुक्लयजुर्वेद संहिता, ९ १० प १५७

उवट—अहम् रथचक्रमारोहामि। देवस्याहम् सवितुः सवे अभ्यनुज्ञाया सत्यसवस सत्याभ्यनुज्ञाया वर्तमानस्य बृहस्पते सर्वाधि उत्तममुत्कृष्टं नाकं स्वर्गलोकं रुहयम् आरोहामि। देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तम, नाकं रुहयमिनि देवतामात्र विशेष।

महीधर—देवस्याहमिति।

सत्यसवस सत्याभ्यनुज्ञस्य सवितुर्देवस्य सवेऽनुज्ञाया वर्तमानोऽहं बृहस्पते सम्बन्धिनमुत्तममुत्कृष्टं नाकं स्वर्गरूहेयमारोहामि।

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ९ १०

३ निरुक्त, २ १४

कमिति सुखनाम्। तत्प्रतिषिद्ध प्रतिषिध्यते।

४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) २० ५०

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥

हम लोग जिन (सुन्दशा) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले (सुहवा) सुन्दर बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) राजा-प्रजाजनों को (इह) इस जगत में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जैसे (सङ्गमे) संग्राम व समागम में (न) हमारे (सर्व, इत्) सभी (जन) मनुष्य (अनमीव) नीरोग (सुमना) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें वैसे किया करें। भाव यह है कि जैसे सब मनुष्य प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों वैसे ही राजा प्रजा पुरुष प्रयत्न करें।[1]

उवट व महीधर के अनुसार इन्द्रवायु याज्ञिक देवता है।

'इन्द्रवायू सुसदृशा। सुसदृशा सुनरा सम्यग्दर्शनीयौ।
सुहवा स्वाह्वानौ च इह हवामहे आह्वयाम।'

—इति उवट।

राजा आदि लोग विद्वानों से उत्तम वाणी प्रज्ञा और कर्म को ग्रहण करें। विद्वान लोग भी (इन्द्रम्) परमबल के योग से शत्रुओं के विदारक राजा को उत्सवादि महान कार्यों के अवसर पर अनुकूलतापूर्वक आनन्दित करें।[3]

हे (इन्द्र) शत्रुओं का विदारण करने वाले राजन! (ते) तेरे (तुरयन्तम्) हिंसक (शुष्मम्) शत्रुओं के शोषक बल को (शिशुम्) बालक को (मातरा) माता-पिता के (न) समान (क्षोणी) अपनी और पराई भूमि (अनु+ईयतु) अनुगमन करती है, सो (तव) तेरे (मन्यवे) क्रोध में (विश्वा) सब (स्पृध) शत्रु सेनाएँ (नदयन्त) नष्ट हो जाती हैं और (यत्) जिस (वज्रम्) न्याय के आच्छादक शत्रु को तू (तूर्वसि) मारता है वह पराजित हो जाता है।[4]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३ ८६

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमना असत्॥

२ शुक्लयजुर्वेद संहिता, ३३ ८६ पृ० ५५६
तुलना—वही (महीधर)
तापस दृष्टन्द्रवायवी। इह यज्ञे वयमिन्द्रवायू हवामहे आह्वयाम।

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३ २६
इमा ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥

४ वही, ३३ ६७

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥

इन्द्र सेनापति के रूप मे

यजुर्वेद मे इन्द्र को सेनापति मानकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे (इन्द्र) सेनाओ के पति! तू (कुचर) कुटिल चाल चलता (गिरिष्ठा) पर्वतो मे रहता (भीम) भयकर (मृग) सिंह के (न) समान (परावत) दूर देश से शत्रुओ को (आ, जगन्थ) चारो ओर से घेरे (परस्या) शत्रु की सेना पर (तिग्मम्) अति तीव्र (पविम्) दुष्टो को दण्ड से पवित्र करने हारे (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (सशाय) सम्यक तीव्र करके (शत्रून्) शत्रुओ को (वि, ताडि) ताडित कर और (मृध) सग्रामो को (वि नुदस्व) जीत कर अच्छे कर्मों मे प्रेरित कर।

यजुर्वेद मे कई मन्त्रो मे इन्द्र को मरुत्वान् कहा गया है।[2] इन स्थलो पर उवट व महीधर इन्द्र को स्वर्ग का देवता विशेष तथा मरुतो को उसके सहायक देवगण मानकर ही इन मन्त्रो का अर्थ करते हैं।[3] सायण ने इन्द्र के सहचर मरुतो की सख्या उनचास (४९) निश्चित की है।

> हे इन्द्र! मरुद्भिरेकोनपञ्चाशद् मरुद्गणै
> सह एव सपरिवार सन् सोम पिबा।[4]

स्वामी जी ने यहा इन्द्र को वीर और विद्वान सेनापति तथा मरुतो को उसके सैनिक मानकर अर्थ किया है। स्वामी जी के अनुसार इन्द्र द्वारा सोमपान का अर्थ सेनापति द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों के रसो का सेवन करना है। आधिदैविक दृष्टि से विद्युत सूर्य अथवा वायु ही इन्द्र है विविध प्रकार के मरुत ही उसके सहचर हैं।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १८.७१

> मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा परावत आ जगन्था परस्या।
> सृक सशाय पविमिन्द्र तिग्मम् वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व॥

२ (क) यजुर्वेद ७.३७

> सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
> जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभय कृणुहि विश्वतो न।
> एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

(ख) वही, ७.३८

> मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वध मदाय।
> एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

३ शुक्लयजुर्वेद सहिता ७.३७, ३८

४ काण्व सहिता भाष्य (सायण), १७.२०१

मरुतों (वायुओं) की सहायता से भौतिक जगत में विद्यमान सभी शत्रुओं का नाश करना ही इन्द्र का सोमपान करना कहलाता है।[1]

इन्द्र विश्व राज्य में सम्राट मंत्री और क्षत्रिय समाज का प्रतिनिधि है। इन्द्र राष्ट्र के शत्रुओं का मर्दन करके सज्जनों की रक्षा करके राष्ट्र को हर तरह से सुरक्षित रखता है। इन्द्र के सैनिक मरुत हैं। ये सैनिक इन्द्र की हर प्रकार से सहायता करते हैं। इनका नाम ही मरुत अर्थात् मारने वाले है। ये मरते तक डट-डटकर शत्रुओं से लड़ते हैं। ऐसे शूरवीर सेनाओं का सेनापति इन्द्र है।[2]

स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद के कई मन्त्रों में इन्द्र पद का अर्थ सेनेश, सेनाध्यक्ष और सेनापति किया है। वह इन्द्र (सेनापति) भयंकर सिंह के समान वीर है, वह बहुत सज्जनों के द्वारा सत्कृत है। वह शत्रुओं के कुल को विलोडन करने वाला, दया से रहित, सौ प्रकार के क्रोध वाला, शत्रु सेना का मथन करने वाला, अयुध्य अर्थात् जिससे शत्रु युद्ध न कर सके ऐसा अपनी बुद्धि से शत्रुओं के गोत्रों का भेदन करने वाला, शत्रुओं की भूमि को प्राप्त करने वाला, हाथों में वज्र रूप शस्त्र रखने वाला शत्रुओं का हनन करने वाला शत्रुओं को दूर करने वाले संग्राम को जीतने वाला सूर्य के समान तेज वाला महान बलवान् शस्त्र विद्या में शिक्षित, ऐश्वर्यवान, बलयुक्त सेना का निर्माण जानने वाला, राजधर्म के व्यवहार का जानने वाला, उत्तमवीर, बहुत बल वाला उत्तम शास्त्र बोधवाला, सुख-दुःख आदि का सहन करने वाला दुष्टों के वध में तीव्र तेज वाला, अभीष्ट वीरों वाला सब और युद्ध के विद्वान् रक्षक व भृत्यों वाला, बल से प्रसिद्ध, पृथिवी को प्राप्त करने वाला भुशुण्डि (बन्दूक) आदि आग्नेय अस्त्रों वाले भृत्यों से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों व शस्त्रास्त्रों का संग्रह करने वाला, इन्द्रिय और अन्तःकरण को वश में करने वाला मिले हुए शत्रुओं का जीतने वाला सोम नामक औषधि रस का पान करने वाला, बाहुओं से बल वाला, उग्रधनुष वाला, युद्ध करने वाला शस्त्रास्त्रों को चलाने वाला सेनाओं को शीघ्र चलाने वाला, पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला बैल के समान भयंकर वीर, शत्रुओं का अत्यन्त घातक, सचानक, शत्रुओं को सम्यक् रुलाने वाला एक मात्र वीर, निरन्तर प्रयत्न करने वाला शत्रुओं को दुःख पहुंचाने वाला दृढ़ उत्साही व्यूहों से युक्त होकर शत्रुओं का शिक्षित व अशिक्षित करने वाला वीर्यवान्, दोनों हाथों से शस्त्र धारण करने वाला, दुष्टों को रुलाने वाला, जयशील आदि-आदि विशेषताओं व विशेषणों से युक्त कहा गया है।

यजुर्वेद भाष्य करते हुए स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में इन्द्र पद का अर्थ अथवा सेनापति अथवा सेनाध्यक्ष अर्थ किया है अब उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ७.३७.३८

२ ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, पृ० ५१६

हे (पुरुहूत) बहुत सज्जनों के द्वारा सत्कृत, (इन्द्र) शत्रुविदारक सेनापति ! जल सूर्य (सहदानुम्) एक साथ जल को देने वाले, (क्षियन्तम्) गतिशील (कुणारुम्) शब्द करने वाले, (अहस्तम्) हाथों से रहित (पियारुम्) जलपान कराने वाले, (अपादम्) पांव से रहित (अभिवर्द्धमानम्) सब ओर से बढने वाले (वज्रम्) मेघ को (सपिणक्) पीस देता है वैसे हे (इन्द्र) सेनापति ! तू शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्य) मार।

हे सेनापति इन्द्र ! मध अर्थात रक्त से आर्द्र करने वाले संग्रामों को विनष्ट कर। अपनी सेना को इच्छा करने वाले हमारे शत्रुओं को झुकाकर पकड़, जो शत्रु हमें क्षीण करता है उसे अधोगति व अन्धकारमय कारागार में पहुंचा।[1]

सेना को सब दिशाओं में प्रेरणा करने वाला सेनापति पद के योग्य है। सेनापतियों का युद्ध समय का घोष शौर्य और उत्साहवर्धक हो। सेनापति का आदेश पालन करने वाली सेनाएँ संग्राम में जीतें। सेनापति अपने तुल्य बलवान् वीर योद्धाओं के साथ नीतिपूर्वक सद्व्यवहार करे जिससे वे शत्रुओं को जीतने का प्रयत्न करें। विद्युत और अग्नि के तुल्य सेनापति व सभापति श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करें व दुष्टों का विनाश करें।[2]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द)

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक् कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ २ अभिदासत्यधरं गमया तमः॥

२ वही, १७ ४०, ४१ ४३ ४१ ६४

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ २ उ देवा अवता हवेषु॥
इन्द्रेमं प्रतरं नय सजातानामसद्वशी।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा असत्॥
उदग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम्॥

हे विद्वानो ! जो (युत्सु) मिश्रित अमिश्रित करने वाले युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रु कुलों को (प्रगाहमान) प्रयत्न से विलोडन करने वाला, (अदय) दया से रहित (शतमन्यु) सौ प्रकार के क्रोध वाला (दुश्च्यवन) शत्रुओं के द्वारा दुःख से प्राप्त करने योग्य, (पतनाषाट) शत्रु सेना का मर्षण करने वाला (अयुध्य) जिसमें शत्रु युद्ध नहीं कर सकते वह (वीर) शत्रुओं का विदारक वीर (अस्माकम) हमारी (सेना) सेनाओं को (अवतु) सब ओर से रक्षा करे वह (इन्द्र) सेनापति हो, ऐसी आज्ञा करो। भाव यह है कि दुष्टों के प्रति दयाहीन शत्रुओं के प्रति शतमन्यु युद्ध में शक्ति से शत्रु कुलों को बलात्मक शत्रुओं से दुःख से प्राप्त होने वाला तथा शत्रु से अजेय, शत्रु सेना का विदारक और अपनी सेना का रक्षक मनुष्य ही सेनापति होने के योग्य है।[1]

हे (सजाता) एकदेश (=स्थान) में उत्पन्न (सखाय) परस्पर के सहायक मित्रो ! तुम (ओजसा) अपने शरीर और बुद्धि के बल से व सेना से (गोत्रभिदम) शत्रुओं के गोत्रों का भेदन करने वाले (गोविदम) शत्रुओं की भूमि को प्राप्त करने वाले (वज्रबाहुम) अपने हाथों में शस्त्रों को रखने वाले (प्रमृणन्तम) उत्तमता से शत्रुओं का हनन करने वाले (अजम) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, सग्राम को (जयन्तम) जीतने वाले (इमम) इस (इन्द्रम) शत्रु दल के विदारक सेनापति के (अनुवीरयध्वम) अनुकूल वीरता दिखाओ तथा (अनुसरभध्वम) अनुकूल होकर सम्यक युद्ध का आरम्भ करो। भाव यह है कि सेनापति और भृत्य परस्पर मित्र होकर एक दूसरे का अनुमोदन करके युद्धारम्भ और विजय करें शत्रुओं के राज्य को प्राप्त करके, न्याय से प्रजा का पालन करके सदा सुखी रहे।[2]

जो मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न होकर महौषधि के सार को स्वयं सेवन करके विद्वान व विदुषी, अध्यापक व उपदेशक तथा सभापति व सेनापति को सेवन कराकर सदा आनन्द को बढाते हैं वे धन्य हैं।

हे सूर्य के समान तेजस्वी सेनापति ! जैसे सूर्य मेघ का छेदन करता है वैसे तू

---

१ यजुर्वेदभाष्य दयानन्द) १७ ३९
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीर शतमन्युरिन्द्र ।
दुश्च्यवन पृतनाषाडयुध्योऽस्माक सेना अवतु प्र युत्सु ॥

२ वही, १७ ३८
गोत्रभिद गोविद वज्रबाहु जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इम सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्र सखायो अनु स रभध्वम ॥

शत्रुओं की सेना का विनाश कर। महान बलवान, शस्त्र विद्या में शिक्षित व ऐश्वयवान सेनापति युद्ध म स्थिर रह व विजय प्राप्त करें। जैसे शिकारी पक्षियों को जाल म बाध दत हैं वैसे शत्रु सेनापति को न बाध सके।[2]

हे (इन्द्र) युद्ध की परम सामग्री से युक्त सेनापति (बलविजाय) बलयुक्त सेना का निर्माण जानन वाला स्थविर) वृद्ध (=राजधर्म) के व्यवहार क ज्ञाता, (प्रवीर) उत्तमवीर (महस्वान) बहुत बल वाला (वाजी) उत्तम शास्त्र बोध वाला, (सहवान) सुख दुःख आदि को सहन करन वाला (उग्र) दुष्टों के वध म तीव्र तेज वाला, (अभिवीर) अभीष्ट वीरों वाला, (अभिसत्वा) सब ओर युद्ध के विद्वान, रक्षक व सत्या वाला (सहोजा) बल के कारण प्रसिद्ध, (गोविद) गौ अर्थात वाणी, गाय व पृथिवी को प्राप्त करन वाला होकर तू युद्ध के लिए (जैत्रम) विजेताओं से घिरे हुए (रथम) रमणीय भूयान समुद्रयान और आकाश यान म (आतिष्ठ) बैठ। भाव यह है कि सेनापति व सेना के वीर जब शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहें तब परस्पर सब ओर से रक्षा साधना का सग्रह करके बुद्धिपूर्वक उत्साह से युक्त होकर, पुरुषार्थी होकर शत्रुओं को विजय करन म तत्पर रहे।[3]

(स) वह सेनापति (इषुहस्तै) शस्त्र हाथ मे रखने वाले, सुशिक्षित, बलिष्ठ, (निषङ्गिभि) निषङ्ग अर्थात भुशुण्डि (=बन्दूक), शतघ्नी (=तोप) आदि बहुत आग्नेय अस्त्रो वाले सत्या के साथ विद्यमान, (स) वह (ससृष्टा) श्रेष्ठ मनुष्या व शस्त्र अस्त्रो का समग करन वाला (वशी) इन्द्रियो और अन्तःकरण को वश म रखने वाला (ससृष्टजित) ससृष्ट अर्थात् मिले हुए शत्रुओं को जीतन वाला,

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १९ ३,७१

यस्त रस सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्म सुरया सुतस्य ।
तन जिन्व यजमान मदन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम ॥
अपा फेनेन नमुचे शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजय स्पृध ॥

२ वही, २० ४६, ५३

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीम यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभि ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥

३ वही १७ ३७

बलविज्ञाय स्थविर प्रवीर सहस्वान वाजी सहमान उग्र ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित ॥

(सोमपा) औषधि रस का पान करने वाला (बाहुशर्द्धी) बाहुओं में बल वाला (उग्रधन्वा) उग्र धनुष वाला (स) वह (युध) युद्ध करने वाला, (अस्ता) शस्त्र अस्त्र को चलाने वाला (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक सेनापति (गणेन) सुशिक्षित मत्या व सेनाओं और (प्रतिहिताभि प्रत्यक्ष धारण की हुई सेनाओं के साथ वर्तमान होकर शत्रुओं को जीते।

भाव यह है कि सेनापति सुशिक्षित वीरों के साथ दुर्जय शत्रुओं को जैसे जीत सके वैसा सब आचरण करें।

हे विद्वान् मनुष्यो! तुम जो (चर्षणीनाम) मनुष्यों व उनसे सम्बन्धित सेनाओं को (आशु) शीघ्र बनाने वाला, (शिशान) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला, (वृषभ) बैल के (न) समान (भीम) भयंकर, (घनाघन) अत्यन्त शत्रुओं का घातक (क्षोभण) संचालक (संक्रन्दन) शत्रुओं को सम्यक् रुलाने वाला (अनिमिष) दिन-रात प्रयत्न करने वाला, (एकवीर) एक वीर (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक सेनापति हमारे (साकम) साथ (शतम) असंख्य (सेना) शत्रुओं को बांधने वाली सेनाओं को (अजयत) जीतता है उसे ही सेनापति बताओ।

भाव यह है कि एक मात्र वीर, निरन्तर प्रयत्न करके शत्रु-सेनाओं को पराजित करने वाला तथा रुलाने वाला आलस्य रहित होकर शीघ्र कार्य करने वाला, बैल की तरह भयानक, दुष्टों का घातक, अपनी सेनाओं का भली भांति संचालन करने वाला और पदार्थों को बुद्धि चातुर्य से सूक्ष्म करने वाला व्यक्ति सेनापति बनने का अधिकारी होता है।[2]

हे (युध) युद्ध करने वाले (नर) मनुष्यो! तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करने वाले (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को दुःख पहुंचाने वाले (धृष्णुना) दृढ़ उत्साही (युत्कारेण) व्यूहों से युक्त होकर मत्यों को मिश्रित और अमिश्रित करने वाले (वृष्णा) वीर्यवान (इषुहस्तेन) दोनों हाथों में शस्त्र धारण करने वाले (संक्रन्दनेन) दुष्टों को सम्यक् रुलाने वाले (जिष्णुना) जयशील (तत) उस पूर्वोक्त

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७ ३५
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी स सस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
स सस्रष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥

२ वही, १७ ३३
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं
सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥

(इन्द्रेण) परम् ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले सभापति के साथ वर्तमान रह कर शत्रुओ को जीतो और (तत) उस शत्रु सेना का युद्ध जय दुख को (सहजध्वम) सहन करो।

भाव यह है कि हे मनुष्यो ! तुम युद्ध विद्या म कुशल, सब शुभ लक्षणा म युक्त बल और पराक्रम से भरपूर पुरुषो को सबका अधिष्ठाता बनाकर, उसके साथ अधार्मिक शत्रुओ को जीत कर निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य को भोगो।[1]

हे (इन्द्र) सेनापत एव सेनाध्यक्ष ! आप (न) हमारे (विमध) विशेष शत्रुओ को (जहि) मारो। (पृतन्यत) अपनी सेना की इच्छा करने वाले (नीचा) नीच दुष्टो को (यच्छ) पकडो (य) जो शत्रु (अस्मान) हमें (अभिदासति) सब ओर से क्षीण करता है उसे (तम) अधकार को सूर्य के समान (अधरम) नीच (गमय) गिराओ। जिस (ते) आपका (एव) यह उक्त आचरण (यानि) निवास है सो आप हमसे (उपयामगहीत) सेना आदि सामग्री से युक्त होने से ग्रहण किये गये (असि) हो अत (इन्द्राय) ऐश्वर्य को देने वाले (विमधे) विशेष शत्रुओ से युक्त सग्राम को जीतने के लिए (त्वा) आपको सेनापति स्वीकार करते हैं तथा (इन्द्राय) परमानन्द की प्राप्ति के लिए (त्वा) आपको (नियोजयाम) आज्ञा देते हैं।

भाव यह है कि जो दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को बढाकर सबको पीडा देना चाहे उसे राजा सब प्रकार से दण्ड दे, यदि वह अपने प्रबलतर दुष्ट स्वभाव को न छोडे तो उसे राष्ट्र से निकाल दव अथवा मार डाले।[2]

इन्द्र सभेश अथवा सभापति के रूप मे

स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद भाष्य मे अनेक स्थलो पर प्रकरणानुसार इन्द्र को सभेश अथवा सभापति अर्थ का वाचक भी माना है। वह इन्द्र (सभेश अथवा सभापति) 'अङग अर्थात प्रिय, शविष्ठ अर्थात अत्यन्त बलशाली मघवन् अर्थात्

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १७ ३४

सक्रन्दनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्व युधो नर इषुहस्तेन वष्णा॥

२ वही ८ ४४

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पतन्यत
यो अस्माँ अभिदासत्यधर गमया तम।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते
योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे॥

ईश्वर के समान समृद्ध, 'मडिता' अर्थात दिव्य रूप से शत्रुओं को जीतने वाला, 'वज्रहस्त' अर्थात हाथ में वज्र रूप शस्त्र वाला 'तुरापाट' अर्थात शीघ्रकारी शत्रुओं का नष्ट करने वाला आदि विशेषणो से सम्बोधित किया गया है। इन मन्त्रो मे भी सायण ने याज्ञिक प्रक्रियानुसार इन्द्र को यज्ञ का एक प्रमुख देवता माना है। उसके अनुसार इन्द्र मुख्यत याज्ञिक देवता ही है तथा मन्त्रो मे औषधि आदि जड पदार्थों की स्तुति होने पर अथवा सूर्यादि पदार्थों की इन्द्रादि नाम मे स्तुति होने पर औषधि आदि अथवा इन्द्रादि नाम से उस उस नाम की चेतनाभिमानी देवता की ही स्तुति की गई है।[1]

अब स्वामी जी के मतानुसार इन्द्र का सभेश अथवा सभापति अर्थ जिन मन्त्रो मे प्राप्त है उनका अर्थ भी प्रस्तुत किया जाता है ताकि तत तत प्रकरणानुसार वह अर्थ समझा जा सके।

हे (अङ्ग) प्रिय (शविष्ठ) अत्यन्त बलशाली (मघवन) ईश्वर के समान समृद्ध (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सभापते! आप (मर्त्यम) प्रजा के मनुष्यो की (प्र+शसिप) प्रशसा करो। (त्वदन्य) आप से भिन्न दूसरा कोई (मर्डिता) सुख देने वाला (देव) और शत्रुओ को जीतने वाला (न) नही (अस्ति) है, इसलिए मैं (ते) आपको (वच) पूर्वोक्त राजधर्म के अनुरूप वचन (ब्रवीमि) कहता हू।

भाव यह है कि जसे पक्षपात रहित ईश्वर सबका मित्र है वैसे ही सभापति भी प्रशसनीय की प्रशसा, निन्दनीय की निन्दा, दण्डनीय को दण्ड और रक्षा करने योग्य की रक्षा करके सबका अभीष्ट करे।[2]

जो सूय के तुल्य सुशिक्षित वाणियो को प्रकट करते हैं, जसे वनो को अग्नि दग्ध करती है, वसे दुष्ट शत्रुओ को जलाते हैं जसे दिन रात्रि को निवृत्त करता है, वसे जो छल, कपट, अविद्या अन्धकार को मिटाते हैं वे प्रतिष्ठित सभापति होते हैं।[3]

---

१ ऋग्वेद भाष्योपक्रमणिका, पृ० १७

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ६ ३७

त्वमङ्ग प्रश शिषो देव शविष्ठ मर्त्यम।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वच ॥

३ वही ३३ २६

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीति स मायिनाममिनाद्वर्पणीति।
अहन् व्य समुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥

सभापति असहाय होकर कोई राज काय न करे। सज्जनों की रक्षा व दुष्टों के ताडन म राज सहाय से युक्त रहे। शुभ आचरण वाला सभापति शिष्ट जनों की सम्मति से प्रजा का शासन करे।[1]

हे (चित्रभानो) विचित्र विद्या प्रकाश वाले (इन्द्र) सभापति ! तू जो (इमे) ये (अण्वीभि) अगुलियो से (सुता) तयार किए हुए (तना) विस्तृत गुण से (पूतास) पवित्र (त्वायव) तुझे मिलने वाले पदार्थ हैं उन्हे (आयाहि) प्राप्त कर, उनका सेवन कर। भाव यह है कि विद्या प्रकाश से युक्त सभापति व मनुष्य श्रेष्ठ क्रिया से पदार्थों को शुद्ध करके खावे।[2]

हे (इन्द्र) सभापते ! (ते) आपके जो (स्वभावन) अपने ज्ञान विज्ञान मे दीप्तिमान (अवप्रिया) अविद्या के विरोध से प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले (विप्रा) मेधावी विद्वान लोग हैं, वह (नविष्ठया) सबथा नवीन (मती) बुद्धि से (हि) स्थिरतापूर्वक परमेश्वर की (अस्तोषत) स्तुति करते हैं, (अक्षन्) उत्तम भोजन करते हैं (अमीमदन्त) आनन्दित रहते हैं। इसलिए वे मेधावी विद्वान् शत्रुओं को और दुखों को (नु) शीघ्रता से (अधूषत) दूर हटाते एव दुष्टों और दोषों को कम्पा देते हैं। इसलिए हे सभापते ! आप भी इन दुष्टों और दोषों के हटाने म (ते) अपने (हरी) बल और पराक्रम को (योज) लगाओ।

भाव यह है कि मनुष्य प्रतिदिन नये विज्ञान और क्रिया को बढ़ावें। जैसे मेधावी लोग विद्वानो के सग और शास्त्रों के अध्ययन से नई नई मति (विज्ञान) और क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें।[3]

हे (देव) दिव्य गुणों से युक्त (इन्द्र) सभापति (वज्रहस्त) हाथों म वज्र के समान शस्त्रों वाले ! (वयम) हम राजपुरुष और प्रजाजन (ते) आपके सम्बन्ध मे (अप्रयुक्तास) अधम करने वाले (मा) न हो और (ते) आपकी (अब्रह्मता)

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३ २७

वृतस्त्वमिन्द्र माहिन स नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सपृच्छसे समराण शुभानर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥

२ वही २० ८७

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायव ।
अण्वीभिस्तना पूतास ॥

३ वही, ३ ५१

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती
योजान्विन्द्र ते हरी ॥

वेद और ईश्वर सम्बन्धी श्रद्धा कम (मा) न हो जिससे हम लोग आपकी (विदसाम) उपमा करें। आप (तुरापाट) शीघ्रकारी शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, सो जिन (रश्मीन) लगाम वाले (स्ववान) उत्तम घोड़ों को (आ) यम से वश में करते हो और (यम) जिस (रथम) रथ में (अधितिष्ठ) बैठते हो, हम लोग भी उन घोड़ों को वश में करें तथा रथ में बैठें।

भाव यह है कि राजपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें और राजा उनके साथ अन्याय न करें।

हे स्त्री पुरुषो! तुम जैसे (विश्वा) सब (गिर) वेद विद्या से संस्कृत वाणियां (समुद्रव्यचसम) समुद्र के समान व्याप्ति वाले (वाजानाम) संग्रामों तथा (रथीनाम) प्रशस्तवीरों के मध्य में (रथीतमम) अत्यन्त प्रशस्त रथ वाले अथात महारथी (सत्पतिम) सत अर्थात ईश्वर वेद, धर्म व जनों के पालक (पतिम) अखिल ऐश्वर्य से सम्पन्न पति रूप (इन्द्रम) परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र को (अवीवृधन) बढ़ाती है, वैसे सबको बढ़ाओ।

भाव यह है कि जो कुमार और कुमारियाँ दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य में साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़कर अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करते हैं धर्मयुक्त व्यवहार से, व्यभिचार रहित होकर उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर परोपकार में प्रवृत्त रहते हैं, वे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करते हैं, दूसरे अविद्वान् नहीं।[2]

हे (अग्ने) मित्र! जो (बर्हिष) अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले (यवमन्त) बहुत यव (जौ) वाले किसान लोग (नम उक्तिम) अन्न आदि की वृद्धि के लिए उपदेश (यजन्ति) देते हैं (एषाम) इनके पदार्थों एवं किसानों के (इहेह) इस संसार में और व्यवहार में तू (भाजनानि) पालन वा खान पानों को (कृणुहि) सिद्ध कर। जैसे ये (यवम) जौ आदि धान्य को (चित्) भी (वियूय) विभक्त करके (अनुपूर्वम) अनुकूलता से प्रथम (दान्ति) छेदन करते हैं वैसे तू इनके धन से (वृवित) बल को प्राप्त करा। (ते) तेरा (एष) यह (योनि) कारण है सो (त्वा) तुझे (अश्विभ्याम)द्युलोक और पृथिवी के लिए (त्वा) तुझे (सरस्वत्यै)

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १०.२२
मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम।
तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान्॥

२ वही, १२.५६
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥

कृषि कम को प्रचारक वाणी क लिए (त्वा) तुझे (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण क लिए तथा (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक क लिए (त्वा) तुझे (तेजसे) तज क लिए (त्वा) तुझे (वीर्याय) पराक्रम क लिए (त्वा) तुझे (बलाय) बल क लिए जो (यजन्ति) दान करत हैं अथवा जिन कृषक आदि क तू (उपयाम गृहीत) स्वीकार किया गया (असि) है। उनक साथ तू विहार कर। भाव यह है कि जो राजपुरुष कृषि आदि कम करन वाल, राज्य म कर दन वाल परिश्रमी लोगों की प्रीतिपूर्वक रक्षा करत हैं व उन्ह उपदश देत हैं, व इस ससार म सौभाग्य शाली होते हैं।

इन्द्र मनुष्य रूप मे

स्वामी दयानन्द न कई मन्त्रो म इन्द्र का अथ मनुष्य भी स्वीकार किया है (इन्द्र) सुख क इच्छुक, विद्या एश्वय स युक्त मनुष्य! तू (न) हमार (धाना वन्तम) सुगन्धित धाय अना से युक्त (करम्भिणम्) श्रेष्ठ क्रिया स निष्पन्न (अपूप-वन्तम्) उत्तम रीति स सम्पादित अपूप (=पूआ) आदि सहित (उक्थिनम) प्रशस्त उक्थ वचन स उत्पन्न बोध स निष्पादित अर्थात तयार किय हुए भक्ष्यपदार्थों म युक्त भोज्य अन्न रस आदि का (प्रात) प्रात काल (जुषस्व) सवन कर। भाव यह है कि जो विद्या अध्यापन और उपदश स सब का अलकृत करन वाल, विश्व क उद्धारक विद्वान लाग सुगन्धित रस आदि स युक्त अन आदि का यथासमय सवन करत हैं और जो उन्ह विद्या और सुशिक्षा स युक्त वाणी सिखलात हैं वे धयवाद क योग्य होत हैं।

ह मनुष्यो! जो (महिषा) महान पूजनीय (स्वर्क) उत्तम अक (=अन्न) आदि पदार्थों वाल (यजमाना) यज्ञ करन वाले विद्वान लोग (नमोभि) अन्नो स (सुराधस्तम) प्रशस्तसाम वाल (बर्हिषदम्) आकाश म स्थित होन वाले (सुवीरम्) उत्तम वीरो वा शरीर और आत्मा क बल स युक्त करन वाले (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वति) बढ़ात हैं व (दिवि) शुद्ध व्यवहार म (देवतासु) विद्वानो म (सामम्)

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १९ ६
कुविदङ्ग यवमन्तो यव चिद्यथा दान्त्यनुपूर्व वियूय। इहेहैषा कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै
त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते
योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥
२ वही, २० २९
धानावन्त करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व न ॥

ऐश्वर्य को (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त पुरुष को (दधाना) धारण करते हुए हर्षित होते हैं और हम भी (मदेम) प्रसन्न होवें। भाव यह है कि जो मनुष्य अन्न आदि ऐश्वर्य का सञ्चय करके, उससे विद्वानों को सन्तुष्ट कर सद्विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके सबके हितैषी होते हैं वे ही आनन्द को प्राप्त करते हैं।[1]

इन्द्र सूर्य रूप में

ऋग्वेद के एक सूक्त में[2] स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले मन्त्रों की सूर्य परक व्याख्या की है। इस आधिदैविक व्याख्या में सूर्य के कर्मों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। एक मन्त्र[3] का अर्थ करते हुए कहा है कि हे मनुष्यो! जो चलती हुई विस्तृत भूमि को धारण करता है जो अत्यन्त कोपयुक्त शत्रुओं के समान वर्तमान मेघों को छिन्न भिन्न करता है, जो बहुत विस्तार वाले अन्तरिक्ष को विशेषता से मापता है, जो प्रकाश को धारण करता है वह विदारक सूर्य जानने योग्य है।[4]

एक अन्य मन्त्र में स्वामी जी ने इन्द्र का अधिदैवत अर्थ सूर्य करते हुए स्पष्ट किया है कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है वह स्थानान्तर गति नहीं करता।

हे (अङ्ग) विद्वान् पुरुष जो (स्थिर) स्थिर अपनी परिधि में ठहरा हुआ (विचर्षणि) दर्शक (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सूर्य (महत्) बहुत (सत) होता हुआ (भयम्) भय को (आ अभि चुच्यवत्) अनन्त करता है (स हि) वही सूर्य लोक जानने

---

1 यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १९.३२
सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः॥

२ ऋग्वेद, २.१२.२

३ वही २.१२.२
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥

४ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २.१२.२
यः पृथिवीं विस्तीर्णां भूमिं व्यथमानाम् चलन्तीम् अदृंहत् धरति, यः पर्वतान् मेघान् प्रकुपितान् प्रकोपयुक्तान् शत्रूनिव वर्तमानान् अरम्णात् वधति, रम्णाति वधकर्मा (निघण्टु २.१९), यः अन्तरिक्षम् द्यावालोक्ययोर्मध्यस्थमाकाशविममे विशेषेण मिमीते वरीयः अतिशयेन बहु यः द्याम् प्रकाशम् अस्तभ्नात् स्तभ्नाति धरति स (हे) जनासः इन्द्रः (दारयिता सूर्य वेदितव्यः)।—हे मनुष्या यदीश्वरो विद्युत् सूर्य वा न रचयेत् तर्हि चलतो महतो भूगोलान् को धरेत् कश्च मेघं वर्षयेत्, कोऽन्तरिक्षं स्वप्रकाशेन पूरयेच्च।

योग्य है।[1] इन मन्त्रो म सायण ने इद्र को देवता विशेष मानकर अथ योजना की है।[2]

> यदद्य कच्च वत्रहन्नुदगा अभिसूय ।
> सव तदिद्र ते वशे ॥[3]

यजुर्वेद क इस मन्त्र म इन्द्र शब्द म सूय का सम्बोधित किया गया है। रात्रि का अधकार प्रकाश का आवरण है अत वह वत्र है। वृत्र (=रात्रि का अधकार) का नष्ट करन वाला वत्रहन (=प्रकाशरूपी एश्वय स युक्त इन्द्र) ही सूय है। सूय के लिए वृत्रहन और इन्द्र शब्द सम्बोधन मे प्रयुक्त है। उवट और महीधर न भी इद्र शब्द को सूय का विशेषण और पर्याय स्वीकार किया है।[4]

स्वामी दयानन्द न जिन मन्त्रो मे इन्द्र का अथ सूय अथवा सूयलाक किया है उनका व्याख्यान प्रस्तुत किया जाता है।

जसे यह (इद्र) सूयलोक (वृत्रतूर्ये) मेघ क वध करन के लिए (युष्मा) उन पूर्वोक्त जलो का (अवनीत) स्वीकार करता है और जैसे व जल (इन्द्रम्) वायु को

---

१ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २ ४१ १०,
इद्रा अडग महद्भयममी षदप चुच्यवत ।
स हि स्थिरो विचषणी ॥

२ ऋग्वेदभाष्य (सायण) २ (२ १ २
जतास जना हे असुरा य जात एव जायमाना एव सन, प्रथम देवाना प्रधानभूत मनस्वान मनस्विनामग्र गण्य देव द्योतमान सन क्रतुना वत्रवधादिलक्षणेन स्वकीयकमणा देवान सर्वान योगदवान, पयभूषत "द्रक्षत्वेन पयग्रहीत ।
ह जनास जना, य इद्र व्यथमानाम चलन्तीम पृथिवीम अदृहत शकरादिमिद ढामकरात ।—य च द्या दिवमस्तभ्नात तस्तम्भ निरुद्धमकरात ॥ स एव इद्रो नाहमिति ।

३ यजुर्वेद, ३३ ३५

४ शुक्लयजुर्वेद सहिता, ३३ ३५, पृ० ५४३
उवट—हे वत्रहन ! वृत्रस्य पाप्मन आवरस्य तमसो हत, त्वमुदगा अभि अभ्युदगा अभ्युदेषि। ह सूय ! तत्सवमेतत् ह इद्र ! ऐश्वयमुक्त। ते तव वशे वतन। त्वमधर ईश्वरो न द्वितीय इत्यभिप्राय ।
महीधर—वृत्रो मेघे रिपौध्वान्त दानव वासवे गिरी इति काशाद वृत्रमन्धकार आवरकत्वात् वत्रहारवि। हे वृत्रहन ! हे सूय ! इन्द्र ! ऐश्वययुक्त। अद्य यत कच्च यत्र कुत्रचित त्वमभिउदगा अभ्युदेषि, तत्सवं त तववशे अस्तीति शेष। यद्वा उदगा अत्र पुरुषव्यत्यय। यत्किंचित प्राणिजात भुदेति तत्सव तव वशे सवस्याशिता त्वमेवत्यथ ।

(अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसे ही उन जलों को (यूयम्) तुम विद्वान् लोग (वृत्रतूर्ये) मेघ के शीघ्र वेग में (प्रोक्षिता) उत्तम रीति से सींचे हुए (वृणीध्वम्) स्वीकार करो।

जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होवें इसलिए मैं यजमान (दव्याय) दिव्य (कर्म) पाँच प्रकार के कर्मों के लिए (देवयज्याय) विद्वानों वा दिव्यगुणों के सत्कार के लिए (अग्नये) परमेश्वर या भौतिक अग्नि को जानने के लिए (जुष्टम्) विद्या और प्रीति से सेवित (त्वा) उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) घृत से सींचता हूँ तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से (जुष्टम्) प्रीति से सेवनीय (त्वा) तृप्ति के लिए उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) प्रेरित करता हूँ। इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये जल (शुन्धध्वम्) शुद्ध हो जाते हैं (यत्) यज्ञ से शुद्ध होने से (व) उन जलों के (अशुद्धा) अशुद्ध गुण अर्थात् दोष (पराजघ्नुः) नष्ट हो जाते हैं। (तत्) इसलिए अशुद्धि की निवृत्ति से सुखदायक होने से (व) उन जलों के (इदम्) इस शोधन को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ।

भाव यह है कि ईश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिए रचा है कि ये सब पदार्थों के मध्य में प्रविष्ट होकर, जल और ओषधि रसों का छेदन करके वायु को प्राप्त हों, मेघमण्डल में जाकर और वहाँ से पृथिवी पर आकर शुद्ध और सुख के करने वाले हों।[1]

हे विद्वान् मनुष्य! तू (पूर्वकृत) पूर्व दिशा को बनाने वाला (सावधान) बढ़ता हुआ (वज्रबाहु) वज्र को हाथ में धारण किये हुए, (उपसाम) प्रभातों की (अनीके) सेना में जमे (पुरोरुचा) प्रथम फैली हुई दीप्ति से (समिद्ध) प्रदीप्त (इन्द्र) सूर्य (त्रिभि) तीन अधिक (त्रिंशता) तीस अर्थात् तैंतीस पृथिवी आदि (देवै) देवताओं के साथ विद्यमान होकर (वृत्रम्) प्रकाश के आच्छादक मेघ को (जघान) मारता है, (दुर) द्वारों को (विवव्र) खोलता है वैसे अतिबलवान् योद्धाओं की सहायता से शत्रुओं को मारकर विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर भाव यह है कि विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ शान्ति

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १ १३
युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये
यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याम्
त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै
यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥

एव प्रीति से सत्य-असत्य के विवेक के लिए सवाद कर, ठीक निश्चय करके सब लोगों का सम्पादित करें।[1]

हे विद्वान मनुष्य ! जैसे (वर्हि) अन्तरिक्ष का (उदाप) मदन करने वाला (हरिवान) बहुत किरणो वाला (उरुप्रथा) बहुत विस्तार करने वाला (आदित्य) वाह्य आदित्य मान (वसुभि) पृथिवी आदि आठ वसुओं के (सजोषा) साथ वर्तमान (इन्द्र) सूर्यों का धारण करने वाला सूर्य (पृथिव्या) भूमि की (प्रदिशा) दृष्टि से प्रथमानम (विस्तृत) अक्रम प्रसिद्ध (प्राचीनम्) प्राचीन तथा (स्योनम) सुखकारक स्थान से (सीदत) विद्यमान है वैसे तू हमारे मध्य मे हो। भाव यह है कि मनुष्य दिन रात प्रयत्न से सूर्य के समान अविद्या अन्धकार का निवारण करके जगत् मे महान सुख को उत्पन्न करे।[2]

हे मनुष्य ! आप यह (यत्) जो हवन करने योग्य द्रव्य है (हविषा) इसका शुद्ध आहुति रूप (घृतन) सुगन्धि आदि गुणों से युक्त घृत के साथ (सम्) सयुक्त—मिला कर (आदित्ये) बाह्य मान (वसुभि) अग्नि आदि आठ वसु और (मरुद्भि) वायुविन्यों के साथ (वर्हि) अन्तरिक्ष को सुख से (सम्+अञ्ज्‌कताम्) एकीभाव पूर्वक सयुक्त कीजिए। यह (इन्द्र) सूर्यतान यज्ञ मे (स्वाहा) सुगन्धि आदि गुणों से युक्त हवि को (सम+अञ्ज्कताम्) प्रकट रूप से सयुक्त करता है। सयुक्त हुई (विश्वदेवभि) अपनी किरणों से (दिव्यम) द्युलोक में विद्यमान (नभ) जल को (सम् गच्छतु) अच्छे प्रकार मनपूर्वक प्रकट करता है।

भाव यह है कि यज्ञ में शुद्ध किया हुआ जो हवि अग्नि मे डाला जाता है वह आकाश मे वायु जल और सूर्यकिरणों के साथ रह कर, इधर-उधर जाकर आकाश को सब पदार्थों को दिव्य गुणों से युक्त बनाकर निरन्तर प्रजा को सुख देता है।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २० ३६
समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधान ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्र वि दुरो ववार ॥

२ वही २० ३९
उदाना बर्हिहरिवान् इन्द्र प्राचीन सीदत्प्रदिशा पृथिव्या ।
उरुप्रथा प्रथमान स्योनमादित्यैरक्त वसुभि सजोषा ॥

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २ २२
स बर्हिरङ्क्ता हविषा घृतेन
समादित्यैर्वसुभि सम्मरुद्भि ।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्ता दिव्य
नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥

जसे रात दिन विभक्त होकर मनुष्य आदि के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं, उनमें से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती है और दिन सब व्यवहारों को प्रकाशित करता है, वैसे योगाभ्यास से राग आदि को निवृत्त करके शान्ति आदि गुणों को प्राप्त करके सुखों को प्राप्त करो।'

जैसे विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण करने वाले विद्वान लोग शरीर के रक्षक उस आयु के वर्द्धक पवित्र सूर्य का संग करते हैं वैसे हे यजमान तू भी इसका संग कर।

भाव यह है कि जैसे माता गर्भ और उत्पन्न बालक की रक्षा करती है, वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयु को बढ़ाओ।[2]

हे मनुष्यो ! जो (पृश्न) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्नि) जिसका तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्व पृश्नि) जिसका ऊँचा व उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुता) वायु देवता वाले जो (फल्गू) फलों को प्राप्त हों। (लोहितोर्णी) जिसकी लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और (पलक्षी) जिसकी चंचल चपल आँखें ऐसे पशु हैं (ता) वे (सारस्वत्य) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्ण) जिसके कान में प्लीहा रोग के आकार चिह्न हों। (शुण्ठाकर्ण) जिसके सूखे कान और जिसके (अध्यालाह कर्ण) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वष्ट्रा) त्वाष्टा देवता वाले जो (कृष्ण ग्रीव) काले गले वाले (शितिकक्ष) जिसके काँख की ओर श्वेत अंग और (अञ्जिसक्थ) जिसकी प्रसिद्ध जंघा अर्थात स्थूल होने से अलग विदित हो ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्ना) पवन और बिजली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जि) जिसकी (कराली हुई) चाल (अल्पाञ्जि) जिसकी थोड़ी चाल और (महाञ्जि) जिसकी बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्या) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिए।

भाव यह है कि जो पशु और पक्षी, पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २८ १५।
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम।
अयाव्यन्याघा द्वेषांस्यान्या वक्षद्वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते
वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥

२ वही २८ २५
होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

गुण वा जो पवन और बिजली गुण तथा जो प्रात समय की वेला के गुण वाले हैं उनसे उन्ही के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहिए।[1]

इन्द्र वायु रूप मे

विश्वेभि सोम्य मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभि ॥[2]

यजुर्वेद के इस मन्त्र मे 'इन्द्रेण वायुना' इस स्थल मे पठित तृतीयान्त इन्द्र और वायु शब्द परस्पर विशेष्य विशेषण अथवा पर्याय हैं। ऋग्वेद मे भी इन्द्र को वायु का पर्याय माना गया है।[3] निरुक्त निरुक्त समुच्चय व शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणो से भी वायु और इन्द्र की एकात्मता व विशेष्य विशेषणता सिद्ध हो जाती है।[4] स्वामी दयानन्द ने वायु और इन्द्र शब्दो मे विशेष्य विशेषण भाव मानते हुए (इन्द्रेण) सर्वधारक (वायुना) बलवान (पवन) अर्थ किया है।[5]

उवट और महीधर ने इन्हे पर्याय अथवा विशेष्य विशेषण न मानकर इन शब्दो की स्वतन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की है।[6]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २४ ४
पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुता फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ता सारस्वत्य प्लीहाकर्ण शुण्ठाकर्णो ऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्रा कृष्णग्रीव शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्ना कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्या ॥

२ यजुर्वेद ३३ १०

३ (क) ऋग्वेद, १ १४ १०
(ख) ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द) १ ३ ६
अनेन प्रमाणेनेन्द्र शब्देन वायुर्गृह्यते।

४ (क) वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान । निरुक्त ७ २ १
(ख) तस्माद्वाचायस्य (यास्कस्य)
मध्यमयोरयमभावतो (इन्द्रवायू) शब्दाविति ।
—निरुक्तभाष्य (दुर्ग) ७ २ १
(ग) इन्द्रो मध्यस्थानो वायुरुच्यते । निरुक्तसमुच्चय (वररुचि), ४ ८३
(घ) अय वा इन्द्रो योय पवते। शतपथ ब्राह्मण, १४ २ २ ६

५ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३ १

६ शुक्लयजुर्वेद सहिता ३३ १० पृ० ५३६
उवट—वैश्वदेवस्य। विश्वेभि साम्यम गायत्री। विश्वेभि देवै सह। सोम सवन्धि मधु हे अग्न इन्द्रेण च सह वायुना च सह पिब। मित्रस्य धामभिर्नामभि स्तुत सन। तदुक्तम त्वमग्ने वरुणो जायसे यस्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्ध इति।

इन्द्र विद्युत् रूप में

ऋग्वेद के एक मन्त्र में[1] स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र का अर्थ विद्युत करते हुए बताया है कि सभी पदार्थों की उत्पत्ति और स्थिति में यह सूक्ष्मविद्युत रूप अग्नि कारण है। मन्त्र का भाष्य करते हुए वे कहते हैं कि हे मनुष्यो, प्रति दिशा में जिसके समस्त व्याप्ति शील वेगादि गुण हैं, जिसकी किरणें हैं, जिसके मनुष्यों के निवास स्थान ग्राम हैं जिसके रथ हैं, जो कारण रूप विद्युत सूर्य और उषा को उत्पन्न करता है, जो जलों का स्थानान्तर में ले जाने वाला है, वह विद्युद्रूप अग्नि है, ऐसा जानो।[2]

स्वामी जी इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में यजुर्वेद का भाष्य करते हुए इन्द्र का विद्युत् अथवा विद्युतरूप अग्नि अर्थ किया है अब उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजली का (क्रोड) डूबना (अदित्य) पृथिवी के लिए (पाजस्यम्) अन्नो में जो उत्तम वह (दिशाम) दिशाओं की (जत्रव) सन्धि अर्थात् उनका एक दूसरे से मिलना (अदित्य) अखण्डित प्रकाश के लिए (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहिए तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाड़ी से (अन्तरिक्षम) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होते हुए व्यवहार से (नभ) जल और (चक्रवाको) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उनको (मतस्नाभ्याम) गले के दोनों ओर के भागों से (दिवम) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता उनसे (गिरीन) पर्वतों को (प्लाशिभि) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीह्ना) हृदयस्थ प्लीहा अग से (वल्मीकान) मार्गों को

महीधर –गायत्री मेधातिथिदृष्टा वैश्वदेवग्रहपुरोरुक् आमासश्चर्षणी (७ ३३) इत्यस्या स्थाने। हे अग्ने विश्वेभि विश्वेदेव इन्द्रेण वायुना च सह सोम्य सोममय मधु पिब। कीदृशस्त्वम। मित्रस्य धामभि नामभि स्तुत इति शेष। त्वमग्ने वरुणो जायसे यस्त्व मित्रो भवति दस्म ईड्य इति श्रुत।

१ ऋग्वेद, २ १२ ७

२ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २ १२ ७
अथ विद्युद्रूपाग्निविषयमाह। यस्य विद्युदादयस्य अश्वास व्याप्तिशीला वेगादयोगुणा प्रदिशि उपदिशि, यस्य गाव किरणा, यस्य ग्रामा मनुष्यनिवासा, यस्यविश्वे सर्वे रथास रमणसाधना य कारणख्या विद्युदाग्नि सूर्य सवित-मण्डलम य उषस प्रत्यूषकालम् जजान जनयति, य अपा जलाना नेता प्रापक, स जनास इन्द्र।

(क्लामभि) गोलेपन और (ग्लाभि) रूप तथा ग्लानियों से (गुल्पान) दाहिनी और उदर म स्थित जो पदाथ उनका (हिराभि) बढतियो से (सुवन्ती) नदिया को (हृदान्) छाट बडे जलाशया को (कुक्षिभ्याम) काखा से (समुद्रम) अच्छे प्रकार जहा जल जाता है। उन समु को (उदरेण) पट और (भस्मना) जले हुए पदाथ को जो शेष भाग उस राख मे (वैश्वानरम) सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो।

भाव यह है कि जा मनुष्य अनन्त विद्या बोधो को प्राप्त होकर ठीक ठीक यथाचित आहार और विहारा मे सब अगा का अच्छे प्रकार पुष्ट कर रागो की निवृत्ति करें तो वे धम, अथ, काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त हावे।

हे (स्तोत) स्तुति करने हार जन! जसे शिल्पी लाग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम) अति सुन्दर (तन्वम) विस्तारयुक्त शरीर को (व त) पवन के समान पाकर (यत) जिम कलायन्त्र रूपी घाडे और (अप) जला का (अगनीगन) प्राप्त हाते हैं वैसे (एतन) इस (अश्वम) शीघ्र चलने हार कलायन्त्र रूप घोडे को (अनेन) उक्त बिजली रूप (पथा) माग म आप प्राप्त हान (पुन) फिर (न) हम लागो को (आ वनयासि) भली भाँति बताते अथात इधर उधर ले जाते हो उन आपका हम लोग सत्कार करें।

भाव यह है कि हे मनुष्य! जो तुमको अच्छे माग स चलाते हैं, उनके सग से तुम लाग पवन और बिजली आदि की विद्या को प्राप्त होओ।[1]

मनुष्य वेद-मन्त्रा म सुगन्धि आदि द्रव्य का विद्युत रूप अग्नि म होम करके उस मेघ मण्डल मे पहुँचा कर, जल को शुद्ध करक सबके लिए बल का बढावे।[2]

जसे वायु स प्रेरित भूमि सम्बन्धी अग्नि और विद्युत रूप अग्नि सूय लोक के तज का बढात हैं। जैस दुधारू गौ क समान उषा वेला सब व्यवहारो के आरम्भ का हेतु है वसे सब लोग प्रयत्न पुरुषाथ करें।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २३ ७
यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम ।
एत स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि न ॥

२ वही, २८ १
होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत आजिष्ठश्चर्षणीसहा वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

३ वही, २८ ६
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धता वीतामाज्यस्य हातयज ॥

मनुष्य सृष्टि के विद्युत् आदि पदार्थों को जानकर उन्हें मयुक्त करके कार्यों का सिद्ध करे।[1]

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य में मरुत का व्यावहारिक अथ वताते हुए विद्वान अतिथि ऋत्विक, गहस्थ, वायु, मनुष्य, विद्वान सनापति, राजा, प्रजा आदि कई तरह स अथ किया गया है।

यजुर्वेद क दयान द भाष्य मे गहस्थो का कत्तव्य वताते हुए मरुत का विद्वान अतिथि व मरुत विद्वान अतिथि व ऋत्विक रूप मे ऋत्विक अथ किया है।[2]

हम गृहस्थ लोग (करम्भेण) अविद्या के नाश स (सजोपस) समान रूप से सबसे प्रीति करने वाले (रिशादस) दोषो और शत्रुओ का नाश करन वाल (प्रघासिन) उत्तम भोजन करने वाले (मरुत) विद्वान अतिथियो को एव ऋत्विजो को (हुवामहे) आमन्त्रित करते हैं। सभी गहस्थियो को वद्यो, शूरवीरो, यज्ञकर्त्ता ऋत्विजो का बुला कर व सेवा करके विद्या ग्रहण करनी चाहिए।

इ । प्रकार एक अन्य मन्त्र मे मरुत का विद्वान अथ लिया गया है।

हे (मरुत) ऋतु ऋतु म यज्ञ करने वाले विद्वानो ! जो (ईदृक्षास) इस लक्षण से युक्त (एतादृक्षास) इस पहले कहे हुए के सदृश(सदृक्षास) पक्षपात को छोड समान दृष्टि वाले (प्रतिसदृक्षास) शास्त्रो को पढे हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओ के सदृश हैं वे आप (न) हम लोगो को (सु आ, इतन) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (३) वा (मितास) परिमाणयुक्त जानने योग्य (समितास) तुला के समान स य झूठ का पृथक-पृथक करने (च) और (अस्मिन) इस (यज्ञे) यज्ञ मे (सभरस) अपन समान प्राणियो की पुष्टि पालना करने वाले हो वे (अद्य) आज (न) हम लोगो की रक्षा करे और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें।[3]

भाव यह है कि जब धार्मिक विद्वान जन कहीं मिलें जिनके समीप जावें पढावें और शिक्षा देवें तब व उन सब लोगो को सत्कार करन योग्य हैं।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३ ४५
इन्द्रवायू बहस्पति मित्राग्नि पूषण भगम।
आदित्या मारुत गणम ॥

२ प्रघासिनो हुवामहे मरुतश्च रिशादस करम्भेण सजोपस।
वही, ३ ४४

३ वही, १७ ८४
ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ पु ण
सदृक्षास प्रतिसदृक्षास एतन।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥

हे राजन ! आप वैसे अपना बर्ताव कीजिए (यथा) जैसे (दवी) विद्वान जनो के य (विश) प्रजाजन (मरुत) ऋतु ऋतु मे यज्ञ कराने वाले विद्वान (इन्द्रम्) परमैश्वययुक्त राजा के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल माग से चलन वाले (अभवन) होवें व जसे (मरुत) प्राण के समान प्यारे (दैवी) शास्त्र जानने वाले दिव्य (विश) प्रजाजन (इन्द्रम) समस्त ऐश्वयपुक्त परमेश्वर के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल आचरण करन हारे (अभवन) हो (एवम) ऐसे (दवी) शास्त्र पढे हुए (च) और (मानुषी) मूख (च) ये दोना (विश) प्रजाजन (इमम) इस (यजमानम) विद्या और अच्छी शिक्षा स सुख देने हारे सज्जन के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल आचरण करन वाले (भवन्त) हैं।[1]

इन मन्त्रों में मरुतो को 'सजोषस'[2] अर्थात समान रूप से सबस प्रीति करने वाले 'रिशादस'[3] अर्थात दोषो और शत्रुओ का नाश करन वाले 'प्रघासिन'[4] अर्थात उत्तम भोजन करने वाले सदक्षास'[5] अर्थात पक्षपात को छोड समान दृष्टि वाले, प्रतिसदक्षास[6] अर्थात शास्त्रो को पढे हुए सत्य बोलन वाले, मितास[7] अर्थात्

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयान द) १७ ८६
इन्द्र दवीविशो मरुतो नुवर्त्मानो भवन ,यथेन्द्र दवीविशा मरुतानुवर्त्मानो भवन । एवमिम यजमान दवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ।'

२ तुल०—शुक्लयजुर्वेद सहिता (महीधर) ३ ४४, पृ० ५२
सजोषस समानप्रीतय ।

३ वही, पृ० ५२
रिशादस रिशतिर्हिसाथ । रिशा वरिकृता हिसा दस्यति उपक्षयन्तीति रिशादस । दसु उपक्षये विवप । यद्वा रिशन्ति हिसन्तीति रिशा । इगुपध—(पा० ३ १ १३५) इति क । रिशान हिसकान दस्यन्तीति रिशाश्च । यद्वा रिशन्तीति रिशन्त । शतरिदीघश्छान्दस । रिशतोस्यन्ति क्षिपन्ति ते रिशादस । अस्य तविव ।

४ वही, १७ ८४ पृ० ३३४
प्रघासिन घस्लृ अन्न प्रकर्षेण घस्यत भक्ष्यते इति प्रघासा हविर्विशेष । स एषाम स्तीतितान प्रघासिन एतन्नामकान ।

५ वही
सदक्षास समान दशना सव एव ।

६ वही,
प्रतिसदक्षास प्रतिसमानन्शना सव एवा ।

७ तुल० —शुक्लयजुर्वेद सहिता (उवट), १७ ८४
मितास मित प्रमाणत सर्वे एव ।

परिमाण युक्त जानन योग्य, 'समितास '[1] अर्थात तुला के समान सत्य झूठ को पृथक्-पृथक करने वाले 'समरस '[2] अर्थात अपने समान प्राणियो की पुष्टि पालना करने वाले, 'दैवी विश '[3] अर्थात विद्वान प्रजाजन आदि विशेषणा स विशेषित किया गया है।

यजुर्वेद के (३ ४६) म त्र मे मरुतो को 'मीढुष' अर्थात विद्या आदि उत्तम गुणा का सीचने वाले तथा हविष्मत अर्थात प्रशस्त हवि देने वाले ऋत्विक जन कहा गया है। उवट व महीधर न इनकी व्याख्या म लिखा है—'महत चित यस्य तव मीढुष । मिह सेचन सेक्तु वरुणस्य वपयितुर्वा। यव्या हविष्मनो मरुत । यवमयं करम्भपात्रैं हविष्मतो मरुत तव स्वभूता सजाता तदनुग्रहात इति उवट । तथा मीढुषो वृष्टिप्रदत्वेन सेक्तु । हविष्मतो हवियोग्यस्य तव—इति महीधर ।'[4]

स्वामी जी के अनुसार मत्र का व्याख्यान निम्न प्रकार किया गया है। हे (इन्द्र) शूरवीर का जगदीश्वर! आप (अत्र) इस ससार मे (पृत्सु) युद्धो मे (देवैः) शूर विद्वानो के सहित (न) हमारी (सु) अच्छे प्रकार (रक्ष) रक्षा करो (मा) मत (हिंस्म) हिंसा करो। हे (शुष्मिन) अन त बल ईश्वर एव पूण बल वाले शूर! (स्म) इस समय (यस्य) जिस (त) आपकी (मह) महान (भी) वाणी (हि) निश्चय से इन (मीढुष) विद्या आदि उत्तम गुणो को सीचने वाले (हविष्मत) प्रशस्त हवि देने वाले (मरुत) ऋत्विक जनो की (वन्दत) स्तुति करती है एवम उनक सद्गुणो को प्रकाशित करती है। (चित) जैसे यह लोग आपकी सदा वन्दना करते हैं एवम अभिवादन करके आनंदित करते हैं, वसे ही जो (अवया) यजन करन वाला यजमान (अस्ति) है, वह आपकी आज्ञा से जित (यव्या) यव आदि उत्तम हवियो को अग्नि मे (जुहोति) डालता है वे हवियाँ सब प्राणियो का सुख देती हैं।[5]

भाव यह है कि जब सब मनुष्य परमेश्वर की आराधना करके, अच्छे प्रकार

---

१ तु० —शुक्लयजुर्वेद सहिता (उवट) १७ ८४
समितास सङ्गत्य मिता सव एव।

२ वही,
सभरस समानमलकारादिक बिभृत।

३ वही, (महीधर), १७ ८६, पृ० ३३५
दवी दैव्य देवानामिमा देवसबन्धिया विश प्रजा।

४ शुक्लयजुर्वेद सहिता ३ ४६, पृ० ५३

५ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३ ४६
भो प ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवया ।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गी ॥

सामग्री को बनाकर युद्धो म शत्रुओ को जीत कर चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त कर तथा उसकी रक्षा करके महान आनन्द का सेवन करते हैं तब सुराज्य बनता है।

ऋत्विक जनो से शूरवीरो की उपमा दी गई है। मन्त्र म उपमायक चित्त पद प्रयुक्त हुआ है।

मरुत् सेनापति के रूप मे

स्वामी जी ने मरुत का प्रकरण के अनुसार सेनापति अर्थ भी प्रस्तुत किया है। मन्त्र का व्यावहारिक अर्थ करते हुए सेनापति के कर्त्तव्यो का भी निदेश कर दिया गया है। उवट और महीधर भाष्यकारो ने मरुत को यज्ञ यज्ञीय देवता मान कर ही व्याख्या की है।[१] स्वामी जी के द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिकमन्त्रार्थ इस प्रकार है—

हे (मरुत) सेनापतियो ! तुम (या) जो (असौ) यह (परेषा) शत्रुओ से (स्पर्द्धमाना) ईर्ष्या करने वाली सेना (ओजसा) बल से (न) हमे (अभि+आ+एति) सब ओर से प्राप्त होती है (ताम) उसे (अपव्रतेन) कठोर कर्म से एव (तमसा) अन्धकार अर्थात शतघ्नी आदि के धूम से वा मेघ और पर्वताकार अस्त्र आदि के धूम से (सवृणुत) आच्छादित करो। ये शत्रुसेना के लोग (यथा) जैसे (अन्यान्यम) एक दूसरे को (न) न (जानन) जान सके वैसा पराक्रम करो।[२]

भाव यह है कि युद्ध के लिए आई शत्रु सेना जिससे आच्छादित हो जाय ऐसा सेनापति उपाय करें।

मरुत् मनुष्य रूप मे

स्वामी जी ने कई मन्त्रो मे मरुत का वायु के समान क्रियाशील मनुष्य मनुष्य व मरणधर्मा मनुष्य अर्थ किया है तथा व्यावहारिक अर्थ मे मन्त्र की सगति लगाई है। हे (सरराणा) उत्तमदान करने वाले, (मरुत) वायु के समान क्रिया कुशल

---

१ शुक्लयजुर्वेद संहिता, १७४७ पृ० ३२४

उवट—असो या। मारुती त्रिष्टुप। असौ या सेना हे मरुत, परेषा शत्रूणाम् अभि एति अभ्यागच्छति न अस्मा प्रति ओजसा बलेन स्पर्धमाना। यथामी अयो अन्य न जानन यथा अमी सनिका अन्योन्य परस्पर न जानीयु ॥

महीधर—मरुद्देवत्या त्रिष्टुप। हे मरुत या प्रसिद्ध असौ परेषा शत्रूणा सेना नो स्मानभि आ एति अभ्यागच्छति। कीदृशी। बलेन स्पर्धमाना स्पर्धां कुर्वाणा ता सेना तमसा अन्धकारेण यूय गूहत सवृता कुरुत। तथा गूहत येनअपव्रतेना कर्म नश्यति तादृशेन तमसा गूहतेत्यर्थ।

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७४७

असौ या सेना मरुत परेषामभ्यति न ओजसा स्पर्धमाना।
ता गूहत तममापव्रतन यथामी अन्यो अन्य न जानन ॥

मनुष्यो। तुम (पवत) पर्वताकार (अश्मन) मेघ मे (शिश्रियाणाम) एव मेघ के अवयवो मे स्थित विद्युत् को तथा (ऊजम) पराक्रम को (न) हमारे लिए (अधिधत्त) धारण करो। और (अदभ्य) जलाशय, (ओषधिभ्य) यव (जौ) आदि औषधियो, (वनस्पतिभ्य) अश्वत्थ (=पीपला) आदि वनस्पतियो के लिए (सम्मतम) उत्तम रीति से धारण किए हुए (पय) रसीले जल, (इषम) अन्न तथा (ऊजम) पराक्रम और (ताम) उस विद्युत को (धत्त) धारण करो। हे मनुष्य! (ते) तेरे (अश्मन) मेघ मण्डल मे जो (अक) पराक्रम वा अन्न है वह (मयि) मुझ मे हो और जो (ते) तेरी (क्षुत) भूख है वह (मयि) मुझ मे हो और (यम) जिस दुष्ट को (वयम) हम (द्विष्म) प्रसन्न नही रखते हैं (तम) उसे (ते) तेरा (शुक) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो।[1]

भाव यह है कि मनुष्य समान रूप से सुख-दुख का सेवन करने वाले मित्र बनकर पारस्परिक दुख का विनाश करके, सुख को सदा बढावें।

हे (मरुत) मनुष्यो! जो (शतक्रतु) असख्य कर्मों वाला सेनापति (शतपर्वणा) असख्य जीवो के पालन के निमित्त (वज्रेण) शस्त्र अस्त्र विशेष से जैसे (वृत्रहा) वृत्र को मारने वाला सूय (वत्रम्) मेघ का हनन करता है—वैसे (बृहत, इन्द्राय परम् ऐश्वय के लिए शत्रुओ का (हनति) हनन करता है (व) तुम्हारे लिए (ब्रह्म) धन व अन्न को प्राप्त कराता है, उसका तुम (प्राचत) सत्कार करो।

भाव यह है कि हे मनुष्यो! जो जैसे सूय मेघ का हनन करता है वैसे शत्रुओ का हनन करके तुम्हारे लिए ऐश्वय को बढाते हैं, उनका सत्कार करो। मन्त्र मे उपमा वाचक इव आदि पद लुप्त होने के कारण वाचक लुप्तोपमा अलकार है। जैसे सूय मेघ का हनन करता है वैसे सेनापति शत्रुओ का हनन करे।[2]

उवट और महीधर ने इस स्थल पर भी यज्ञ परक अर्थ प्रस्तुत करते हुए मरुत को याज्ञिक देवता ही स्वीकार किया है।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७ १
अश्मन्नूर्जं पवते शिश्रियाणामदभ्य ओषधीभ्यो
वनस्पतिभ्यो अधिसभत पय।
ता न इषमूर्ज धत्तमरुत स रराणा अश्मस्त
क्षुन् मयि त ऊर्य द्विष्मस्त ते शुगृच्छतु॥

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३ ९६
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वत्र हनति वृत्रहा शतक्रतुवज्रेण शतपवणा॥

३ शुक्लयजुर्वेद सहिता, ३३ ९६, पृ० ५५९
उवट—प्र व प्रथमा बहुवचनस्य व आदेश, प्राचत प्रोच्चारयत व यूयम् स्तुती।
इन्द्राय बृहते महते हे मरुत, ब्रह्म त्रयीलक्षणा किमितिचेत्। वृत्र हनति। हन्तीति

हे (मरुत) मरण धर्म वाले मनुष्यों! (मान्दार्यस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदार चित्त वाले (मान्यस्य) सत्कार के योग्य (कारो) पुरुषार्थी कारीगर का (एष) यह (स्तोम) प्रशंसा और (इयं) यह (गी) वाणी (व) तुम्हारे लिये उपयोगी होने तुम लोग (इषा) इच्छा व अन्न के निमित्त से (वयाम) अवस्था वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरादि की रक्षा के लिए (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (जीरदानुम) जीवन के हेतु (इषम) विज्ञान व अन्न तथा (वृजनम) दुःखों के वर्जने वाले बल को (विद्याम) प्राप्त हों। भाव यह है कि मनुष्यों को चाहिए कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्प विद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन बल और ऐश्वर्य को प्राप्त हों।[1]

हे मनुष्यो! तुमको (मरुताम) मनुष्यों के (स्कन्धा) कन्धा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर शिखावर्टे (रुद्राणाम) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताड़नरूप क्रिया (वायो) पवन सम्बन्धी (पुच्छम) पशु की पूछ अर्थात जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नि षोमयो) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें व (कुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम) श्रोणियों से (इन्द्रावृहस्पती) पवन और सूर्य (उरुभ्याम) जांघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम) परिपूर्ण चलन वाले प्राणियों से (आक्रमणम) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निवाड़ और (स्थूराभ्याम) स्थूल पदार्थों से (बलम) बल को सिद्ध करना चाहिए। भाव यह है कि मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अंग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहिए।[2]

प्राप्य शप श्रवणम्। वज्रहावज्रवधप्रवण शतक्रतु बहुकर्मा वज्रेण शतपर्वणा शतपर्यिना।

महीधर—हे मरुत वो युष्माकं स्वामिने इन्द्राय यूय ब्रह्म वेद सामरूपस्तोत्र प्राचत प्रोच्चारयत। कीदृशाये न्द्राय। वहते महते। तनो वृत्रहा वृत्रस्या सुरस्य पाप्मनो वा हन्तेन्द्रो वृत्र हनति हन्ते। बहुल छन्दसि (पा० २ ४ ७३) इति शपो लुगभाव कन वज्रेण स्वायुधेन। कीदशेन वज्रेण। शतपर्वणा शतसंख्यानि पर्वाणि धारा ग्रथयो वा यस्य स शतपर्वा तेन। कीदृशो वृत्रहा। शतक्रतु शत क्रतवो यस्य बहुकर्मा बहुप्रज्ञो वा।

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३४ ४८
एष व स्तोमो मरुत इय गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो।
एषा यासीष्ट तन्वे वया विद्यामेष वृजन जीरदानुम॥

२. वही २५ ६
महता स्कन्धा विश्वषा देवाना प्रथमा कीकसा रुद्राणा द्वितीयादित्याना ततीया वायो पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्रा बृहस्पती उरुभ्याम मित्रा-वरुणावल्गाभ्यामाक्रमण स्थूराभ्या बल कुष्ठाभ्याम॥

शुक्लयजुर्वेद के एक मन्त्र मे स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र का व्यावहारिक अथ विद्युत और मरुत का व्यावहारिक अथ मनुष्य किया है। हे (देव) उत्तम विद्या वाले (रथ) रमणीय स्वरूप विद्वन्! (इमाम) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान को (जुषाण) सेवते हुए (स) पूर्वोक्त आप जो (इन्द्रस्य) बिजली का (वज्र) गिरना (मरुताम) मनुष्यों की (अनीकम) सेना (मित्रस्य) मित्र के (गर्भ) अन्तःकरण का आशय और (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (नाभि) आत्मा का मध्यवर्ती विचार है उसको (न) और हमको (हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का (प्रति गभाय) प्रतिग्रह अर्थात स्वीकार कीजिए।[1]

उवट और महीधर ने इस मन्त्र का आधियाज्ञिक अथ ही किया है। इन्द्र और मरुत को याज्ञिक देवता के रूप मे स्वीकार किया गया है तथा हवि प्रदान की गई है।[2]

मरुत वायु रूप मे

इन्द्रस्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितो सुर
पण्यमानो मित्र क्रीतो विष्णु शिपिविष्ट
ऊरावासन्नो विष्णुनरं धिष ॥[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २९ ५४
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकम
मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभि ।
सेमा नो हव्यदातिं जुषाणो
देव रथ प्रति हव्या गभाय ॥

२ शुक्लयजुर्वेद संहिता, २९ ५४, पृ० ५१७
उवट—इन्द्रस्य वज्र। यस्त्वम् इन्द्रस्य वज्र असि मरुता च अनीक मुखमसि मित्रस्य च गर्भोऽसि वरुणस्य च नाभिरसि। स त्वम इमाम न अस्माकम। हव्यदातिम हविषो दानम जुषाण सेवमान। हे देवरथ, प्रतिहव्यागभाय प्रतिगभाय प्रतिगृहाण हव्याहवींषि।
महीधर—हे रथ हे देव, स त्व हव्या हवींषि प्रतिगभाय प्रतिगृहाण। कीदश त्वम्। इन्द्रस्य वज्र वज्रोत्प नत्वात। मरुतामनीक मुख मुख्य देवाना जयप्रापकत्वात्। मित्रस्य देवस्य गर्भ गीयत स्तूयते गर्भ। गृणातेर्भप्रत्यय। सूर्येण स्तूयमान। वरुणस्य नाभि नह्यत रिह्यते अननति नाभि नभ हिंसायाम इण प्रत्यय। वरुणस्य हननसाधनम्। ना स्माकमिमाम हव्यदातिं हविषो दानम् जुषाण सेवमान।

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ८ ५५

इस मन्त्र म महीधर न तो इन्द्र और मरुत का आधिदैविक दृष्टि स अर्थ किया है। इन्द्र के लिए और मरुतो के लिए स्वाहा करके आहुति देने का व्याख्यान किया है।[1] स्वामी दयानन्द जी न व्यावहारिक अर्थ करते हुए इन्द्र का विद्युत और मरुत का वायु अर्थ किया है।

हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानो स (न्याय) व्यवहार सिद्धि क लिए (इन्द्र) बिजली (च) और (मरुत) वायु (च) और (असुर) मघ (स्तूयमान) स्तुति के योग्य (मित्र) सखा (शिपिविष्ट) समस्त पदार्थों म प्रविष्ट (विष्णु) सवशरीर व्याप्त धनञ्जय वायु और इनमे म एक एक पदाथ (नरन्धिष) मनुष्यादि के आत्माओ मे साक्षी (विष्णु) हिरण्यगर्भ ईश्वर (क्रती) उत्पन आदि क्रियाओ म (आसन्न) सन्निकट वा (उपाधिन) समीप म प्रकाशित के समान और जो (श्रीत) व्यवहार म बरता हुआ पदाथ है इन सबको जानो।

भाव यह है कि मनुष्यो को चाहिए कि ईश्वर मे प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रिया कुशलता स उपयोग लेकर गाहस्थ्य व्यवहारो को सिद्ध करें।

एक मन्त्र म मरुत का वायु अथ लेकर स्त्री-पुरुषो के कर्तव्यो का निर्देश किया गया है। हे स्त्री ! जसे (स्वराट) स्वय प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है। वस (त) तरा पति हो। जिस दिशा क (मरुत) वायु (देवा) दिव्य सुख प्रदान करने वाले (अधिपतय) अधिपति है उसक समान जो (एकविंश) इक्कीसवा (स्तोम) स्तुति का साधक (साम) चन्द्र तथा (हुतीनाम) वज्र के समान वर्तमान किरणो को (प्रति धर्त्ता) धारण करन वाला पुरुष (त्वा) तरी (पृथिव्याम्) भूमि पर (श्रयतु) सेवा करे। (अप्यथा) इन्द्रिय भय क अभाव के लिए (निष्केवल्यम्) सदा केवल स्वरूप वालो म श्रेष्ठ (उक्थम) उपदश का (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा क लिए (वैराजम) विराट के प्रतिपादक (साम) साम प्राप्त कम का (स्तभ्नातु) ग्रहण कर।

जस (त) तर (अन्तरिक्ष) आकाश म स्थित (देवेषु) दान के साधनो मे (प्रथमजा) पथमाविस्तत कारण म उत्पन्न (दिव) प्रकाश के (मात्रया) भाग के (वरिम्णा) बाहुल्य स युक्त (ऋषभ) बलवान प्राण है, वस यही इह (विधर्त्ता) विविध रूप म धारण करने वाला (अधिपति) अधिष्ठाता है, उस विषय मे (त) वे सब (सविदाना) सम्यक प्रतिज्ञा करन वाले विद्वान (त्वा) तुम्हे (प्रथन्तु) उपदश करे और (नाकस्य) दु ख रहित आकाश क (पृष्ठ) सवक भाग म एवम (स्वर्ग) सुखकारक (लोक) विज्ञान म (त्वा) तुमे (यजमानम) इन विद्या के दाता को (सादयतु) स्थापित करें।[2]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (महीधर) ८ ५५ पृ० १५१।

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १५ १३

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतय

इस पञ्चम अध्याय मे स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य को दृष्टिगत रखते हुए 'इन्द्र एव 'मरुत' के व्यावहारिक स्वरूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे 'इन्द्र' व 'मरुत' के अनेक रूपो तथा उनकी विशेषताओ का स्पष्ट विवरण उपलब्ध होता है। योगी, विद्वान, आचार्य उपदेशक आदि ही समाज का सचालन करने वाले होते हैं। समाज की उत्तम मर्यादाओ का निर्माण भी इन्ही से होता है। श्रीमदगीता के अनुसार भी श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है लोग भी वैसा आचरण करते हैं। वह श्रेष्ठ जसा प्रमाण स्थापित करता है वसा ही दुसरे लोग मानते हैं।[1] इसीलिए इन्हें समाज का प्राण कहा जाता है। द्वितीय वर्ग समाज व देश के शासको, व्यवस्थापको एव न्याय सरक्षको का है। राजा सेनाध्यक्ष, सेनापति राजपुरुष, सभाध्यक्ष सभापति आदि इसी वर्ग मे आते हैं। इन्द्र' व मरुत' के अभिप्रायो मे इन सभी तत्त्वो का समावेश है। इनके अतिरिक्त इन्द्र पद मे वायु, विद्युत सूर्य तथा मरुत से वायु आदि अर्थों का भी स्पष्ट रूप से प्रयोग किया गया है।

इन्द्र एव 'मरुत शब्द के विभिन्न प्रकार के जितने भी व्यावहारिक अर्थ स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेदभाष्य मे प्रस्तुत किये हैं वे सब वैदिक शब्दो की यौगिकता के आधार पर ही किए गए हैं। स्वामी जी ने सवत्र वैदिक शब्दो की यौगिकता के सिद्धान्त को खुले रूप से स्वीकार किया है तथा तदनुसार अपना मौलिक भाष्य प्रस्तुत किया है। शब्दो की निष्पत्ति के आधार भूत प्रकृति प्रत्यय को ध्यान मे रख कर मूल अर्थ पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है तथा समाजोपयोगी व्यावहारिक अर्थों की उद्भावना की गई है।

यद्यपि अनेक स्थलो पर दयानन्द भाष्य भी अव्यवस्थित सा तथा दूरान्वय दोष से युक्त प्रतीत होता है। विशेष रूप से हिन्दी पदार्थ मे तो दोनो दोष स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। सस्कृत पदार्थ तो इन दोषो से प्रायः रहित हैं। सस्कृत पदार्थ मे शब्दो की यौगिकता का पूर्ण प्रदर्शन भी मिलता है। हिन्दी पदार्थ मे तो सस्कृत पदार्थ की विषय वस्तु भी अपूर्ण रूप मे मिलती है।

सोमो हेतीना प्रतिधर्त्तैकवि शस्त्वा स्तोम
पृथिव्या श्रयतु निष्केवल्य मुक्थमव्यथायै
स्तभ्नातु वैराज साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवोमात्रया
वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च त
त्वा सर्वे सविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे
लोके यजमान च सादयन्तु।

1 श्रीमदभगवद्गीता ३ २१
यद् यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।
स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

सम्भव है इसका कारण पण्डितों द्वारा संस्कृत पदार्थ से हिन्दी पदार्थ बनाते हुए कुछ भूलें रह गई हों। यह सब न्यूनता होते हुए भी स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य का अपूर्व योगदान यह है कि इस असाधारण वेद भाष्य के द्वारा वेद-व्याख्या को एक सर्वथा नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। वैदिक मन्त्रों का अर्थ नवीन पद्धति से नवीन दिशा में करने की नई परिपाटी का प्रचलन हुआ। वेदों को गडरियों का गीत कह कर उपेक्षित करने के स्थान पर वेदों के असाधारण महत्त्व को गौरवपूर्ण आधार मिला। याज्ञिक व्याख्याकार जिन मन्त्रांशों और मन्त्रों का प्रयोग व सम्बन्ध यज्ञों व यज्ञांगों में ही करते थे उनका स्वामी जी ने समाजोपयोगी व्यावहारिक अर्थ प्रस्तुत करके सबको चमत्कृत कर दिया। इसी दृष्टि से 'इन्द्र' एवं 'मरुत्' का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। भावी वेद विद्वानों व वेद व्याख्याकारों का पवित्र कर्त्तव्य है कि स्वामी जी के द्वारा दिखाई गई दिशा में आगे बढ़ते हुए मित्र, वरुण विष्णु आदि वैदिक शब्दों के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक स्वरूपों को दृष्टिगत रखते हुए समाजोपयोगी कल्याणकारी वेदार्थ को प्रस्तुत करें। जिससे जन सामान्य भी वैदिक ज्ञान से लाभान्वित हो सकें।

षष्ठ अध्याय

'इन्द्र' एव 'मरुत्' से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दु

प्रस्तुत अध्याय म श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का अभिप्राय वत्र वध के प्रसग मे इन्द्र की पारमार्थिक एव व्यावहारिक सगति का स्पष्ट किया गया है। साथ ही असुर, दस्यु, अनार्य, अहि इत्यादि शब्दो का अर्थ विवेचन करते हुए तत् प्रसग मे इन्द्र शब्द के अभिप्राय की सगति भी लगाई गई है।

(क) श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का अभिप्राय

श्री अरविन्द ने वेद रहस्य नामक ग्रन्थ मे इन्द्र को दिव्य प्रकाश का प्रदाता कहा है। इन्द्र नाम से सूचित तत्त्व एक मन शक्ति है जो प्राणमय चेतना की सीमितताओ से मुक्त है। वह प्रकाशमयी प्रज्ञा है जो विचार या क्रिया के उन सत्यो और पूर्णरूपो को निर्मित करती है जो प्राण के आवेगो से विकृत नही होते। इन्द्र दिव्य प्रकाश को प्रदान करने वाला है। इन्द्र प्रकाश स्वरूप है। इन्द्र का आवाहन भी इसी लिए किया जाता है कि इन्द्र दिव्य प्रकाश को बढाए। इन्द्र आकर अमरता के रस सोम का पान करके अमरता की भावना उत्पन्न करे। उसमे बल, आनन्द व प्रकाश की वृद्धि हो। इससे उत्पन्न आन्तरिक ज्ञान से आध्यात्मिक यात्रा के मार्ग की आच्छादक वृत्ररूप शक्तिया नष्ट हो जाएँ।[1]

श्री अरविन्द आधुनिक युग के मनीषी एव वेद विचारक हैं। इन्होने वेद मन्त्रो की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की। बाह्य ब्रह्माण्डगत तथा आन्तरिक पिण्डगत—इन दोनो दृष्टियो से इन्होने इन्द्र, मरुत, अग्नि, सोम, वरुण आदि वैदिक देवताओ का विवेचन किया। आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते हुए इन्द्र को सक्रिय गतिशील मन कहा गया है।[2] इन्द्र ही दिव्य मन है व मानसिक शक्ति का देवता है। वह ही चेतना का अधिपति पुरुष, परम प्रज्ञा है।[3] उसे ही प्रकाशमय मन का अधिपति कहा है। इन्द्र ही दिव्य मन की शक्ति है। इन्द्र जीवात्मा रूप मे मानव शरीर

---

१ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध), पृ० ३१

२ वेद रहस्य (पूर्वार्द्ध), पृ० २५५

३ वही, पृ० ३६६

में चेतना का अधिपति है।[1] इन्द्र को शरीर पुरुष व जीवात्मा सिद्ध किया है। शरीर में विद्यमान अहंकार, प्राण मन व वाणी भी इन्द्र पद वाच्य है।[2]

> सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
> जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥[3]

(सुरूपकृत्नुम्) जो पूर्ण रूपों का निर्माता है। (गोदुहे सुदुघामिव) और जो गो दोहक के लिए खूब दूध देने वाली गौ के समान है उस (इन्द्र) का (ऊतये) वृद्धि के लिए (द्यवि द्यवि) दिन प्रतिदिन (जुहूमसि) हम पुकारते हैं।

> उप न सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब।
> गोदा इद् रेवतो मद ॥[4]

(न सवना उप आगहि) हमारी सोमरस की हवियों के पास आ। (सोमपा) हे सोमरसों के पीने वाले। (सोमस्य पिब) तू सोमरस का पान कर, (रेवत मद) तेरे दिव्य आनन्द का मद (गोदा इत) सचमुच प्रकाश को देने वाला है।

> अथा ते अन्तमाना विद्याम सुमतीनाम।
> मानो अति ख्य आ गहि ॥[5]

(अथ) तब अर्थात तेरे सोम पान के पश्चात (ते अन्तमाना सुमतीनाम) तेरे चरम सुविचारों में से कुछ को (विद्याम) हम जान पावें। (मा न अति ख्य) उनको हम अति क्रमण करके मत दर्शा (आगहि) आ ॥

> उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
> दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥[6]

(उतनिद न ब्रुवन्तु) और हमारे अवरोधक भी हम कहे कि नहीं, (इन्द्रे इत दुव दधाना) इन्द्र में अपनी क्रिया शीलता को निहित करते हुए तुम (अन्यत चित् नि आरत) अन्य क्षेत्रों में भी निकल कर आगे बढ़ते जाओ ॥

---

१ वद रहस्य, पृ० ३५४
२ (क) प्राण एवेन्द्र
शतपथ ब्राह्मण, ६ १ २ २८, २ ६ १ १४
(ख) मन एवेन्द्र
वही १२ १६ १ १३
३ ऋग्वेद, १ ४ १
४ वही, १ ४ २
५ वही १ ४ ३
६ वही, १ ४ ५

इन मन्त्रों में महर्षि अरविन्द अनुसारी अर्थ की सायणानुसारी अर्थ से तुलना करने पर दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जहाँ अरविन्द आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं वहाँ सायण ने केवल आधियाज्ञिक अर्थ ही प्रस्तुत किया है।[1]

इनमें विश्वामित्र का पुत्र मधुच्छन्दस ऋषि इन्द्र का आवाहन करता है। उसने सोम रस की हवि लेकर प्रकाश में वृद्धि के लिए ही इन्द्र का आवाहन किया है। श्री अरविन्द के अनुसार मन्त्रों में प्रयुक्त प्रतीक सामुदायिक यज्ञ के प्रतीक हैं। इन्द्र सोम का पान करे। सोम से अभिप्राय है अमरता का रस। सोमपान के द्वारा बल एवम् आनन्द में वृद्धि हो तथा प्रकाश का उदय हो। पूर्ण प्रकाश होने से सम्पूर्ण अन्धकार मय बाधाएं हट जाएँगी।

महर्षि अरविन्द के शब्दों में इन मन्त्रों में आगे उन फलों का वर्णन किया गया है जिन्हें पाने की ऋषि अभीप्सा करता है। इस पूर्णतर प्रकाश के हो जाने से, तो कि मानसिक ज्ञान के अंतिम रूपों के आ जाने पर पुनः कर प्रकट हो जाता है, यह होगा कि बाधा की शक्तियाँ सन्तुष्ट हो जायेंगी तथा स्वयमेव आगे से हट जाएगी व और अधिक उन्नति तथा नवीन प्रकाशपूर्ण प्रगतियों का आने के लिए रास्ता दे देंगी। फलतः वे कहेंगी लो, अब तुम्हें वह अधिकार दिया जाता है जिस अधिकार को अब तक हम उचित तौर से ही तुम्हें नहीं दे रही थीं। तो अब न केवल उन क्षेत्रों में जिन्हें तुम पहले ही जीत चुके हो बल्कि अन्य क्षेत्रों में तथा अक्षुण्ण पड़े प्रदेशों में

---

१ वेदरहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० २८, २९, ३८

(सुरूपकृत्नुम्) शोभनरूप वाले कर्मों के कर्ता इन्द्र को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं (गोदुहे सुदुघाम् इव) जैसे गौ दोहक के लिए सुष्ठु दोग्ध्री गाय को कोई बुलाया करता है। (सोमपा) हे सोमपान करने वाले इन्द्र! (नः सवना उप आगहि) तू हमारे तीन सवनों में आ, और (सोमस्यपिबपिब) सोम को पी (रेवतः मदः) तुझ धनवान् की प्रसन्नता (गोदा इत्) सचमुच गौओं को देने वाली है अर्थात् जब तू हमसे प्रसन्न हो जाता है तब निश्चय ही हम बहुत सी गौएँ देता है।

(अथ) उस तेरे सोम-पान के अनन्तर (ते अन्तमानां सुमतीनाम्) जो तेरे अत्यन्त समीप हैं ऐसे सुमतियुक्त पुरुषों के मध्य में स्थित होकर (विद्याम) हम तुझे जान लें। (न अति मा ख्यः) तू हमें अतिक्रमण करके अन्यों को अपने स्वरूप का कथन मत कर, किन्तु (आगहि) हमारे पास ही आ।

(न) हमारे ऋत्विज् (ब्रुवन्तु) कहें अर्थात् इन्द्र की स्तुति करें (उत) और साथ ही (निदः) जो निन्दा करने वाले पुरुषों तुम यहाँ से तथा (अन्यत चित्) अन्य स्थान से भी (निः आरत) बाहर निकल जाओ, हमारे ऋत्विज (इन्द्रे इत् दुवः दधानाः) इन्द्र की सदैव परिचर्या करने वाले हों।

अपनी विजयशील यात्रा को जारी करो। अपनी यह क्रिया पूर्ण रूप से दिव्य प्रज्ञा को समर्पित करो, न कि अपनी निम्न शक्तियों को। क्योंकि यह महत्तर समर्पण ही है जो तुम्हे महत्तर अधिकार प्रदान करता है।[१]

एक मन्त्र मे स्वर्ग के अधिपति इन्द्र की सर्वोच्चता घोषित की गई है।[२] (इन्द्र) हे इन्द्र! (त्वम्) तू (सहीयस) वृद्धिगत बलशाली (नन) शक्तियो को (पाहि) रक्षा कर (मरुद्भि अवयात हेळा भव) मरुतो के प्रति जो तेरा क्रोध है उसे दूर कर दे, (सासहि) जो तू शक्ति म परिपूर्ण (सुप्रकेतेभि) सत्यबोध से युक्त उन (मरुतो क द्वारा (दधान) धारण किया हुआ है। हम (वृजनम् इष विद्याम) उस प्रबल प्रेरणा का प्राप्त कर लें (जीरदानुम) जो कि वेगपूर्वक बाधाओ को छिन्न भिन्न कर देने वाली है।[२]

एक मन्त्र मे इन्द्र को सैकडा क्रियाओ वाला कहा गया है।[३] हे सैकडा क्रियाओ वाले (शतक्रतो)! इस सोम रस का पान करके तू आवरण कर्त्ताओं का वध कर डालने वाला हो गया है (वृत्राणा घन अभव) और तूने समृद्ध मन का (वाजिनम्) उसकी समृद्धियो म (वाजेषु) रक्षित किया है।[४]

महर्षि अरविन्द ने इन्द्र और अगस्त्य के सवाद के उत्तरवर्ती सूक्त म मरुतो के आध्यात्मिक व्यापार को निश्चित रूप मे प्रकट किया है।[५]

> प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमति तुराणाम।
> रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्तविमुचध्वमश्वान् ॥[६]

(व प्रति) तुम्हारे प्रति (एना नमसा) इस नमन के साथ (अह एमि) मैं आता हू, (सूक्तेन) पूर्ण शब्द के द्वारा (तुराणाम) उनमे जो कि मार्गातिक्रमण म तीव्रगति वाले हैं (सुमति भिक्षे) मैं सत्य मनोवृत्ति की याचना करता हूँ। (मरुत) हे मरुतो!

---

१ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० ३३

२ ऋग्वेद १ १७१ ६

त्व पाही द्र सहीयसो नन भवा मरुद्भिरव यात हेळ ।
सुप्रकेतेभि सासहिर्दधानो विद्यामेष वृजन जीरदानुम ॥

३ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० ३८

४ ऋग्वेद, १ ४ ८

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभव ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम ॥

५ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० २५

६ ऋग्वेद, १ १७१ १

(वेद्याभि रराणत) ज्ञान की वस्तुओं मे आनन्द लो, (हेळ) अपने क्रोध को (निधत्त) एक तरफ रखा दो, (अश्वान) अपने घोडो को (विमुचध्वम) खोल दो।[1]

(मरुत) हे मरुतो ! (एप व स्तोम) देखो, यह तुम्हारा स्तोत्र है (नमस्वान) यह मेरे नमन से परिपूर्ण है (हृदा तष्ट) यह हृदय द्वारा रचा गया था (देवा) हे देवो ! *(मनसा धायि) यह मन द्वारा धारण किया गया था, (इमा उपयात) इन मेरे* वचनो के पास पहुँचो (मनसा जुषाणा) और इन्हे मन द्वारा सेवित करो (हि) क्योकि (यूयम) तुम (नमस) नमन के (इद्) निश्चयपूर्वक (वृधास स्था) बढाने वाले हो।[2]

(स्तुतास मरुत) स्तुति किये हुए मरुत (न मलयन्तु) हमे सुख प्रद हो (उत स्तुत मघवा) स्तुति किया हुआ ऐश्वय का अधिपति इन्द्र तो (शभविष्ठ) पूर्णतया सुख *का रचयिता हो गया है। (न कोम्या वनानि) हमारे वाछनीय आनन्द (ऊर्ध्वा सन्तु)* ऊपर की ओर उत्थित हो जाए (मरुत) हे मरुतो ! (विश्वा अहानि) हमारे सब दिन (जिगीषा) विजयेच्छा के द्वारा (ऊर्ध्वा सन्तु) ऊपर की ओर उत्थित हो जाए।[3]

मरुत तात्त्विक दृष्टि से विचार के देवता नही हैं। वे शक्ति के देवता हैं। किन्तु मरुतो की शक्तिया मन के अन्दर ही सफल होती हैं। साधारण रूप से इन्हे मरुत, वायु, आधी और वर्षा की शक्ति के रूप मे माना गया है। मरुत आधी तूफान के द्योतक हैं। ये वर्षा को, जलो को नीचे भेजते हैं। सत्य के सखा व प्रकाश के रचयिता होने के नाते इनसे प्रार्थना की गई है कि सत्य के तेजोमय बल से युक्त *मरुतो ! अपनी शक्तिशालिता से तुम उसे अभिव्यक्त कर दो, अपने विद्युत वज्र से* राक्षस को विद्ध कर दो। आवरण डालने वाले अधकार को छिपा दो, प्रत्येक भक्षक को दूर हटा दो, उस प्रकाश को रच दो जिसे हम चाहते रहे हैं।

महर्षि अरविन्द ने समाधि की अवस्था मे प्राप्त अपने व्यक्तिगत अनुभवो को दृष्टिगत रखते हुए वेदो के वर्षों के गहन अध्ययन के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि वेद गूढ भाषा मे है और उनमे आर्य ऋषियो के अलौकिक अन्तर्दृष्टि से अनुभूत शाश्वत सत्यो का वर्णन है। वैदिक मन्त्रो के अर्थ यदि गूढ रहस्य से भरे न होते तो

---

1 वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध), पृ० ३६

२ ऋग्वेद, १ १७१ २

एप व स्तोमो मरुतो नमस्वान हृदा
तष्टो मनसा धायि देवा ।
उपमा यात मनसा जुषाणा
यूय हि ष्ठा नमस इद वृधास ॥

३ वही, १ १७१ ३

स्तुतासो नो मरुतो मृलय तूल स्तुता मघवा शभविष्ठ ।
ऊर्ध्वा न सन्तु काम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥

परवर्ती लौकिक साहित्य मे अगाध व अनन्त ज्ञान के स्रोत के रूप मे वेदो की प्रतिष्ठा न हो पाती। वास्तव म वैदिक ऋषियो ने मनोवैज्ञानिक विचारो को द्वयर्थक भाषा का आवरण पहना दिया, जिसका एक अर्थ तो ससार के भौतिक तत्त्वो जल, अग्नि आदि से सम्बन्ध रखता था और दूसरा अर्थ आध्यात्मिक उच्चता का स्पर्श करता था।

श्री अरविन्द के अनुसार

श्री अरविन्द के मतानुसार वायु देवता प्राण शक्तियो का अधिपति है। वह जीवन दाता है तथा जीवन शक्ति से सम्बन्धित है। यह मनुष्य को कार्य करने म सदैव योगदान देता है।[1] प्राचीन रहस्यवादी ऋषियो के अनुसार जीवन तत्त्व एक महान् शक्ति है जो सम्पूर्ण भौतिक जगत् म व्याप्त है तथा सभी चेष्टाओ का कारण है। ऋग्वेद म जिन सूक्तों म इसका मुख्य रूप से आह्वान मिलता है उनमे एकाकी रूप मे इसका आह्वान नही है अपितु अन्यो का भी उल्लेख किया गया है। विशेष रूप से इसे इन्द्र से सम्बन्धित किया गया है।[2] मानव के लिए वायु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राण का मन के साथ मिलन भी इसकी सहायता से होता है। प्राण मन के उद्भव व विकास म साहाय्य प्रदान करता है। इसीलिए वायु को प्राण का अधिपति और इन्द्र का मन का अधिपति कहा जाता है।[3] वायु को इन्द्र के साथ सोमपान के लिए बुलाया गया है। वायु और इन्द्र सम्मिलित रूप मे प्रकाशमान शक्ति के दो देवताओ के रूप म पुकारे गये हैं।[4]

वायु और इन्द्र दोनो एक साथ रथ म बैठकर उस सोम रस का आनन्द पूर्वक पान करते हैं जो अपने साथ देवत्व प्रदान करने वाली शक्तियो को लाता है क्योंकि वायु के विषय म कहा गया है कि वह सर्वप्रथम सोम का पान करता है।[5] ऋग्वेद के ही एक अन्य मन्त्र मे दोनो का विचार के देवता के रूप मे आह्वान किया गया है।[6]

---

१ अरविन्दोज वैदिक ग्लासरी पृ० ८२ ८३

२ वेद रहस्य द्वितीय खण्ड पृ० ९८

३ वही पृ० ९९

४ ऋग्वेद, ४ ४७ ३
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथ शवसस्पती।

५ वही ४ ४६ १
अग्र पिबा मधूना सुत वायो दिविष्टिषु।
त्व हि पूर्वपा असि॥

६ वही १ २३ ३
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतय।
सहस्राक्षा धियस्पती।

वायु को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि वह सुखकर प्रकाश के रथ में आरूढ़ होकर अमृत कारक रस का पान के लिए आए। रथ शक्ति की गति का द्योतक है। इस रथ में नियुक्त होने वाले घोड़े नियुक्त कहे जाते हैं। वे क्रियावान गतियों के प्रतीक हैं। वायु के घोड़े इन्द्र के द्वारा हाँके जाते हैं। अभिप्राय यह है कि प्राणमय शक्ति के देव की गतियाँ मन के द्वारा ही परिचालित होती हैं।[१]

(ख) वृत्र-वध के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक संगति

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर 'वृत्र' शब्द को आत्मा पर अज्ञान और अविद्या का आवरण डालने वाली आसुरी वृत्तियों और पाप भावना कहा गया है। सायण के अनुसार 'वृत्रहा' का अर्थ 'पाप का हनन करने वाला' और 'वृत्र' का अर्थ 'पाप' है।[३] उवट व महीधर ने भी 'वृत्रहणम्' का अर्थ पाप का हनन करने वाला किया है।[४] यजुर्वेद में इन्द्र और अग्नि के विशेषण के रूप में वृत्रहन्तमौ पद में आए वृत्र का अर्थ महीधर के अनुसार आवरण डालने वाले पापों के हनन करने वाले किया गया है।[५] उवट और महीधर वृत्र का अर्थ शत्रु भी करते हैं।[६] आधिदैविक स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए यास्क ने वृत्र को मेघ कहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यास्क ने वृत्र को त्वष्टा का असुर पुत्र माना है।[७] वृत्र के जल पर सोने का और जलों को घेरे हुए पड़े रहने का वर्णन भी मिलता है। वृत्र नदियों का आवरक था।[८] जब इन्द्र के द्वारा जलों को प्रवाहित किया गया था तब वृत्र पर्वत की चोटियों पर विद्यमान था। इन्द्र ने वृत्र को पर्वत की चोटियों से गिराया और पर्वत के अन्दर घिरी हुई गायों

---

१ ऋग्वेद ४ ४८ २

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ।

नियुद्वाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।

२ तुल—वेदरहस्य, द्वितीय खण्ड, पृ० १०२-१०३

३ ऋग्वेद, २ १ ११

वृत्रहा पापादेर्हन्ता ।

४ यजुर्वेद ११ ३३

पाप्मनो हन्तारम् ।

५ वही ३३ ७६

वृत्राणाम् आवरकाणां पाप्मनां हन्तृतमौ ।

६ यजुर्वेद (उवट, महीधर), २७ ३७

७ निरुक्त, २ १६

तत्को वृत्र ? मेघ इति नैरुक्ता ।

त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका ।

८ ऋग्वेद, १ ५२ ६, २ १४ २ व ८ १२ २६

का स्वतन्त्र कर दिया।[1] इन्द्र के विशेषण के रूप में वत्रसुर, वत्रतुय, वृत्रहन्ता, वृत्रहव्य, वत्रहन्तम आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[2] वत्र शब्द यजुर्वेद में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है।[3]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में अथर्वा के पुत्र दध्यङ के द्वारा प्रदीप्त अग्नि द्वारा वत्र के मारे जाने का उल्लेख है। वत्र का अर्थ 'आवरक शत्रु' किया गया है।

'दध्यङ एतत्तम ऋषि वृत्रहणम
आवरकाणा शत्रूणा हन्तारम॥[4]

उवट व महीधर के अनुसार 'दध्यङ' एक ऋषि का नाम है। 'वृत्रहन' का अभिप्राय पापियों को मारने वाला है।[5] वत्र शब्द प्रतीकात्मक है। यह अध्यात्म ज्ञान को समावृत करने वाली आसुरी वृत्तियों का द्योतक है। ऋग्वेद में वत्र शब्द का बहुवचनान्त प्रयोग अनेक बार किया गया है।[6]

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वत्रहञ्जहि॥[7]

इस मन्त्र में इन्द्र को विश्व का अधिपति और वत्र संहारक कहा गया है तथा उस प्रार्थना की है कि तुम बल के साथ हमारे समक्ष आओ और वत्रों का वध करो।

वत्र शब्द नपुंसकलिंग और बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा असुर विशेष का वाचक नहीं है। विद्युत, स्तनयित्नु, तन्यतु, कुहरा और हिम से भी वत्र का सम्बन्ध मिलता है।[8] अहि, नमुचि, कुयव और दानव शब्द वत्र के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। पाश्चात्य वैदिक विद्वान मैक्डानल ने वत्र को अन्तरिक्ष के दानवों में सबसे बड़ा स्वीकार किया है।[9] वृत्र का नाश करने के लिए इन्द्र जन्म लेता

१ ऋग्वेद, ८ ३ १९
२ यजुर्वेद, ६ ३४ १ १३, १७ ४२, ३३ ५७
३ वही ४ ३, १० ८, २०, ३६, ३३ २६, ३४ ७
४ ऋग्वेदभाष्य (सायण) ६ १६ १४, पृ० ५४
५ यजुर्वेदभाष्य (उवट, महीधर), पृ० १९३
६ वैदिक देवशास्त्र पृ० ४१४
७ ऋग्वेद, ८ १७ ६
८ ऋग्वेद, १ ८० १२ १ ३२ १३
९ वैदिक देवशास्त्री, पृ० ४१२

है तथा वृद्धि को प्राप्त होता है।[1] 'वृत्रहा' पद इन्द्र के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। वृत्रहा इन्द्र शतपव वाले वज्र द्वारा वृत्र का वध करते हैं।[2]

अहन् वृत्र वृत्रतर व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धासीव कुलिशेना विवृक्णाऽहि शयत उपपृक् पृथिव्या ॥[3]

अर्थात महामारक अतितीक्ष्ण वज्र से इन्द्र, आवरण करने वालो मे जो विशेष बढ कर है ऐसे वृत्र (मेघ) को इस प्रकार मारता है, जिससे कि वह कटे हुए मेघ जालो वाला हो जाता है। जिस प्रकार कुठार से काटी गई वृक्ष की डालियाँ भूमि पर गिर पडती हैं इसी प्रकार इन्द्र द्वारा वज्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न हुए मेघ की जल धारा भूमि पर बरस पडती है।

इन्द्र शब्द सूर्य अर्थ मे भी प्रयुक्त किया गया है। स्वामी दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य म भी एक मन्त्र म इन्द्र को सूर्य कहा गया है।

हे विद्वन्! जसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों का सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम) प्रकाश स्वरूप (इन्द्रम) सूर्य का (अवद्धताम) बढाते हैं। उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषासि) द्वेषयुक्त जन्तुओ को (आ अयावि) अच्छे प्रकार पृथक करती और (अन्या) उन दोनो म मे एक प्रात काल उषा (वसु) धन तथा (वार्याणि) उत्तम जलो को (नक्षत) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिए (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिसम पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् मे (शिक्षित) जिनमे मनुष्यो ने शिक्षा की ऐसे दिन रात (वीताम) व्याप्त होवे (यज) यज्ञ कीजिए।[4]

दयानन्द वैदिक कोष क अनुसार इन्द्र सूर्यपद वाचक है। 'इन्द्र सकलपदार्थविच्छेत्ता सूर्यादि (१८ १८), जलाना धर्त्ता सूर्य (२० ३६), दिग्ज्ञापक सूर्य (१८ १८) विद्युत्सूर्यो वा (३४ ५७), सूर्य इव प्रतापी सभेश (३३ २६)'।[5]

---

१ ऋग्वेद, ८ ८६ ५
२ वही, ८ ८६ ३
वृत्र हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा।
३ वही, १ ३२ ५
४ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २८ १५
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम्।
अयाव्यन्याघा द्वेषा स्यान्या वक्षद्वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने
वसुधेयस्य वीता यज॥
५ दयानन्द वैदिक कोष, पृ० २१२

यास्क के अनुसार ऋग्वेद में इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन है। यह वर्णन अन्तरिक्ष में वर्तमान मेघ और मध्यम ज्योति विद्युत् के पारस्परिक संघर्ष का है। इस संघर्ष के फलस्वरूप वर्षा होती है।[1] यद्यपि यास्क ने इन्द्र शब्द का प्रयोग नहीं किया। इन्द्र के स्थान पर ज्योति शब्द प्रयुक्त किया है। अन्तरिक्ष में यही ज्योति विद्युत् है।[2] द्युलोक में इसे ही सूर्य कहते हैं जिसका इन्द्र पद से भी ग्रहण किया जाता है।

> रसान्रश्मिभिरादाय वायुनायगतः सह।
> वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥[3]

वेदों में वृत्र को इन्द्र के प्रमुख शत्रु के रूप में माना गया है। वृत्र मेघ एवम् अन्धकार का मूर्त रूप है। वृत्र ने द्यावापृथिवी को ढक लिया।[4] 'वृत्र' शब्द का व्याकरणिक विवेचन करते हुए इसे आवरणार्थक 'वृ' धातु से औणादिक 'क्त्र' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न माना गया है।[5] दयानन्द वैदिक कोष के अनुसार भी वृत्र मेघ है, न्याय वरक शत्रु है।[6] निरुक्त में उद्धत वचनानुसार वृत्र शब्द 'वृ', 'वृत' एवं 'वृध' इन तीन धातुओं से व्युत्पन्न होता है।[7]

---

१ निरुक्त, २.१६
तत्को वृत्र मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रो सुर इत्यैतिहासिका। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति, अहिवत्तु खलु मन्त्र वर्णा ब्राह्मणवादाश्च विवृद्धया शरीरस्य स्रोतांसि निवारयाञ्चकार तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिर आपस्तदभिवादिन्येषर्ग भवति।

२ शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.४६
विद्युद वा अपां ज्योति।

३ बृहद्देवता, १.६८

४ शतपथ ब्राह्मण १.१.३.४।

५ उणादि सूत्र, ४.१६४।

६ दयानन्द वैदिक कोष पृ० ९०१
वृत्र—मेघमिवन्यायां वरकं शत्रुम् १०.८ मेघमिवा विद्याम ४.१८.११, प्रकाशा वरक मेघमिव धर्मावरकम् (दुष्ट शत्रु) ३३.२६, आच्छादकम् (अहिम्-मेघम) ६.२०.२, जलं स्वीकुर्वन्तम प्रजासुखं स्वीकुर्वन्तं वा (मेघं शत्रुं वा) १.८.२, धनम ७.४८.२, वरणीयम (धनम) १.१८०.१, वृत्राणाम् धर्मा वरकाणाम् (दुर्जनानाम) ६.२६.८ वृत्रवत् सुखावरकाणां शत्रूणां मेघानां वा १.४८, वृत्राणि—आवरण घना इव शत्रुसैन्यानि ३.३०.२२।

७ वृतुवर्त्तते (भ्वादिगण) धातो
स्फायितञ्चि० (३.२.१३), सूत्रेण रक्।

प्रo विo पाठक के अनुसार वृत्रासुरवध का तात्पर्य

इन्द्र ने वृत्रासुर—वध कैसे किया ?[१] इसके समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाए और वैदिक मन्त्रों मे सगति लगाई जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धु नदी तथा समीपवर्ती क्षेत्र मे प्राचीनकाल मे हुए उत्पातो का वर्णन ऋग्वेद में किया गया है। इन उत्पातो के फलस्वरूप कई बार मिट्टी के बाध टूट गए और नदियो के प्रवाह मे अवरोध खडा हो गया। पानी मुक्त होकर बहने लगा। ऋग्वेद की ऋचाओ मे वर्णित वृत्र एक खोखला बाध था। उस तोडने का काय वृत्र वध माना गया। यह काय इन्द्र देवता ने किया। इसलिए सभी देवताओ मे इन्द्र को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ।

अति प्राचीन भारतीय सभ्यता के अवशेष, सिन्धु सभ्यता काल के मोहेन जोदडो तथा हडप्पा नगरो मे पाये जाते हैं। इन अवशेषो मे कही कही नदी की बाढ से कीचड भरा हुआ पाया गया है। वैज्ञानिको के मतानुसार ये नगर अनेक बार सिन्धु नदी मे आई बाढ मे डूबे थे। नदी के मार्ग मे अचानक किसी बाध के उभर आने से बाढ आना सम्भव था। वृत्र ने अपना शरीर फैला कर नदियो का प्रवाह रोक दिया। इन्द्र ने जब वृत्र का वध कर दिया तथा नदियो का पानी बहने लगा।

भू पृष्ठ खण्ड के सरकने के कारण अचानक एक खोखला बाध, नदियो के मार्ग में उभर कर खडा हो गया। नदियो का पानी रुक गया। समतल प्रदेशो मे ऐसा होने के कारण नदी का रुका हुआ पानी धीरे-धीरे दूरवर्ती भागो मे फैलता गया। कुछ समय पश्चात् पानी के भीतर दबाव के कारण या तेज वर्षा के कारण यही बाध टूट गया। अब अवरोध के हटने के कारण पानी बहने लगा। वृत्रासुर का वर्णन करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं कि स्थिर न रहने वाले और विश्राम न करने वाले जल प्रवाहो के बीच वृत्र का शरीर फैला हुआ था। उसके ऊपर से जल बह रहे था। इन्द्र के शत्रु वृत्र, ने बडा ही अधकार फैला रखा था।[२]

(ख) निरुक्त, २ १७
वृत्र मेघ नाम निघण्टु १ १०
वृत्रोवृणोतेर्वा वर्त्ततेर्वा वर्धतेर्वा।
यद वृणोत्तद वृत्रस्य वृत्त्वमिति विज्ञायते।
यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते।
यदवर्धत तद वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते॥

१ धर्मयुग, २८ जुलाई, १९८५, पृ० २५

२ ऋग्वेद, १ ३२ १०
अतिष्ठन्ती नाम निवेशनाना काष्ठानाम मध्ये निहित शरीरम।
वृत्रस्य निण्य विचरन्त्यापो दीर्घतम आशय दिन्द्रशत्रु॥

निघण्टु में वृत्र के समानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है। वृत्र को वलय के समान बाधा होने के कारण 'वल' तथा 'मेघ' के समान अवयवहीन होने के कारण 'अहि' कहा गया है। इन पदों में भू-पृष्ठ से उभरे लम्बे टेढ़े तिरछे बाँध का यथार्थ वर्णन हुआ है। बाँध (वृत्र) भूमि पर अपना शरीर फैला कर सोया था।[1] ऋषियों की प्रार्थना पर इन्द्र ने वृत्र को नष्ट कर दिया। लोगों की प्रार्थना सुन कर इन्द्र ने बल (वृत्र) को तोड़ दिया। पर्वत (बाँध) के मुदृढ़ द्वारों को खोल दिया। असुरों की खड़ी हुई बाधाओं को दूर कर दिया। सोमपान के उत्साह में इन्द्र ने ये सब पराक्रम किया।[2]

आर्यों व दासों (=दस्युओं) का युद्ध का तात्पर्य

पाश्चात्य मत के अनुसार दासों के विरुद्ध आर्यों के युद्धों का वेदों में संकेत मिलता है।[3] इसी आधार पर आर्यों को भारत में बाहर से आने वाला कहा गया। द्राविड, कोल भील व संथालों को भारत का मूल निवासी बताया गया। किन्तु यह मान्यता वस्तुतः भ्रान्तिपूर्ण है। दासों के साथ आर्यों का जो युद्ध वर्णन वेदों में मिलता है वह तो मानवीय युद्ध न होकर प्राकृतिक युद्ध है। वेद में इन्द्र को आर्य[4] तथा वृत्र (मेघ) को दास व दस्यु[5] कहा गया है। इन्द्र ही विद्युत है[6] तथा वृत्र मेघ है। इन दोनों का परस्पर संघर्ष ही प्राकृतिक युद्ध है।

---

१ ऋग्वेद १ ३२ ८

२ वही २ १५ ८

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो विपर्वतस्य दृंहितान्यैरत।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥

३ वैदिक इण्डेक्स, पृ० ७४।

४ ऋग्वेद १ ३४ ६

इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथा
वशं नयति दासमार्यः।

५ वही १ ३२ ११

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥

६ (क) ऐतरेय ब्राह्मण, ३ ४ अथ यदुच्चैर्घोषस्तनयन् व व वा कुर्वन्निव दहन्निव यस्माद् भूतानि विजन्ते तदस्य (अग्ने) ऐन्द्रं रूपम्।

(ख) शतपथ ब्राह्मण, ११ ६ ३ ६—स्तनयित्नुरेवेन्द्रः।

(ग) वही ६ १ ३ १४—विद्युत् वा अशनिः।

(घ) कौषीतकी ब्राह्मण ६ ६ यदशनि इन्द्रस्तेन।

निरुक्त टीकाकार दुर्ग के अनुसार वायु आवेष्टित विद्युत् ज्योति को ही इन्द्र नाम दिया गया है। उसके तेज से प्रतप्त जल वर्षा के लिए बहते हैं। यहां जल तथा तेज के पारस्परिक प्रति द्वन्द्व भाव को प्रस्तुत किया गया है यहीं उपमा द्वारा प्राकृतिक युद्ध का वर्णन है।[1]

इन्द्र वृत्र युद्ध का एक आलंकारिक वर्णन (ऋग्वेद मं० १ सूक्त ३२)

वज्रधारी इन्द्र ने जो प्रथम बल के काम किए हैं उनका मैं वर्णन करता हूँ। प्रथम उसने अहि नामक मेघ का हनन किया। दूसरा वृष्टि का प्रबन्ध किया। तीसरा काम उसने प्रवहण शील पर्वतीय नदियों का मार्ग बनाया।[2]

पर्वत में आश्रय लेने वाले अहि नामक मेघ का इन्द्र ने वध किया। त्वष्टा ने इन्द्र के लिए शब्दकारी और उत्तापकारी वज्र का निर्माण किया। जिस प्रकार अभिनव गौएं अपने बछड़ों के प्रति जाती हैं उसी प्रकार मेघ वध के अनन्तर धारावाही जल वेग से समुद्र की ओर गये।[3]

वर्षा करने वाले इन्द्र ने सोम का वरण किया और त्रिकुट यज्ञों में चुवाये हुए सोम का पान किया। धनवान इन्द्र ने मेघों के मुखिया मेघ को अन्तकारी वज्र से मारा।[4]

---

१ निरुक्त टीका (दुर्ग) २ १६

यदि मेघो वृत्रो य (एषु) मन्त्रेषु इह मन्त्रे वृत्र इत्येतच्छ्रुतम्। तदेतन्निगमानुप्रसक्तम् विचार्यत इत्युपयुक्तस्तच्छन्द। आह को वृत्र उच्यते। मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रो सुर इत्यैतिहासिका। निरुक्तमधीयते विदुश्च ये ते नैरुक्ता। आह यदि मेघो वृत्रो य एषु मन्त्रेषु सग्राम श्रूयन्ते तत्र क समाधिरिति। उच्यते, अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अपां च मेघोदरान्तर्गताना ज्योतिषश्च वैद्युतस्योद्भूतवृत्तेर्मिश्रीभावकर्म जायते। तेनहि वैद्युतेन ज्योतिषा वाय्वपप्लितेनोद्भिद्यमानोत्ताप्यमाना आप प्रस्यन्दन्ते, वर्षभावाय प्रवर्तन्ते। तथैव सत्युदकेनोत्सारितरेनर प्रतिद्वन्द्वभूतयोरुपमार्थेन स्वक्कल्पनया युद्धवर्णा भवन्तीति युद्धस्यकालीयय ॥

२ ऋग्वेद १ ३२ १

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोच यानि चकार प्रथमानि वज्री
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥

३ वही, १ ३२ २

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनव स्यन्दमाना अञ्ज समुद्रमव जग्मुराप ॥

४ वही १ ३२ ३

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायक मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥

हे इन्द्र ! जिस समय तून मेघा क मुखिया को मारा था, उस समय तून मायावियो की माया का की विनाश किया। तदनन्तर सूर्य, उषा और प्रकाश का उत्पन्न किया। अत को तुम्हे कोई शत्रु न मिला अर्थात सब शत्रु समाप्त हो गए।[1]

इन्द्र न महान अधकारी वृत्र को छिन्न बाहु करक बडे विध्वसकारी वज्र से मारा। कुठार से काटे हुए वृक्ष स्कन्ध की भाति वह वृत्र (मेघ) पृथ्वी पर गिरा।[2]

दुमद वृत्र ने अपन आपको प्रतिद्वन्द्वीहीन समझकर महावीर बहु विध्वसक शत्रुओ क उपाजक इन्द्र को युद्ध म ललकारा। इन्द्र के वधकारी कार्य स वह वृत्र बच नही सका। इन्द्र शत्रु वृत्र नदियो म गिर कर नदियो को भी पीसन लगा अर्थात वृत्र क वध पर इतने वेग म वृष्टि हुई कि नदी वेग क कारण पत्थर भी फूटन लग।[3]

पादरहित और हस्तरहित वृत्र न युद्ध के लिए इन्द्र का आहूत किया। इन्द्र न इस वृत्र के उन्नत स्थान पर वज्र स आघात किया। जिस प्रकार नपुसक मनुष्य वीर्य वान मनुष्य की समानता करन का व्यर्थ यत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र न भी व्यर्थ यत्न किया। इन्द्र द्वारा अनेक स्थानो पर ताडित हुआ वृत्र क्षत होकर भूमि पर गिरा।[4]

जिस प्रकार टूटे हुए तटो म जल बहता है उसी प्रकार भूमि पर गिरे वृत्र का अतिक्रमण करके प्रजा को हर्षित वाले जल बहत हैं। जो वृत्र जीवित अवस्था म अपनी महिमा से जलो को रोके हुए था, अब वही वृत्र मेघ उन जलों क पावा क तल बह रहा है।[5]

---

१ ऋग्वद १ ३२ ४
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिना प्रोत मायाः।
आत्सूर्य जनयन्द्यामुषास तादीत्ना शत्रु न किला विवित्से॥

२ वही, १ ३२ ५
अहन् वृत्र वृत्रतर व्यसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धासीव कुलिशेना विवृक्णाऽहि शयत उपपृक्पृथिव्याः॥

३ वही १ ३२ ६
अयोद्धेव दुर्मद आहि जुह्वे महावीर तुविबाधमृजीषम।
नातारीदस्य समृर्ति वधाना स रुजाना पिपिष इन्द्रशत्रु॥

४ वही, १ ३२ ७
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रि प्रतिमान बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्त॥

५ वही, १ ३२ ८
नद न भिन्नममुया शयान मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहि पत्सुत शीर्बभूव॥

वज्र की रक्षा के लिए वृत्र की माता दनु उस पर लेटी, जिससे वज्र बच जाए। इन्द्र ने नीचे से वज्र पर प्रहार किया, उस समय माता ऊपर और पुत्र दानु नीचे था। तदनन्तर जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के साथ सोती है, उसी प्रकार वृत्र की माता दनु भी सदा के लिए सो गई।[1]

न ठहरते हुए और न बैठते हुए जलों के मध्य में गुप्त और नाम रहित वृत्र के शरीर को जल पहचानते हैं, तब इन्द्र का शत्रु वृत्र दीर्घतम अर्थात् दीर्घ निद्रा में सदा के लिए सो गया।[2]

दास पत्नी अर्थात् दास (वृत्र) जिनका पति है, (अहिगोपा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला अहि (मेघ) जिनका रक्षक है ऐसे जल, पणि (मेघ जो रश्मियों को आवृत करता है) द्वारा जैसे गौवें (रश्मियां) निरुद्ध थी। उसी प्रकार जलों के छिद्र निरुद्ध थे। इन्द्र ने उस वृत्र का वध किया और आवृत्त छिद्रों को खोला।[3]

हे इन्द्र देव! वृत्र ने तेरे वज्र पर प्रहार किया था, तूने घोड़े की पूछ जैसे मक्खियों का निवारण करती है उसी प्रकार अनायास ही उस प्रहार को विफल कर दिया। तूने गौओं को जीता, तूने सोम को जीता और तूने सात नदियों को प्रवाहित किया।[4]

इन्द्र और अहि (वृत्र मेघ) जब युद्ध हो रहा था तब विद्युत गर्जन (ह्रादुनि) अर्थात् हन् हन् (मारो मारो) यह शब्द भी इन्द्र को परास्त नहीं कर सके। न ही वृत्र की अन्य मायायें भी पराजित कर सकीं। अन्त में मघवा अर्थात् धनवान इन्द्र ही विजयी हुआ।[5]

हे इन्द्र! वृत्र हनन के समय जब तुम्हारे हृदय में भय उत्पन्न हुआ था, तो क्या तूने अहि (वृत्र) के घातक किसी अन्य को देखा था। श्येन पक्षी की भांति तूने

---

१ ऋग्वेद १ ३२ ९
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधर पुत्र आसीत दानु शये सहवत्सा नधेनु ॥

२ वही, १ ३२ १०
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्य विचरन्त्यापोदीर्घतम आशयदिन्द्रशत्रु ॥

३ वही, १ ३२ ११

४ वही १ ३२ १२

५ वही, १ ३२ १३
नास्मै विद्युन्न तन्यतु सिषेध न या मिहमाकिरद् ह्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये ॥

निनानवें नदियो के जल का प्रवाहित किया था। हे इन्द्र ! तुझे भय न हो, यही हमारी प्राथना है।[1]

इन्द्र जगम और स्थावरा का राजा है। वह वज्र बाहु इन्द्र शात और शृगधारी पशुओ का भी राजा है। वह मनुष्य का भी राजा होकर निवास कर रहा है। जिस प्रकार चक्रनेमि यारो को धारण करती है, इसी प्रकार इन्द्र ने भी सबको धारण किया हुआ है।[2]

मक्डानल ने भी यह माना है कि वद म वर्णित इन्द्र वृत्र का युद्ध मानवीय युद्ध नहीं है अपितु यह प्राकृतिक घटनाओ का वर्णन है। वे इन्द्र प्रकरण म लिखते हैं कि इन्द्र वतमान काल मे वृत्र का वध करत हैं या वैसा करने के लिए उनका आह्वान किया जाता है। इससे ज्ञात हाता है कि उनका युद्ध अनवरत रूप स नवीन हाता चला जाता है। यह प्राकृतिक दृश्य के सतत नवीभाव का ही गाथात्मक प्रतिरूप है। वृत्र का वध करके उन्होंने अनक उषाओ और शरदो तक प्रवाहित होन के लिए सरिताओ को उन्मुक्त कर दिया है अथवा भविष्य मे एसा करने के लिए उनसे प्राथना की गई है। वे पवतो को विदीर्ण कर देत हैं और इस प्रकार सरिताओ को प्रवाहित करते हैं।[3]

महर्षि दयानन्द ने इस सूक्त के मन्त्रो की व्याख्या करते हुए शब्द स सूयलोक के दृष्टान्त से राजा के गुणो का प्रकाश, सूय व सभापति के काय का प्रकाशन व सूर्य अथवा मेघ का पारस्परिक युद्ध वर्णित किया गया है। व्यावहारिक अथ करत हुए वे कहत हैं कि राज पुरुषो का योग्य है कि जैसे वृत्र मघ क जितन बिजली आदि युद्ध के साधन हैं वे सूय क आगे क्षुद्र व थोडे हैं। सूय के युद्ध साधन उसकी अपेक्षा बडे हैं, इसीलिए सूय की विजय व मघ की पराजय हाती है वैसे ही राजा धम से शत्रुओ को जीते।[4]

निष्कष रूप म कहा जा सकता है कि इन्द्र-वृत्रासुर-सग्राम का विद्वानो ने विभिन्न दृष्टियो स व्याख्यान किया है। किन्तु यह आलङ्कारिक कथा है जो असत्य

---

१ ऋग्वेद, १ ३२ १४
अहेर्यातार कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत ।
नव च यन्नवतिं च स्रव तो श्येनो न भीतो अतरो रजासि ॥

२ १ ३२ १५
इन्द्रो यातो वसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहु ।
सेदु राजा क्षयति चषणीनामरान्न नेमि परिता बभूव ॥

३ वदिक दवशास्त्र, पृ० १४१ ।

४ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द) १ ३२ १ १५ ।

पर सत्य की विजय का सन्देश देती है, इसमें सन्देह नहीं। सूर्य तेजस्वरूप है। सूर्य अपनी तीव्र किरणों के द्वारा मेघ को मारता है तो इन्द्र द्वारा वृत्र वध होता है। जब मेघ रूपी वृत्र पृथ्वी पर गिरता है तो वह जल रूपी अपने शरीर का भूमितल पर विस्तृत रूप से फैला देता है। इससे निर्मित *बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं।* जब सूर्य रूप इन्द्र मेघरूप वृत्रासुर को मार कर भूतल पर गिराता है तो वह पृथ्वी पर सो जाता है। वह मेघरूप वृत्र ही आकाश से नीचे गिर कर पृथ्वी पर फैल कर फिर सूर्य किरणों से ग्रहण किया जाता है। सूर्य रूप इन्द्र उस गर्जन हुए मेघरूप वृत्र का छिन्न भिन्न करके इस प्रकार गिराता है जैसे कोई किसी मनुष्य के शरीर के अंगों को काट कर गिराता है। पृथ्वी पर गिरा हुआ वृत्र मरे हुए के समान शयन करने वाला प्रतीत होता है। वृत्र अपनी बिजली की गर्जना से इन्द्र को कभी भी जीत नहीं सकता। कभी मेघरूप वृत्र सूर्य रूप इन्द्र को आच्छादित कर लेता है तो कभी सूर्य रूप इन्द्र मेघरूप वृत्र के आवरण को दूर कर देता है। अन्तिम रूप में इन्द्र ही विजय को प्राप्त करता है।

यह तो आलङ्कारिक वर्णन से युक्त किया है। यह कथा प्रकाश अर्थात सत्य (इन्द्र) व अन्धकार अर्थात असत्य (वृत्र) के संग्राम में सत्य की विजय का सन्देश देती है। आध्यात्मिक पक्ष में चित्त की पाप युक्त वासनायें ही वृत्र हैं। प्रबुद्ध और दिव्यमन इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनकर चित्त को सन्मार्ग पर लगाने में समर्थ होता है। यही सशक्त जीवात्मा रूप इन्द्र ही उस पाप रूप वृत्र को नष्ट करने में समर्थ होता है।[1] इस प्रकार इन्द्र का वृत्र को मारने में सर्वातिशायी प्रभुत्व बना रहता है। देवता गण वृत्र को नष्ट करने व मारने के लिए इन्द्र को ही अपना नेता बनाते हैं।[2] इन्द्र के द्वारा वृत्र को मार डालने का *उल्लेख स्पष्टतया मिलता है। अग्नि बृहस्पति सोम आदि देवों* को भी वृत्र को नष्ट करने वाला प्रतिपादित किया गया है।[3] आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक जगत में इन्द्र और वृत्र का विनाशक विनाश्य सम्बन्ध ही स्फुट रूप

---

१ (क) शतपथ ब्राह्मण, ११ १ ५ ७

पाप्मा वै वृत्र।

(ख) वही, ६ ४ २ ३

वृत्रहणं पुरन्दरमिति पाप्मा वै वृत्र।

पाप्मानं पुरन्दरमित्येत।

२ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुर।

—ऋग्वेद, ८ १२ २२।

३ वही, ६ १६ ३४, १० ६९ ३ ८, १० ३६ ६

से सामने आता है। आधिभौतिक जगत् में वृत्र दुष्ट और हिंसक है। क्षात्र बलयुक्त पुरुष को ही इन्द्र कहा गया है।[1]

(ग) असुर, दस्यु, अनार्य, अहि इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन *तथा इस प्रसंग में 'इन्द्र' शब्द के अभिप्राय की संगति*

(१) असुर

वदिक साहित्य में कुटिल स्वभाव के दानवों को असुर कहा गया है। ये द्युलोक में रहते हैं। ये देवों के प्रतिद्वंद्वी भी थे।[1] असुर शब्द को राक्षस अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है। ये असुर ही अदेव कहलाए। इन्द्र से अदेव असुरों का अपनोदन करने के लिए कहा गया है।[3] 'असुरहन' शब्द का इन्द्र के लिए भी प्रयोग किया गया है। असुर का अर्थ है अशिव।[4] वेद में वरुण अथवा मित्र वरुण के लिए विशेष रूप से 'असुर' शब्द का प्रयोग मिलता है। ये गम्भीर मानसिक शक्ति से युक्त थे। बाद में प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में आए राक्षसों के साथ भी इसका प्रयोग होने लगा और असुर शब्द धीरे धीरे *'अभद्र' अर्थ का वाचक बन गया है।*[5]

(२) दस्यु (दास)

'दस्यु' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति—'दस्यु' शब्द 'दसु उपक्षय' धातु से

---

१ शतपथ ब्राह्मण, १० ४ १ ५
इन्द्र क्षत्रम।
कौषीतकी ब्राह्मण, १२ ८
तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३ ९ १६ ३
शतपथ ब्राह्मण, २ ५ २ २७ २ ५ ४ ८, ३ ९ १ १६,
क्षत्र वा इन्द्र।

२ अथर्ववेद, ८ ६ ५
य कृष्ण केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिक।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भससोपहन्मसि॥

३ ऋग्वेद ८ ९६ ९
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण
ताँ अप वप ऋजीषिन्॥

४ वही ६ २२ ४
पुरुहूत पुरूवसो सुरघ्न।

५ वही, १० १२४ ५
निर्माया उत्ये असुरा अभूवन्।
त्व च मा वरुण कामयासे॥

यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच', इस उणादि सूत्र से 'युच' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—'दस्यति नाशयति य स दस्यु' अर्थात् जो नाश करता है वह दस्यु है।

यास्क के मतानुसार अनावृष्टिकाल मे सब ओषधियो के रस क्षीण करने वाला होने से यह दस्यु है। कर्मों का नाश करने से भी इसे दस्यु कहा गया है।[2]

दास शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति—दिवादिगणीय 'दसु उपक्षये' धातु से कर्म में 'अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम'[3] सूत्र से घञ् प्रत्यय द्वारा दास शब्द बनता है। इसका अर्थ है—'दस्यते उपक्षीयते इति दास' अर्थात जो साधारण प्रयत्न से क्षीण किया जा सके, ऐसा साधारण व्यक्ति। इस अर्थ म दास शब्द का प्रयोग वृत्र (शत्रु) के विशेषण के रूप मे आता है।

भ्वादिगणीय दासृ दाने धातु से कर्ता अर्थ मे 'अजपि सर्वधातुभ्य'[4] वार्तिक से अच प्रत्यय द्वारा 'दास शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है—'दासति दासते वा य स' अर्थात दाता या दान देने वाला।

इसी भ्वादिगणीय दास दाने धातु स 'कृत्यल्युटो बहुलम'[5] से सम्प्रदान अर्थ मे अच या घञ्' प्रत्यय होने पर भी 'दास' शब्द निष्पन्न होता है। इस स्थिति मे इसका अर्थ है—'दासति दासत वा अस्मै' अर्थात जिसके लिए दिया जावे। भृत्य, किंकर, सेवक आदि सभी दास पद वाच्य हैं।

क्षयार्थक दसु धातु से णिजन्त म कर्ता म 'अजपि सर्वधातुभ्य'[6] से अच प्रत्यय द्वारा निष्पन्न दास का अर्थ है—'दासयति य स दास'[7] अर्थात जो यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों व प्रजा आदि को क्षीण करे, वह दास अर्थात अनार्य व्यक्ति।

दसन और भाषणार्थक दसि धातु से णिजन्त म कर्ता अर्थ म 'दसेष्टटनौ न आ च' इस उणादि सूत्र[8] से 'ट' या 'टन' प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'दास' शब्द का

---

१ उणादि सूत्र, ३ २०

२ निरुक्त, ७ २३
दस्युर्दस्यते क्षयार्थाद उपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि।

३ अष्टाध्यायी, ३ ३ १६

४ वही ३ १ १३४ सूत्र का वार्तिक

५ वही ३ ३ ११३ सूत्र का वार्तिक

६ वही ३ १ १३४ सूत्र पर वार्तिक

७ तुल०—निरुक्त, २ १७
दासो दस्यत उपदासयति कर्माणि।

८ उणादि सूत्र, ५ १०

अथ है—'दसपति दशति भापते वा य स दास' अर्थात् जो काटने (हिंसा करने) तथा भाषण करने वाला है वह दास है।

वेदो म दास शब्द का विविध रूपो म प्रयोग मिलता है। यह शब्द नमुचि[1], 'शम्बर'[2] व शुष्ण[3] नामक मेघो के विशेषण रूप म, उपक्षीण (बलरहित) शत्रु के लिए,[4] अनार्य के लिए,[5] अज्ञानी, अकर्मा मानवीय व्यवहारशून्य व्यक्ति के लिए,[6] विश (प्रजा) के विशेषण रूप मे,[7] वण के विशेषण रूप म[8] तथा अथ म[9] भी प्रयुक्त हुआ है।

इसी प्रकार दस्यु शब्द भी वेद म आय के विलोम अथ मे[10] उत्तम कम हीन व्यक्ति के लिए[11] अज्ञानी, अव्रती, मानवीय व्यवहारशून्य व्यक्ति के लिए[12] मेघ अथ के लिए[13] अनास विशेषण के विशेष्य के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

---

१ ऋग्वेद ५ ३० ७
अत्रा दासस्य नमुचे ।
२ वही, ६ २६ ५
ऊवगिरेदास शम्बर हन ।
३ वही, ७ १६ २
दास यच्छुष्ण कुयवम
४ वही १० ८३ १
साह्याम दासमाय त्वया युजा।
५ वही, १० ८६ १६
विचिन्वन दासमायम् ।
६ वही १० २२ ८
अकर्मा दस्युरभि नो अम तुरन्यव्रतो अमानुष ।
त्व तस्या मित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥
७ वही, ६ २५ २—आर्या विशो वतारीर्दासी ।
८ वही २ १२ ४ दास वणमधर गुहाक ।
९ (क) वही ७ ८६ ७—अर दासो न मीलहुषे कराणि ।
(ख) वही, १ ९२ ८, दास प्रवग रयिमश्वबुध्यम।
१० वही, १ ५१ ८ वि जानीह्यायान य च दस्यव ।
११ वही, ७ ५ ६
त्व दस्यूराकसा अग्न आजे ।
१२ वही १० २२ ८
अकर्मा दस्युरभि ना अम तुर यव्रतो अमानुप ।
१३ वही, १ ५९ ६
वैश्वानरो दस्युमग्निजघ्वा अधूनो त काष्ठा अव शम्बर भेत ।

(३) दस्यु

वेद का 'दस्यु' शब्द विवादास्पद है। आर्यों की शत्रु किसी निकृष्ट हिंसक व बजर जाति से इसका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। 'अकमन' अर्थात 'कर्म न करने वाले' अदवयु अर्थात दिव्यता को न चाहन वाल, अब्रह्म' अर्थात वेद ज्ञान से रहित, 'अयज्वम' तथा 'अयज्यु अर्थात् 'यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से रहित'—आदि कई विशेषणो से दस्यु को अथवा दस्युओ को अलकृत किया गया है।[1]

इन्द्र को भी 'दस्युहत्य कहा गया है।[2] वृत्र' भी दस्युओ म से एक था। वेदो के अनुसार आय लोग देवो की सहायता प्राप्त करके दस्युओ को युद्ध मे जीतत थे। डा० सूयकान्त के मत मे दस्यु' शब्द अनिश्चितता मूलक है।[3]

कीथ तथा मैकडानल द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वदिक इण्डेक्स' के अनुसार आय लोग आदिम निवासियो को 'दस्यु' और दास कहत थे। ऋग्वेद मे दस्यु शब्द कुछ स्थानो पर मनुष्य से भिन्न लोगो के शत्रु के रूप मे[4] तथा कुछ अय स्थाना पर मनुष्य के शत्रु रूप मे आया है।[5]

वैदिक इण्डेक्स के अनुसार दस्यु शब्द सदिग्धार्थक है। जहा पर यह शब्द मनुष्य के शत्रु रूप मे आया है वहा उसका अथ आदिम निवासी है। दस्यु आर्यों के विरोधी रूप मे भी आते हैं। वे देवताओ की मदद से आर्यो द्वारा हराये भी गए थे।[6]

हे पुरुहूत ! बहुत यजमाना से बुलाए गए इन्द्र ! गमनशील वायुओ स युक्त होकर पृथ्वी मे वर्तमान दस्यु (=हानि पहुचाने वाले शत्रु) और शिम्यु (=वध करने वाले राक्षसादि अथवा शिम्यु नाम वाले) को आपने वज्र स मारा।[7]

हे इन्द्र ! आपने रज्जु रहित बन्धनागार म दभीति राजा के लिए दस्युओ को मारा।[8]

---

१ वैदिक कोश (डा० सूयकान्त), पृ० १६१
२ वही, पृ० १६२
३ वही, पृ० १६१
४ वही, १ ३४७, २ १३ ६
५ ऋग्वेद, १ ५१ ८, १ १० ३ ३ ४, १ ११७ २१, २ ११ १८ १६, ३ ३४ ६; ६ १८ ३, ७ ५ ६, १० ४६ ३।
६ दस्यु विवेचन, प० ३४
७ वही, १ १०० १८।
८ वही, २ १३ ६
Vedic Mythology, p 157

इन स्थलो मे यज्ञ म विघ्न करने वाला तथा दभीति नामक मनुष्य राजा का शत्रु दस्यु कहा गया है।

मैक्डानल के अनुसार 'दास' तथा 'दस्यु' दोनो समानार्थक हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ वैदिक माइथोलाजी' म इस पर प्रकाश डाला है।[1] दस्यु शब्द को उपक्षय अर्थ वाली दस' धातु मे भी निष्पन्न माना जाता है।[2] दस्युहना,' 'दस्युजूताय' 'दस्युहत्याय', दस्युहत्येषु', 'दस्युहन्तमम' आदि शब्द भी 'दस्यु शब्द से ही बनते हैं।[3] स्वामी दयानन्द ने अपने एक ग्रन्थ म[4] वैदिक मन्त्र[5] मे आए दस्युहा' शब्द का अथ दुष्ट पापी लोगो का हनन करने वाला (परमात्मा) किया है। एक अन्यम न म दस्युहन्तमम' शब्द का अथ 'डाकुओं का अतिशय मारने वाले योद्धा जन'[6] किया है।

श्री अरविन्द न दस्युओ का 'अन्धकार का पुत्र कहा है। आर्यों का तथा उन आर्यों का विजय दिलाने वाले इन्द्र का दस्युओ के साथ युद्ध का वणन है। यह आध्यात्मिक सघष तथा विजय का युद्ध है। यह युद्ध भौतिक व लूट मार का युद्ध नहीं है।

यद्यपि कुछ सन्दर्भो मे वे मानवीय शत्रु प्रतीत होते हैं। परन्तु अनेक स्थलों पर व आध्यात्मिक प्रकाश के दिव्य सत्य और दिव्य विचार के शत्रु ही हैं। पणियो से तथा वृत्र आदि स सम्बन्धित दस्यु दो मुख्य वर्गों मे विभक्त हैं। पणियो मे सम्बन्धित दस्यु गायों अर्थात मानव स्वभाव के आध्यात्मिक प्रकाश की रश्मियां तथा जला अर्थात मानव की दिव्य चेतनाओ को अवरुद्ध करते हैं। वृत्र आदि मे सम्बन्धित दस्यु मानव के अन्त करण म विद्यमान दिव्य प्रकाश को आच्छादित करने वाले हैं। ये जलधाराओं (अप) अर्थात दिव्य चेतना के प्रवाह के अवरोधक हैं। य दस्यु या पणि दिव्यमन शक्ति रूप इन्द्र क शब्दों क द्वारा जीते जाते हैं। दस्यु विजय के बाद अन्तर का अन्धकार दिव्य प्रकाश मे परिवर्तित हो जाता है। प्रकाश की शक्तियो से ऊर्ध्वारोहण का विजयगीत आय दस्यु युद्ध के रूप म वेदो म इतस्तत सवत्र दर्शनीय है।[7]

---

१ The Word dasa or its equivalent 'dasyu', is also used to designate atmospheric demons'

२ वैदिक कोश (डा० सूयकान्त), पृ० ३३७

३ दयानन्द वदिक कोश, पृ० ४५५

४ आर्याभिविनय १ ३४

५ ऋग्वेद १ १०० १२

६ वही ६ १६ १५

७ वदरहस्य पूर्वाद्ध, पृ० २६६ ६७

(२) अनार्य

अनार्य शब्द आर्य का ठीक विपरीत अर्थ प्रकट करने वाला है। आर्य का कर्म है यज्ञ, जो एक साथ एक युद्ध है, एक आरोहण है और एक यात्रा है। एक युद्ध है अन्धकार की शक्तियों के विरुद्ध एक आरोहण है पर्वत की उन उच्चतम चोटियों पर जो द्यावापृथिवी से परे स्व के अन्दर चली गयी है एक यात्रा है नदियों तथा समुद्र के परले पार की वस्तुओं की सुदूरतम असीमता के अन्दर[1] आर्य देवत्व के इच्छुक हैं। इसीलिए 'देवयु' कहलाए। आर्य यज्ञ द्वारा शब्द द्वारा तथा विचार द्वारा अपने भीतर देवत्व को बढाना चाहते हैं। दिव्य गुण अर्थात देव आर्य पर ऐश्वर्य की वर्षा करते हैं। आर्य यज्ञ में दिव्य वैदिक शब्द को प्राप्त करते हैं आर्य विचार को, विचारशील मन को तथा द्रष्टा के ज्ञान को धारण करने वाले धीर मनीषी व कवि हैं इसके ठीक विपरीत आचरण करने वाले ही अनार्य कहे गए हैं।

अनार्य, दास और दस्यु शब्दों का अन्तरिक्ष में विद्यमान दैत्यों के अर्थ में प्रमाण मिलता है। आर्य और अनार्य (दस्यु अथवा दास) दोनों के विरोध में इन्द्र से सहायता की प्रार्थना की गई है। इन्द्र आर्यों और अनार्यों (दस्युओं) के भेद की पहचान रखते हैं। इन्द्र युद्ध में भी आर्यों का पक्ष लेते हैं तथा अनार्यों से युद्ध करते हैं।[2]

'अनार्य' स्वयं में नकारात्मक भाव को द्योतित करने वाला है। जो आर्य नहीं वह अनार्य है।[3] अतः आर्य शब्द के तात्पर्य को हृदयङ्गम करना अनिवार्य हो जाता है।

'आर्य' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति

'ऋ गतौ' धातु से 'अचो यत्'[4] सूत्र द्वारा भाव कर्म अर्थ में यत् प्रत्यय प्राप्त

---

१ वेदरहस्य, पूर्वार्द्ध पृ० ३०८

२ ऋग्वेद, १०.३८.३

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता देव इन्द्रयुधयेचिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहा सन्तु शत्रवस्त्वया वयतान् वनुयाम सगमे॥

३ वही, १.५१.८

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।

वही, १०.८६.१६

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम्।

वही ६.१८.३

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।

वही, २.१२.१२

होने पर ऋहलोर्ण्यत् [1] इस अपवाद सूत्र से यत् के स्थान पर ण्यत् प्रत्यय करके 'आर्य' शब्द की सिद्धि होती है। इस आर्य शब्द का अर्थ है—गमनीय, प्रापणीय, अभिगमनीय व अभिगन्तव्य।

'अर्य स्वामिवैश्ययोः' [2] इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में अर्य पद की सिद्धि होती है। यह अर्य पद ईश्वर का वाचक भी कहा गया है। [3] इससे 'तस्यापत्यम्' [4] सूत्र द्वारा तद्धित अण् प्रत्यय करके भी आर्य शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—'अर्यस्य स्वामिनः (ईश्वरस्य) पुत्रः' अर्थात् स्वामी (ईश्वर) का पुत्र। [5] 'तस्येदम्' [6] सूत्र द्वारा अर्य पद से अण् प्रत्यय करके भी आर्य शब्द बनता है। इसका अर्थ है—'अर्यस्य स्वामिनः (ईश्वरस्य) वश्यस्य वा इदम्' अर्थात् स्वामी (ईश्वर) अथवा वैश्य का अपना स्वधन (एश्वर्य) आदि वेदों में कृत ण्यत् से निष्पन्न तथा तद्धित अण् से निष्पन्न दोनों प्रकार के आर्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। एक मन्त्र में बार्हस्पत्य भारद्वाज प्रार्थना करता है कि हे इन्द्र ! शत्रु सेनाओं को नष्ट करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में शत्रु के कोप को नष्ट कर। हमारी स्तुतियों से हे इन्द्र ! हमारा मुकाबला करने वाली सर्वत्र विद्यमान दस्युओं की सेनाओं का आर्य के लिए वध कर। [7]

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में भारद्वाज इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे इन्द्र ! शत्रुओं के नाश के लिए न नष्ट होने वाली, बड़ी निश्चित कल्याण करने वाली शक्ति हमें प्रदान करो। हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस शक्ति से माननीय दास तथा आर्य (=बलवान शत्रु) को हिंसित करते हैं। [8] एक अन्य मन्त्र में भारद्वाज ऋषि इन्द्र और अग्नि की स्तुति करते हुए कहता है कि हे सद् व्यवहारों के पालक

---

१ अष्टाध्यायी, ३ १ १२४

२ वही, ३ १ १०३

३ निघण्टु २ २२

४ अष्टाध्यायी ४ १ ९२

५ तुल०—निरुक्त, ६ २६
आर्य ईश्वर पुत्र।

६ अष्टाध्यायी, ४ ३ १२०

७ ऋग्वेद ६ २५ २
अभि स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशो व तारीर्दासी ॥

८ वही, ६ २२ १०
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥

इन्द्र! तथा अग्ने! आप दोनो दास (=कमजोर व उपक्षीण शत्रु) तथा आर्य (=बलवान शत्रु) इन दोनो का हनन करते हो। तुम्ही ने सब द्वेषियो का हनन किया है।[1]

इन मन्त्रो मे प्रथम मे तो आर्य पद का श्रेष्ठ अर्थ लिया गया है तथा शेष दो मन्त्रो मे आर्य पद का आक्रमण करने योग्य बलवान शत्रु अर्थ लिया गया है।

आर्य शब्द का श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए[2], इन्द्र के विशेषण के लिए[3] सोम के विशेषण के लिए[4], ज्योति के विशेषण के लिए[5] व्रत के विशेषण के लिए,[6] प्रजा के विशेषण के लिए[7] व वर्ण के विशेषण के लिए प्रयोग हुआ है। इस प्रकार ऋग्वेद मे आर्य शब्द विविध[8] अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है।

आर्यों के विरोधी शत्रु ही अनार्य कहलाए।

(४) अहि

अहि[9] शब्द व्याप्ति अर्थ वाचक 'अह' धातु से उणादि इन[10] प्रत्यय से निष्पन्न होता है।[11] मेघ के नामो मे अहि' शब्द को गिना है।[12] अह्रियमनात एति अन्तरिक्षे' कह कर अहि की व्याख्या की गई है तथा अहि' शब्द 'इ' धातु से भी निष्पन्न माना

---

१ ऋग्वेद, ६ ६० ६
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अपद्विष ।।

२ वही, १ १०३ ३, दस्यवे हेतिमार्य सहोवर्धया द्युम्नमिन्द्र।
वही, १ १०३ ८, यजमानमार्य प्रावत।
वही, १० ४९ ३, न यो रर आर्य नाम दस्यवे।

३ वही, ८ ५ ३४ ६ यथावश नयति दासमार्य।
वही, १० १३८ ३ विदद दासाय प्रतिमानमार्य।

४ वही, ९ ६३ ५, कृण्वन्तो विश्वमार्यम।

५ वही, १० ४३ ४ ज्योतिरार्यम।

६ वही, १० ६५ ११, आर्यव्रता विसृजन्त।

७ वही, ७ ३३ ७—तिस्र प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा।

८ वही, ३ ३४ ९
आर्य वर्ण म।

९ यजुर्वेद ५ ३३

१० उणादि सूत्र ४ ११२

११ यजुर्वेद भाष्य विवरण (प्रथम भाग), पृ० ४८९

१२ निघण्टु, १ १०

गया है।[1] 'अहि' का अर्थ सब विद्वानों ने व्यापनशील किया है। व्यापनशील मेघ, सूर्य, शत्रु आदि अर्थ में कई स्थलों पर प्राप्त होता है।[2] स्वामी जी ने 'आहन्ति इति अहिः मेघः' सर्वोत्तम निर्वचन किया है। आङ् उपसर्ग पूर्वक 'हन्' धातु से उणादि प्रत्यय[3] करके भी इसे सिद्ध किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैदिक मन्त्रों व देवताओं की विवेचना करते हुए श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि से ही अर्थ व अभिप्राय प्रस्तुत किया है। श्री अरविन्द के अनुसार इन्द्र प्राणमय चेतना की सीमितताओं से मुक्त मनःशक्ति है। वह दिव्य प्रकाश का प्रदाता है। महत् शक्ति के देवता हैं। इन्द्र वृत्रासुर संग्राम में शक्तिशाली जीवात्मा रूप इन्द्र पाप रूप वृत्र को नष्ट कर देता है।

---

१ निरुक्त, २ १७
२ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० १५५
३ उणादि सूत्र, ४ १३८

सप्तम अध्याय

उपसहार

प्रस्तुत ग्रन्थ यजुर्वेद-भाष्य मे 'इन्द्र' एव 'मरुत '' के प्रथम अध्याय मे स्वामी दयानन्द की दृष्टि मे वेद और वेदार्थ का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। भारत के पुनर्जागरण मे स्वामी दयानन्द का योगदान सर्वविदित है। स्वामी जी ने पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य मे अभिभूत भारतीय दृष्टि को आत्म निरीक्षण की प्रेरणा दी और भारतीय जनता के नराश्य भावयुक्त हृदयो म आत्मगौरव की भावना उत्पन्न की। स्वामी जी न 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है इस मान्यता की स्थापना की, और लौटो वेदो की ओर' का उद्घोष गुञ्जाया। 'वेत्ति चराचर जगत स जगदीश्वर', 'विदन्ति येन स ऋग्वेदादिवा इति वेद' (यजुर्वेद भाष्य २ २१) इस प्रकार स्वामी जी द्वारा 'वेद' शब्द का अर्थ 'चराचर को जानने वाला जगदीश्वर' या 'जिससे लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं वह ऋग्वेदादि' किया गया है। अन्तोदात्त वेद शब्द ग्रन्थ विशेष का वाचक है एवम् आद्युदात्त वेद शब्द ज्ञान का वाचक है। अपौरुषेय ज्ञान का अधिष्ठान होने के कारण चार मूल वैदिक सहिताओ को ही वेद माना गया है। वेदो की शाखाओ का मूल वेद के रूप मे स्वीकार नही कर सकते क्योकि इन शाखाओ का अविर्भाव प्रवचन भेद और पाठ भेद के आधार पर हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थ भी मूल वेद स्वीकार नही किए जा सकते क्योकि ब्राह्मण ग्रन्थो मे ब्रह्म अर्थात वेद का व्याख्यान किया गया है। यह व्याख्यान यज्ञ परक प्रतीकात्मक और सकतात्मक है।

स्वामी जी की दृष्टि से वेद केवल कर्म काण्ड के ग्रन्थ नही हैं। वेदो मे जीवन निर्माण की सभी शिक्षाए विद्यमान हैं। वेदो म मुख्य रूप से ब्रह्म या परमात्मा का प्रतिपादन है। वेद समस्त आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज्ञान के भण्डार हैं। वेदो म सत्याचरण रूप धर्म का उपदेश है। कृषि और शिल्प कला के निर्देश एवम आधुनिक ज्ञान विज्ञान के बीज भी वेदो मे विद्यमान हैं। व्यक्ति समाज और राष्ट्र के निर्माण मे उपयोगी सिद्ध होन वाली सभी विद्याओ का मूल वेदो मे है। स्वामी जी के अनुसार ऋग्वेद की शाकल सहिता, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि सहिता, सामवेद की कौथुमी सहिता और अथववेद की शौनक सहिता क्रमश वायु, आदित्य अङ्गिरा और अग्नि इन चार आर्ष ऋषियो पर प्रकट हुई। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धव वेद और अथववेद का स्थापत्य शास्त्र ये चार उपवेद हैं।

चारो वेदो के भिन्न भिन्न पद पाठ हैं इह प्रकृति प्रत्यय आदि की दृष्टि से वेदो का प्रथम व्याख्यान माना जा सकता है। इह पद पाठो के द्वारा निर्धारित प्रकृति-प्रत्यय विभाग को स्वीकार करना भाष्यकारो के लिए पूर्णरूपेण अनिवार्य नही। वेदो के अनुक्रमणी ग्रथ भी उपलब्ध हैं। इनमे मन्त्रो के ऋषि देवता, छन्द आदि का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद म देवताओ की स्तुति की गई है। गद्यात्मक मन्त्रो का सकलन यजुर्वेद मे मिलता है। जिन मन्त्रो मे अक्षरो का नियत रूप नही है व यजु कहलाते हैं। ऋक मन्त्रो क ऊपर गाय जाने वाले गान ही गेय और गानात्मक रूप होने के कारण साम कह गए।

ब्राह्मण ग्रथो मे ऋग्वेद म अग्नि यजुर्वेद म वायु तथा सामवेद म आदित्य ही प्रधान देवता मान गए हैं। मन्त्रो क ऋषियो का नाम तो उनके द्वारा मन्त्रो का दशन किए जाने क कारण प्रसिद्ध हुआ। किन्तु मन्त्र का देवता निर्धारण करत हुए मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को ही मुख्य आधार माना गया है।

जिन मन्त्रो म देवता अनादिष्ट है उनमे प्रकरण के अनुसार देवता का निणय किया जाता है। वेद मन्त्रो म परमेश्वर ही परम उपास्य देव क रूप म स्वीकार किए गऐ हैं। स्कन्द दुग हरिस्वामी उवट, भट्ट भास्कर आनन्द-तीथ जयतीथ, राघवेन्द्र यति शत्रुघ्न वेदपाल इत्यादि वेद भाष्यकारो के मत मे आध्यात्मिक, आधिदविक एवम आधियाज्ञिक, तीन प्रकार से वेदार्थ किया जाता है। वेद का प्रत्येक शब्द यौगिक अथवा योग रूढि है। वेद मे प्रतीयमान वैयक्तिक नाम, ऋषि नाम, स्थान नाम, एतिहासिक नाम नही अपितु उन विशेषताओ का बतलाने वाले हैं। वैदिक शब्दो के सम्बन्ध म यौगिकता का सिद्धान्त मानने पर वेदो म अनित्य इतिहास का स्वीकार करना असगत लगता है। धातुओ की अनेकार्थता, संस्कृत व्याकरण के नियमो का व्यत्यय मन्त्रार्थ की त्रिविध प्रक्रिया एव स्वामी दयानन्द द्वारा स्वीकृत मन्त्रार्थ की द्विविध प्रक्रिया के सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखत हुए वेदार्थ को समझना ही उचित प्रतीत होता है। आचार्य शौनक, हरिस्वामी उवट गौरधर, रावण व महीधर ने मन्त्रो के यज्ञपरक अथ ही किए। स्वामी जी के द्वारा वेद के शब्दो को यौगिक अथवा योगरूढि मान कर पारमार्थिक व व्यावहारिक अथ प्रस्तुत किए गए।

ऋग्वेद शाकल संहिता, शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता (माध्यन्दिन) सामवेद कौथुम सहिता वा अथववेद शौनक सहिता ये ईश्वर कृत मानी जाती हैं। स्कन्द, दुग हरिस्वामी उवट, भट्ट भास्कर, आनन्दतीथ, जयतीथ राघवेन्द्रयति, शत्रुघ्न, वेदपाल वेद भाष्यकारो क मत म आध्यात्मिक, आधिदैविक एव आधियाज्ञिक, तीन प्रकार से वेदार्थ किया जाता है। स्वामी दयानन्द ने पारमार्थिक और व्यावहारिक म अर्थ प्रस्तुत किया है। सभी उपलब्ध भाष्यो म दयानन्द का भाष्य ही ऐसा भाष्य है जिसके आधार पर वेद सर्वोपयोगी एव मानव समाज की उन्नति की प्रेरणा देने वाला सिद्ध हो सकता है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन सहिता को स्वामी दयानन्द ने मूल यजुर्वेद

स्वीकार किया है। 'यजुष' शब्द 'यज' धातु से उसि' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है। 'यजुष' यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र हैं। पाणिनि मुनि के अनुसार 'यजु' धातु देव-पूजा, सङ्गति करण एवं दान इन त्रिविध अर्थ में प्रयुक्त होती है। स्वामी जी के मत के अनुसार 'यजन्ति येन मनुष्या ईश्वर धार्मिकान विदुष, पूजयन्ति शिल्प विद्या सङ्गति-करण च कुर्वन्ति शुभ विद्यादानन च कुर्वन्ति, तद यजु, इस प्रकार त्रिविध अर्थ की सङ्गति है।

द्वितीय अध्याय मे 'इन्द्र' एव मरुत' का व्याकरणिक विवेचन ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि मे इनका अभिप्राय है, इन्द्र एव मरुत् का स्वरूप वर्णित है। आचार्य पाणिनि मुनि द्वारा 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रमाला' (उणादि सूत्र, २ २६) सूत्र म इन्द्र' शब्द को निपातित किया गया है। इदि परमश्वर्ये' धातु से कर्त्ता मे रक प्रत्यय और नुमागम करने स इन्द्र शब्द बनता है। इन्दति परमश्वयवान भवति इति इन्द्र' अर्थात जो सर्वोच्च ऐश्वय वाला हो, वह इन्द्र है। शासक होना भी ऐश्वय का लक्षण है। अत 'इन्द्र शासक भी है। जगत का शासक ब्रह्म, और मण्डल का शासक सूय वायु विद्युत, पृथ्वी पर राजा सम्राट राष्ट्राध्यक्ष अथवा सेनापति तथा देह मे जीवात्मा, प्राण और मन वैदिक वाङ्मय म ये सब इन्द्र पद वाच्य हैं। निरुक्त-कार यास्काचाय ने इन्द्र पद का निवचन निम्न प्रकार किया है।

'इन्द्र इरा दृणाति इति वा इरा ददाति वा इरा दधाति इति वा इरा दारयते।'

इन्द्र का इन्द्र नाम इसलिए है कि वह 'इरा व्रीह्यादि अन्न क बीज को क्लिन्न कर अङ्कुरावस्था मे बदल देता है। 'इरा अन्न को प्रदान करता है। अन्न को धारण करता है।

'मृग्रोरुति' (उणादि सूत्र १ ४) इस सूत्र द्वारा 'मृङ प्राणत्याग (तुदादि) धातु मे उति प्रत्यय करने पर 'मरुत' शब्द बनता है। इसमे गमनागमन क्रियावान् वायु का ग्रहण किया जाता है। मरुत ऋत्विङ नाम' (निघण्टु, ३ १८) 'मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनो वा महद्द्रवन्तीति वा'। निघण्टु ११ १४)।

मरुत (अ मित राविण) अपरिमित शब्द करने वाले, (अ मित-रोचन) अपरि-मित प्रकाश देने वाले, (मरुत रवन्ति) बडा शब्द करते हैं वे मरुत हैं।

इन्द्र शब्द का अध्यात्मपरक अर्थ जीवात्मा व परमात्मा है। अन्त करण और प्राण भी इन्द्र पद वाच्य है। अधिदैव अर्थ मे इन्द्र वायु, विद्युत तथा सूय का वाचक है। अधिभूत अर्थ मे राष्ट्र के सर्वोच्च शासक, राजा या सेनाध्यक्ष के रूप मे इन्द्र पद प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र वैदिक आर्यों का जातीय देवता है।

तृतीय अध्याय मे पाश्चात्य एव तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानो को अभिमत 'इन्द्र' एव 'मरुत का स्थूलस्वरूप वर्णित है। पाश्चात्य वैदिक विद्वानो मे कोलब्रुक, विल्सन रुडाल्फ राथ मैक्समूलर, ग्रिफिथ, ग्रासमान, ह्विटनी लुडविग, पिशल गेल्डनर

मैक्डानल, ओल्डन बर्ग, ब्लूमफील्ड, विन्टरनित्स और कीथ ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने इन्द्र एवं मरुत का स्थूल स्वरूप ही प्रस्तुत किया है। इनसे प्रभावित होकर एतद्देशीय विद्वान् राजेन्द्रलाल मित्र आदि ने उन्हीं की बातों का समर्थन किया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' का पारमार्थिक स्वरूप वर्णित है। दयानन्द सभी वैदिक देवता वाचक शब्दों को पारमार्थिक और व्यावहारिक तत्त्वों का बोधक मानते हैं। मन्त्र त्रिविध अर्थों के वाचक हैं जिनमें से आधियाज्ञिक अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मीमांसा, श्रौतसूत्र आदि में उल्लिखित हैं। महीधर उव्वट सायण आदि वेद के व्याख्याकार याज्ञिक अर्थ ही प्रस्तुत करते हैं। स्वामीजी ने मन्त्रों का पारमार्थिक एवं व्यावहारिक अर्थ किया है। पारमार्थिक शब्द से परम अर्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति अथवा परमतत्त्व रूप परमात्मा का जीवन में सतत प्रत्यक्षीकरण अभिप्रेत है।

पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं मरुत' का व्यावहारिक स्वरूप वर्णित किया गया है। व्यावहारिक शब्द से व्यवहार सम्बन्धित मानवोपयोगी संसार की सुव्यवस्था के लिए राजा प्रजा विद्वान् योगी गृहस्थ आदि के कर्त्तव्य व विविध भौतिक विद्याओं के निर्देश से युक्त वेद मन्त्रार्थ अभीष्ट है। अधिदैव में इन्द्र, वायु, विद्युत तथा सूर्य हैं। अधिभूत में इन्द्र राष्ट्र में सर्वोच्च शासक, राजा या सेना अध्यक्ष हैं।

इन्द्र एवं मरुत शब्द के जितने भी व्यावहारिक अर्थ स्वामी जी ने किए उनका मूल आधार वैदिक शब्दों की यौगिकता का सिद्धान्त ही है। इस व्यावहारिक मन्त्रार्थ द्वारा वेद व्याख्या को नई दिशा व नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। इस पुस्तक के षष्ठ अध्याय में इन्द्र एवं मरुत से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए श्री अरविन्द के अनुसार इन्द्र एवं मरुत का अभिप्राय वृत्र वध के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक संगति एवं असुर दस्यु अनार्य, अहि, इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन तथा इस प्रसंग में इन्द्र शब्द के अभिप्राय की संगति को प्रस्तुत किया गया है। वेद रहस्य नामक ग्रन्थ में आध्यात्मिक दृष्टि से ही श्री अरविन्द ने मन्त्रार्थ का व्याख्यान किया है। इन्होंने इन्द्र को दिव्य प्रकाश का प्रदाता कहा है। मरुत भी तात्त्विक दृष्टि से शक्ति के देवता हैं। मरुतों की शक्तियाँ मन के अन्दर ही सफल होती हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से वृत्र शब्द का अर्थ भी आत्मतत्त्व पर अविद्या का आवरण डाल देने वाला पाप भावना किया गया है। वेदों में वृत्र को इन्द्र के शत्रु रूप में प्रस्तुत किया गया है। वृत्र मेघ एवं अन्धकार का मूर्त रूप भी माना जाता है। इन्द्र सूर्य है। वह अपनी किरणों से वज्र से वृत्र अर्थात् मेघ को मारने के कारण वृत्रहा भी कहा गया है।

'वृत्र हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा' (ऋग्वेद, ८ ६ ३१)

यह एक आलंकारिक कथा है जो इन्द्र (प्रकाश अथवा सत्य) और वृत्र (अंधकार अथवा असत्य) के संग्राम में इन्द्र (प्रकाश अथवा सत्य) की विजय का संदेश देती है।

सप्तम अध्याय उपसंहारात्मक है।

परिशिष्ट में (क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण,

(ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण और

(ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द की वेद भाष्य शैली अपनी लोक व्यवहारोपयोगिता के कारण अधिक रुचिकर एवं लाभकारी है। वैदिक शब्दों का अर्थ करते हुए मुख्यतः नरुक्त और यौगिक प्रक्रिया का अवलम्बन किया गया है। सार रूप में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में इन्द्र पद परमेश्वर, जीवात्मा, सूर्य, वायु, विद्युत, योगी, विद्वान, राजा, सेनापति, ऐश्वर्यवान तथा ऐश्वर्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार मरुत भी वायु, विद्वान व ऋत्विक का बोधक है।

सामान्य रूप से स्वामी दयानन्द कृत यजुर्वेद-भाष्य में अग्नि,, इन्द्र सोम, वरुण आदि विविध देवताओं का प्रसंग आने पर तत् तत देवता पर्याय तत तत प्रकरणानुसार मन्त्रार्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र एवं मरुत विषयक स्तुति भी उपलब्ध होती है। परन्तु कुछ गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये देवता ब्रह्माण्ड (बहिर्जगत) और अन्तर्जगत में स्थित विविध पदार्थ हैं। वेद मन्त्रों में इनके गुण कर्म स्वभावों का वर्णन किया गया है। देवता किन्हीं विग्रहवती शरीरधारी चेतन व्यक्तियों का नाम नहीं है। न ही वे आकाश में रहकर अपना कोई काम करती है। कुछ विद्वानों के मत में वेदों के देवता के विषय में सर्वानुक्रमणी तथा बृहद्देवतादि ही परम प्रमाण हैं अर्थात् उनसे भिन्न देवता मानना व लिखना अशुद्ध है। वास्तव में 'या तेनोच्यते सा देवता' यह वचन तथा 'तेन वाक्येन यत प्रतिपाद्य वस्तु सा देवता' यह पद गुरु शिष्य का व्याख्यान सिद्ध करता है कि मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का नाम देवता है। जिस कामना वाला ऋषि मैं अर्थ का स्वामी बनूं इस प्रकार चाहता हुआ जिस देवता की स्तुति करता है, उस देवता वाला वह मन्त्र कहाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शरीरधारी देवताओं का तो वेद में कोई स्थान ही नहीं। मन्त्र सूक्तों में आए हुए देवतावाची शब्द परमेश्वर बोधक है।

यजुर्वेद और यजुर्वेद से सम्बन्धित आर्ष वाङ्मय में इन्द्र और मरुत जिस जिस रूप में वर्णित हैं उसका एक समीक्षात्मक अध्ययन पूर्व अध्यायों में किया गया है तथा स्वामी दयानन्द की दृष्टि से इन्द्र और मरुत का पारमार्थिक व व्यावहारिक स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद में प्रयुक्त इन्द्र शब्द की व्याकरण अनुसार की गई व्युत्पत्ति और निरुक्त शास्त्र अनुसार की गई निरुक्ति से यह सिद्ध हो जाता है कि यजुर्वेद में इन्द्र शब्द रूढि अर्थ का वाचक नहीं। स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य के अनुसार यह एक यौगिक और योगरूढि शब्द है। स्वामी दयानन्द का भाष्य स्पष्ट रूप में अग्नि मरुत, वायु सूर्य इन्द्र सविता आदि नामों से परमात्मा का सप्रमाण ग्रहण करता है। 'इन्द्रेण वायुना' में 'इन्द्र' को विशेष्य माना है। मूलवेद के इस उदाहरण द्वारा स्वामी दयानन्द ने विशेष्य विशेषण भाव की प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया है।

ऐतरेय शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों की प्रतीकात्मक व्याख्याएं भी इन्द्रादि शब्दों की बहुअर्थकता को सिद्ध करती हैं। ये किसी व्यक्ति विशेष के वाचक नहीं हैं। वैदिक शब्दों के यौगिक प्रक्रिया के आधार पर अर्थ होते हैं। योरुपीयन स्कालर और उनके अनुगामी बहुत से भारतीय विद्वान भी यह मानते हैं कि 'इन्द्र', 'अङ्गिरा' और 'कण्व' आदि व्यक्ति विशेषों के नाम हैं जो कि वेदों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। किन्तु विवेचन करने से पता चलता है कि ये विशेषणवाची शब्द हैं। व्यक्ति विशेष के आगे आतिशायिक प्रत्यय 'तर' और 'तम' नहीं आ सकते। 'इदि परमैश्वर्य' धातु से इन्द्र शब्द की निष्पत्ति होती है। इसमें परमैश्वर्य अर्थ अन्तर्निहित है। इससे सामर्थ्यवत्ता, स्वामित्व और धनवैभव के आधिक्य का बोध होता है। सर्वगत सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप इन्द्र अद्वितीय और सबसे महान और सबका कर्त्ता धर्त्ता संहर्त्ता होने से सब मनुष्यों के द्वारा ज्ञेय तथा उपास्य है। जीवात्मा का नाम भी इन्द्र है। इसी कारण चक्षु, श्रोत्र वाक् कर, चरणादि करणों को इन्द्रिय कहना सार्थक प्रतीत होता है। परमैश्वर्य से युक्त होने के कारण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वगत आकाशवत् व्यापक ब्रह्म इन्द्र है। इस शरीर में जीवात्मा का राज्य है वही सभी इन्द्रियों का स्वामी है। इसीलिए शरीर में जीवात्मा ही इन्द्र पद वाच्य है। इसी प्रकार गृह ग्राम नगर जनपद, राज्य, राष्ट्र और भूमण्डल में क्रमश गृहपति ग्रामणी, नगराधिपति जनपदाधिप, राष्ट्राधिप, और भूमण्डल पति ही स्वस्वक्षेत्र में सर्वोच्च शक्तिसम्पन्न हैं। अतएव वे इन्द्रपद वाच्य हैं।

स्वामी दयानन्द ने पारमार्थिक दृष्टि से इन्द्र के परमात्मा व जीवात्मा अर्थ किए हैं। व्यावहारिक दृष्टि से योगी, राजा सम्राट् सेनापति सभापति, विद्वान, अध्यापक उपदेशक शूरवीर ऐश्वर्यशाली पुरुष सूर्य, विद्युत व वायु आदि अर्थ किए गए हैं। अन्य वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामी वेंकटमाधव मुद्गल और माधव इन्द्र का अर्थ करते हुए याज्ञिक प्रक्रिया का ही अनुगमन करते हैं। इनकी याज्ञिक दृष्टि में इन्द्र

शरीरधारी दिव्य पुरुष और स्वर्गलोक का राजा है।[1] वृत्रहन्ता अर्थात वृत्र को मारने वाला यह विशेषण इन्द्र के लिए दिया गया है। इन्द्र के द्वारा वृत्र वध प्रसग वैदिक आख्यान के रूप म प्रसिद्ध है। अग्नि, बृहस्पति और सोम देव भी वृत्र हन्ता के रूप मे बतलाए गए हैं किन्तु इन्द्र सर्वाधिक मारने वाला है।[2] आधिभौतिक दृष्टि से वृत्र दुष्ट है तथा हिंसक प्राणी है। क्षात्रबल से सम्पन्न पुरुष इन्द्र ही इसे विनष्ट कर सकता है। आधिदैविक दृष्टि मे मेघ ही वृत्र का रूप है। सूर्य या वायुयुक्त विद्युत रूप इन्द्र ही उसको नष्ट करने वाला है। आध्यात्मिक दृष्टि स चित्त की पाप सयुक्त दुष्ट वासनाए ही वृत्र पद वाच्य हैं। सशक्त जीवात्मा ही इन्द्रियो को सन्मार्ग पर ला सकता है। पाप रूप वृत्र को सशक्त जीवात्मा नष्ट कर सकता है। यजुर्वेद म इन्द्र की बल, पराक्रम व धनैश्वर्य सम्पन्नता सम्बन्धी विशेषताओ का उल्लेख है। साथ ही इन्द्र मरुत के सखा, वृष्टि कारक शत्रुवधक, प्रमाद रहित, धनदाता, यजमान के रक्षक तथा वज्रधारक के रूप मे उल्लिखित है। युद्ध मे लडने हेतु शक्ति प्राप्त करने के लिए इन्द्र सोमपान करते हैं। पर्जन्य, विशौजा, जयन्त, गोत्रभिद आदि अनेक विशेषणो से इन्द्र का उल्लेख किया गया है। वेदो म वर्णित इन्द्र एक व्यक्ति विशेष नही माना जा सकता। वैदिक शब्द यौगिक हैं। यौगिक शब्दो की यह विशेषता होती है कि व एक या अनेक धातुओ से निष्पन्न किए जा सकते हैं। निरुक्त प्रक्रियानुसार वैदिक शब्दो का निवचन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। धातु भी अनेकार्थक होते हैं। अत वेदो मे शब्द रूढि अर्थ के वाचक नही। इसी कारण परम ऐश्वर्य सम्पन्न होने से परमात्मा, जीवात्मा, वायु, विद्युत सूर्य, यजमान, राजा, सम्राट, शूरवीर आदि को वेद म इन्द्र पद मे अभिव्यक्त किया गया है। इन्द्र को अन्तरिक्ष स्थानी देवता माना जाता है। यास्क कृत निरुक्त, शौनक कृत बृहद्देवता व कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी के अनुसार अन्तरिक्ष स्थानीय देवता इन्द्र का सम्बन्ध त्रिष्टुप छन्द से है। त्रिष्टुप छन्द से युक्त म त्र गायत्री मन्त्र से लम्बे होते हैं इसमे अधिक देरी से आहुति डाली जाती है। परमाणु सूक्ष्म होते हैं। वायु उन्हे अधिक ऊपर ले जाती है। विभिन्न छन्दो का वायुमण्डल म विशिष्ट प्रभाव पडता है। आधुनिक ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से इसका सूक्ष्मतुलनात्मक अनुसधान अपेक्षित है।

---

१ (क) ऋग्वेदभाष्य (उदगीथ), १० ३२ ८।

महाभाष्ययोगादिन्द्रो यद यद रूप कामयते तद भवति।

(ख) ऋग्भाष्य (सायण), ८ १२ १६।

इन्द्रो बहुषु प्रदेशेषु युगपत प्रवृत्तेषु यागेषु तत्र तत्र हवि स्वीकरणाय बहूनि शरीराण्याददान स्वयमेकोऽप्यनेक सस्तत्र तत्र सनिधत्ते ॥

२ ऋग्वेद, ६ १६ ३४ १ १३ ८, १० २६ ६, ६ ३७ ५।

वैदिक ग्रंथो मे अग्नि, इन्द्र, सूय आदि देवताओं का ऋतु, सवन एवं स्तोम के साथ सम्बन्ध किसी सूक्ष्म साम्य के आधार पर ही किया गया है। यह भी शोध का विषय है।[1]

इन्द्र परमेश्वर का नाम है। वेद मन्त्रो मे इन्द्र के परमात्मपरक अर्थ वाले अनेक पद प्रयुक्त हुए हैं। वेद मे आए इन्द्र के विशेषणो को दृष्टिगत रखते हुए इन्द्र का परमेश्वर अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

वह अनून' अर्थात् किसी स्थान पर न्यून नही सब स्थानो पर एक जैसा भरा है सर्वव्यापक है। दिविक्षा द्युक्ष' अर्थात् द्युलोक मे आकाश मे रहने वाला है। स्वपति अर्थात द्युलोक अथवा आकाश का स्वामी है। विश्व तस्पृथु अर्थात् विश्व के चारो ओर भरपूर विश्व से भी अधिक व्यापक है। अन्तरिक्षप्रा' अन्तरिक्ष मे बीच के अवकाश म परिपूर्ण होकर रहने वाला है। विभु' अर्थात व्यापक है। 'विश्वभू' अथात विश्व म भरपूर व विश्व भर म रहने वाला है। 'दिविम्मश अर्थात् आकाश मे व्यापक ये शब्द इन्द्र की विश्वव्यापकता को बताते हैं। अत सवव्यापक परमेश्वर ही इन्द्र है।

विश्वकर्मा' अर्थात सम्पूण विश्व की रचना करने वाला लोककृत अर्थात सब सूर्यादि लोको का निर्माण करने वाला, 'विश्वमना' अर्थात विश्व जितने व्यापक मन वाला विश्ववेदा अर्थात विश्व को यथावत जानने वाला भी इन्द्र है। विश्व की रचना करने वाला और विश्व को जानने वाला इन्द्र ही परमेश्वर है।

'विश्वरूप अथात विश्व ही जिसका रूप है विश्व मे जो कुछ भी विद्यमान वस्तु है वह सब इन्द्र का ही रूप है। नाना रूप धारण करके इन्द्र ही सवत्र विराजमान है। विश्वदेव अर्थात् सब देव जिसके अश हैं ऐसा इन्द्र है। सूय, चन्द्र, नक्षत्र आदि सब देवता जिसके शरीर के अग प्रत्यग हैं। यह विश्वरूप परमेश्वर का ही वणन है। श्रीमदभगवद्गीता का एकादश अध्याय श्री भगवान के विश्वरूप दशन कराने वाला है। अत यह विश्वरूप इन्द्र का ही है।

स्वरोचि अर्थात उसका अपना निज तेज है वह किसी दूसरे के तेज से तेजस्वी नही बना है वह अपने तेज से ही सदा प्रकाशित होता है।

शुक्ल यजुर्वेद मे मरुतो के सम्बन्ध मे पृश्नि' अर्थात माता एवं 'पृषती' अर्थात घोडी का उल्लेख मिलता है। उन्ह घातक होने के कारण प्रशासित कहा गया है। इन्द्र भी मरुतों का सखा है। मरुतो के साथ आकर सामपान करने की प्रार्थना भी इन्द्र से की गई है। मरुत इन्द्र का अनुगमन करते हैं।

ये मरुत् परस्पर (आपस मे) समान भाई हैं। अज्येष्ठास' हैं अर्थात न इनमे कोई बडा है (अमध्यमास) अर्थात न इनमे कोई मध्यम है और (अकनिष्ठास) अर्थात्

1 वेदवाणी (वैदिक वृष्टि विज्ञान), माच, १९७२, पृ० २०

न इनमें कोई कनिष्ठ (छोटा) है। अमध्यमा' अर्थात इनमें कोई नीच भी नहीं है। 'ज्येष्ठास' अर्थात् गुणों में ये श्रेष्ठ हैं और 'वृद्धा' अर्थात् गुणों में ये बड़े भी हैं। 'अनमता' अर्थात किसी के सामने य नमते भी नहीं। 'सुजातस' अर्थात कुलीन हैं और 'भ्रातर' अर्थात परस्पर भाई भाई हैं। 'नृषाच' अर्थात् मरुत जनता की सेवा करने वाले हैं। 'नर वीरा' अर्थात ये नेता व वीर हैं। त्रातार अर्थात जनता की रक्षा करने वाले हैं। 'मानुषास' व 'विश्वकृष्ट्य' अर्थात मनुष्य हैं व सब मानव ही मरुत हैं। अद्वेष' अर्थात् किसी से द्वेष न करने वाले हैं 'अमवन्त' अर्थात बलवान हैं। ये 'घोरवर्पस' अर्थात बड़े शरीर वाले हैं। पूतदक्षस' अर्थात पवित्र कार्यों में अपने बल को अर्पित करने वाले हैं।

मरुतों का स्वरूप अध्यात्म में प्राण है अधिदैवत में वायु तथा अधिभूत में मानवों में वीर है।

वेद में उल्लिखित देवताओं का सूक्ष्म अध्ययन व विश्लेषण एक दीर्घ व परिश्रम साध्य कार्य है। इन्द्र विषयक एवं मरुत विषयक प्रमुख बातों का इस पुस्तक में समावेश कर दिया गया है। स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य को मूल आधार बना कर इन्द्र व मरुत् के पारमार्थिक व व्यावहारिक स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है। यह सम्भव है कि कतिपय पहलुओं का विस्तृत विवेचन न हुआ हो। नवीन शोधार्थी उन पर आगे विचार कर सकेंगे। इन्द्र व मरुत देवता के सम्बन्ध में व्यक्ति-विशेष की धारणा इस ग्रन्थ के आधार पर पूर्णरूपेण निरस्त हो जाती है। वेद एक उदात्त, महनीय, ज्ञानमय और अति गम्भीर शब्द राशि है। विभिन्न विद्वान विभिन्न दृष्टियों से वेद-मन्त्रों व वेद शब्दों का व्याख्यान करते आए हैं। ऋषि तुल्य वेदाङ्गविद् विद्वानों की दृष्टि वेदों के सूक्ष्मार्थ समझ सकती है अन्य अल्पमति व्यक्ति इसके सर्वथा अनाश हैं।

परिशिष्ट

(क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

(१) परमात्मा अर्थ वाले मन्त्र

क्रम संख्या	अध्याय मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
१	२ १०	इन्द्र	परमेश्वर
२	३ ३४	इन्द्र !	सुख प्रदेश्वर
३	३ ५२	इन्द्र !	जगदीश्वर
४	६ २	इन्द्राय	जगदीश्वर के लिए
५	६ ३	इन्द्राय	परमेश्वर के लिए
६	१७ ६१	इन्द्रम	परमात्मा
७	१७ ६३	इन्द्र	पालन करने वाला (ईश्वर)
८	२० ३०	इन्द्राय	ईश्वर के लिए
९	२८ २१	इन्द्रेण	ईश्वर के साथ
१०	३३ २३	इन्द्रस्य	परमेश्वर का
११	३३ २४	इन्द्र	परमात्मा का
१२	३६ ८	इन्द्र	विद्युत तुल्य ईश्वर
१३	३६ २६	इन्द्र !	विद्युत तुल्य ईश्वर !

(२) जीवात्मा अथवा जीव अर्थ वाले मन्त्र

क्रम संख्या	अध्याय मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
१	१६ ७६	इन्द्रस्य	जीव का
२	२१ ५	इन्द्राग्निभ्याम	जीव व अग्नि के लिए
३	२८ ८	इन्द्रपत्नी	जीव की पत्नी (के समान वाणी)
४	२८ ६	इन्द्राय	जीव के लिए
५	२६ १८	इन्द्रम्	सूर्य के समान जीव को

क्रम सख्या	अध्याय मत्र सख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
६	२घ २६	इद्रम	जीव का
७	२८ २८	इद्रम्	जीव को
८	२८ ३३	इद्रम्	जीव को
९	२८ ३५	इद्रे	जीव को
१०	२८ ३६	इद्रे	जीव म
११	२८ ३७	इद्रम्	जीव को
१२	२८ ३९	इद्रम्	जीव को
१३	२८ ४०	इद्रे	जीव को
१४	३२ १३	इद्रस्य	जीव को

(ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे 'इद्र' देवता वाले जिन मन्त्रों को व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

क्रम सख्या	अध्याय-मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१	१ १३	इद्र	सूय लोक
२	२ २२	इद्र	सूय लोक
३,	३ ५१	इद्र !	सभापते ।
४	६ ३५	इद्रा ।	परमैश्वर्यान्वित सभापते ।
५	७,८	इद्रवायू	प्राण व सूर्य के समान योग के उपदेष्टा व अभ्यास करन वाले
		इद्रवायुभ्याम्	बिजली और प्राणवायु के समान योग वृद्धि और समाधि, चढाने और उतारन की शक्तियो से
६,	७ ३९	इद्राग्नी	सूय व अग्नि के समान प्रकाशमान सभापति व सभासद
७	८ ४४	इद्र ।	सेनापत ।
		इद्राय	एश्वय दन वाले दस युद्ध के लिए
८	८ ५५	इद्र	विद्युत।
९	९ २२	इद्र	सभापति राजन्

क्रम संख्या	अध्याय-मंत्र संख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१०	१२ ५६	इन्द्रम	परमैश्वर्य को
११	१४ ११	इन्द्राग्नी	बिजली और सूर्य के समान वर्तमान स्त्री पुरुषो ।
१२	१५ ६१	इन्द्रम	परमैश्वर्ययुक्त सभेश
१३	१७ ३३	इन्द्र	शत्रुओं का विदारक सेनेश
१४	१७ ३४	इन्द्रेण	परम ऐश्वर्य का उत्पन्न करने वाले सेनापति के साथ
१५	१७ ३५	इन्द्र	शत्रुओं को मारने वाला सेनापति
१६	१७ ३७	इन्द्र	युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति
१७	१७ ३८	इन्द्रम	शत्रु दल विदारक सेनापति को ।
१८	१७ ३९	इन्द्र	सेनेश
१९	१७ ४०	इन्द्र	उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति
२०	१७ ४१	इन्द्रस्य	सेनापति के
२१	१७ ४३	इन्द्र	ऐश्वर्य कारक सेनेश
२२	१७ ५१	इन्द्र	सुखों को धारण करने वाले सेनापति
२३	१७ ६४	इन्द्राग्नी	बिजुली और आग के समान दो सेनापति
२४	१८ ६८	इन्द्र	परमऐश्वर्य युक्त सेनेश
२५	१८ ६९	इन्द्र	शत्रु विदारक सेनेश
		इन्द्र	सभेश
२६	१८ ७०	इन्द्र	सेनेश
२७	१८ ७१	इन्द्र	सेनाध्यक्ष
२८	१९ ६	इन्द्राय	शत्रुविदारण के लिए
२९	१९ ४२	इन्द्रम्	परमैश्वर्ययुक्त जन का
३०	१९ ३३	इन्द्रम्	ऐश्वर्ययुक्त सभा सेनेश को

क्रम सख्या	अध्याय मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
३१	१६ ७१	इन्द्र !	सूय के समान वतमान सनश
३२	१६ ६१	इन्द्रस्य	परमैश्वय का
३३	२० २६	इन्द्र	सुख की इच्छा करने वाले विद्या और ऐश्वय स युक्त जन !
३४	२० ३१	इन्द्राय	परमैश्वयवान् के लिए
३५	२० ३६	इन्द्र	सूय
३६	२० ३६	इन्द्र	जलो का धारण कर्त्ता सूय
३७	२० ४०	इन्द्रम	परमैश्वय वाले को
३८	२० ४७	इन्द्र	परमैश्वय को धारण करन वाला
३६	२० ४८	इन्द्र	शत्रु विदारक राजा
४०	२० ४६	इन्द्र	ऐश्वय प्रद सेनाधीश
४१	२० ५०	इन्द्रम्	दुष्टो का नाश करने वाले को
४२	२० ५१	इन्द्र	ऐश्वय का बढान वाला राजा
४३	२० ५२	इन्द्र	पिता के समान वतमान सभा का अध्यक्ष
४४	२० ५३	इन्द्र !	उत्तम ऐश्वय के बढाने वाले सेनापत !
४५	२० ५४	इन्द्रम्	शत्रु को मारने वाले को
४६	२० ७०	इन्द्रे	एश्वय मे
४७	२० ८०	इन्द्र	सभापते !
४८	२० ८८	इन्द्र !	विद्या और ऐश्वय से युक्त
४६	२० ८६	इन्द्र !	विद्या और ऐश्वय के बढान वाले
५०	२३ ७	इन्द्रस्य	विद्युत का
५१	२५ ३	इन्द्रम्	ऐश्वय
५२	२५ ८	इन्द्रस्य	विद्युत का
५३	२६ ४	इन्द्र	विद्वन
		इन्द्राय	ऐश्वर्याय

क्रम सख्या	अध्याय-मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
५४	२६ १०	इन्द्र	परमश्वय युक्त राजा
५५	२६ १७	इन्द्राय	परमैश्वय के लिए
५६	२७ २२	इन्द्राय	परमैश्वय के लिए
५७	२७ ३७	इन्द्र	सूय के समान जगत्पालक
५८	२७ ३८	इन्द्र	शत्रुनाशक विद्वन्
५९	२८ १	इन्द्रम	विद्युत नामक अग्नि का
६०	२८ २	इन्द्रम	परमैश्वयकारक राजा को
६१	२८ ३	इन्द्रम	परमविद्या ऐश्वय सम्पन्न को
६२	२८ ४	इन्द्रम	ऐश्वय को
		इन्द्राम	परमश्वर युक्त के लिए
६३	२८ ६	इन्द्रस्य	विद्युत् का
		इन्द्रम्	परमश्वय को
६४	२८ ११	इन्द्रम्	परमैश्वय को
		इन्द्र	परमेश्वय प्रद जन
६५	२८ १२	इन्द्रम्	परमैश्वयकारक विद्वान् को
६६	२८ १३	इन्द्रम	एश्वय को
६७	२८ १६	इन्द्रम्	सूय को
६८	२८ १९	इन्द्र	ऐश्वय इच्छुक
		इन्द्रम	विद्युत को
६९	२८ १६	इन्द्रम्	ऐश्वय को
७०	२८ २०	इन्द्रम	दारिद्यविदारक को
७१	२८ २१	इन्द्रम्	विद्युत का
७२	२८ २५	इन्द्रम्	सूय को
७३	२८ ˝८	इन्द्रम्	विद्यैश्वय का
७४	२८ ३२	इन्द्रम	परमश्वय का
७५	२८ ३८	इन्द्रम	अन्नदाता को
७६	३३ १८	इन्द्र!	परमश्वययुक्त विद्वन !
७७	३३ ७५	इन्द्र!	एश्वयप्रद विद्वन् !

क्रम सख्या	अध्याय मत्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
७८	३३ २६	इन्द्र	सूर्य के समान प्रतापी सभेश
७९	३३ २७	इन्द्र !	सभेश
८०	३३ २८	इन्द्र	राजन
८१	३३ २९	इन्द्रम	परम बालयोग से शत्रुओ का विदारक
८२	३३ ४५	इन्द्रवायू	विद्युत् और पवन
८३	३३ ५६	इन्द्रवायू	विद्युत और पवन विद्याविद
८४	३३ ६१	इन्द्राग्नी	सभेश व सेनाधीश
८५	३३ ६३	इन्द्र !	परमैश्वर्ययुक्त विद्वन !
८६	३३ ६४	इन्द्रम	सूर्यम्
८७	३३ ६५	इन्द्रा	परमैश्वर्यवान राजन
८८	३३ ६६	इन्द्र	परमैश्वर्यप्रद
८९	३३ ६७	इन्द्र !	शत्रु विदारक
९०	३३ ८६	इन्द्रवाम	राजा व प्रजाजन
९१	३३ ९३	इन्द्राग्नी	अध्यापक व उपदेशक
९२	३३ ९५	इन्द्र इन्द्र !	परमश्वर्यवान सभापति राजा परमश्वर्यपद ! सभापते !
९३	३३ ९६	इन्द्राय	परमश्वर्य के लिए
९४	३४ १८	इन्द्र !	राजन्
९५	३८ ८	इन्द्राय	परमैश्वर्य के लिए दुख विदारक के लिए

(ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे 'मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रो की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

क्रम सख्या	अध्ययन-मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१	३ ४४	मरुत	विद्वान् अतिथियो को

क्रम सख्या	अध्याय-मत्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अथ
२	३ ४६	मरत	ऋत्विज
३	१५ १३	मरुत	वायु
४	१७ १	मरुन	वायुओ के तुल्य क्रिया करन म कुशल मनुष्यो ।
५	१७ ४७	मरुत	ऋत्विज विद्वान्
६	१७ ८४	मरुत	यज्ञ करने वाले विद्वान
७	१७ ८६	मरुत	यज्ञ करन वाले विद्वान्
८	२४ ४	मारुता	वायु देवता वाले
९	२५ ६	मरुताम	मनुष्यो का
१०	३४ ४८	मरुन	मरण धम वाले मनुष्या ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अथर्वेद (दयानन्द भाष्य) परोपकारिणी सभा वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, २०२४ विक्रमी।

अथर्ववेद भाष्य (सायण) सम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर, १९६०-६१।

अमरकोश (लेखक अमर सिंह) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७०।

अरविन्दोज वैदिक ग्लोसरी श्री अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी।

अष्टाध्यायी पाणिनि, प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान अजमेर।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (धूर्त स्वामी भाष्य) आरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९५५।

आर्याभिविनय (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

आर्योद्देश्य रत्न माला (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

आर्योद्देश्य रत्नमाला (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

उणादिकोश (दयानन्द भाष्य) रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़।

उणादिकोश वृत्ति (दयानन्द), रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़।

उत्तररामचरित (भवभूति) चौखम्बा संस्कृत संस्थान दिल्ली।

उपनिषदवाक्य कोश मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

ऊरु ज्योति डा० वासुदेव शरण अग्रवाल।

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५७।

ऋग्वेदप्रातिशाख्य (स० वीरेन्द्रकुमार), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ऋग्वेद भाष्य (उद्गीथ, स्कन्द स्वामी वेङ्कटमाधव और मुद्गल के भाष्य सहित) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान साधु आश्रम होशियारपुर वि० स० २०२१

ऋग्वेद भाष्य (दयानन्द) वैदिक पुस्तकालय अजमेर २०२० विक्रमी।

ऋग्वेद भाष्य (सायण), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९३७ ५१।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, १९६७।

ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य में अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन (प्रकाशनाधीन)।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास (युधिष्ठिर मीमांसक) मीरा कार्यालय, अजमेर, सं० २००६ ।
ऐतरेय आरण्यक सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता १८७६ ।
ऐतरेयालोचनम् सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता १९०६ ई० ।
ऐतरेय उपनिषद् काशी १९३८ ।
ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम, पूना, १९८७ ।
ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), निर्णय सागर प्रैस बम्बई, १९२५ ।
काठक संहिता स्वाध्याय मण्डल पारडी १९८३ ।
काण्व संहिता भाष्य (सायण) द्रष्टव्य वैदिक वाङ्मय का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १०३ ।
कात्यायन परिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र वाराणसी १९५७ वि० ।
केनोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७० ।
काशिका (वामन-जयादित्य) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी, १९६६ ।
कौशिक सूत्र (कौशिक) विलुम्फील्ड मद्रास, १९४४ । ब्लूमफील्ड जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च सोसायटी अमेरिका भाग १४ ।
कौषीतकी ब्राह्मण आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्य पत्तन १९११ ई० ।
कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् काशी १९३८ ई० ।
गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग) क्षेमकरण दास त्रिवेदी), तुकर गंज इलाहबाद १९७७, वाराणसी द्वितीय संस्करण ।
छान्दोग्योपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९७० ।
तन्त्रवार्तिक (कुमारिलभट्ट) चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी,
तिलक एण्ड दयानन्द (वर्किंग) ।
तैत्तिरीय आरण्यक (सायण भाष्य) आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, १८९७ ।
तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावली मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९७० ।
तैत्तिरीय संहिता आनन्द आश्रम पूना स्वाध्याय मण्डल पारडी
तैत्तिरीय संहिता भाष्य (भट्ट भास्कर व सायण) वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९७० ।
दयानन्द दर्शन एक अध्ययन डा० श्रीनिवास शास्त्री कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९८२ ।
दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर (सुदर्शन देव), आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली दिल्ली ।
दयानन्द वैदिक कोष (राजवीर शास्त्री) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली ।

दशकुमार चरित चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी ।

दस्यु विवेचन (वेद में आर्य दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत खण्डन), रामगोपाल शास्त्री वैद्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ ।

धातु-पाठ वैदिक यन्त्रालय, अजमेर वि॰ सं॰ १९९१ ।

निघण्टु (दुर्गभाष्य) वैदिक यन्त्रालय, अजमेर वि॰सं॰ २००५ ।

निघण्टु भाष्य (देव राज यज्वा) कलकत्ता, १९५२ ई॰ ।

निरुक्त (यास्क) रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, २०२१ विक्रमी ।

निरुक्त ऋज्वर्थ व्याख्या (दुर्गाचार्य) भण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर पूना, १९४२ ।

निरुक्त भाष्य टीका (स्कन्द स्वामी महेश्वर विरचिता)।

न्याय दर्शन (गौतम) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७० ।

न्याय मंजरी (जयन्त भट्ट) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी १९७१ ।

न्याय वार्तिक—तात्पर्य टीका (वाचस्पति मिश्र) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९२५ ।

पदमञ्जरी (हरदत्त) प्राच्य विद्या भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ।

पाणिनीय गणपाठ (सिद्धान्त कौमुदी के साथ संलग्न) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७ ।

प्रश्नोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१ ।

प्राचीन भारत का इतिहास

बृहदारण्यकोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७० ।

बृहद्देवता (शौनक), चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३३ ।

बौधायन गृह्यसूत्र सं॰ श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १९०४ ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण गीता प्रेस, गोरखपुर ।

भागवत पुराण गीता प्रेस गोरखपुर २०२१ विक्रमी ।

भ्रान्तिनिवारण (दयानन्द), रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, १९७५ ।

मत्स्य पुराण सं॰ रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, वि॰सं॰ २००३ ।

मनुस्मृति (मनु) चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी १९७४।

मनुस्मृति (कुल्लूकभट्ट टीका), चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९७० ।

महर्षि दयानन्द (प० जगन्नाथ वदालकार द्वारा अनूदित)।
महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित (प० घासी राम) आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, २०१५ वि०
महाभारत (शान्ति पर्व (व्यास) स्वाध्याय मण्डल, पारडी। तथा गीता प्रेस गोरखपुर वि०स० २०१४।
महाभाष्य (पतञ्जलि) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७७।
महाभाष्य (प्रदीपाद्योत) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७।
मीमांसा दर्शन (जैमिनि) आनन्दाश्रम ग्रन्थावली, पूना, १९७०।
मीमांसा (शाबर भाष्य) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत।
मीमांसा भाष्य (विमर्शिनी व्याख्या)।
मीमांसा सूत्र पाठ (जैमिनि) प्रेम पुस्तक भण्डार, विहारीपुर, बरेली, १९७६।
मुण्डकोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९७०।
मूल संस्कृत उद्धरण जे० मुइरकृत ओरिजिनल, संस्कृत टैक्सटस, राम कुमार कृत हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, १९७० ई।
यजुर्वेद स्वाध्याय मण्डल पारडी बलसाड। २०२६ विक्रमी।
यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), वैदिक यन्त्रालय अजमेर २०१६ वि०स०।
यजुर्वेद भाष्य विवरण ब्रह्मदत्त जिज्ञासु सम्पादित, रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ, सोनीपत।
योगदर्शन (पतञ्जलि) आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, १९७८।
योग भाष्य (व्यास) आनन्दाश्रम, पूना, १९७८।
लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती हरविलास शारदा।
वाक्य पदीय (भर्तृहरि) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७५।
वाचस्पत्यम चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।
वाजसनेयी संहिता (सं०ए वेबर) चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी १९७२।
वायु पुराण गीता प्रेस गोरखपुर।
विष्णु पुराण गीता प्रेस गोरखपुर वि०स० २००९।
वेद तथा ऋषि दयानन्द श्रीनिवास शास्त्री, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९८०।
वेद मीमांसा लक्ष्मीदत्त दीक्षित, दिल्ली १९८०।
वेद में इन्द्र (डा० जयदत्त उप्रेती) भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, १९८५।
वेद रहस्य (श्री अरविन्द), श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी।
वेद समुल्लास मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७१।

वेदस्य व्यावहारिकत्वम्, (डा० ज्योत्स्ना), चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी,

वेदान्त सूत्र (शांकर भाष्य) निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९४८ ई०।

वेदों का यथार्थ स्वरूप धर्मदेव विद्या वाचस्पति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, वि०सं० २०१०।

वेदों में इन्द्र (गुरुदत्त एवं शुचि गुप्त) शाश्वत संस्कृति परिषद, नई दिल्ली, १९८६ ई०।

वैदिक इण्डैक्स डा० राम कुमार राय (मैक्डानल एण्ड कीथ कृत) अंग्रेजी वैदिक इण्डक्स का हिन्दी अनुवाद, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी १९६२।

वैदिक कोश (डा० सूर्यकान्त), हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, १९६३।

वैदिक देव शास्त्र डा० सूर्यकान्त शास्त्री (ए०ए० मैक्डानल कृत वैदिक माइथोलोजी का हिन्दी अनुवाद) दिल्ली, १९६१ ई०।

वैदिक ज्योति, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री।

वैदिक राजनीति शास्त्र (डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा) बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सम्मेलन भवन कदम कुआँ, पटना।

वैदिक रीडर (मैक्डानल) मद्रास, १९५१।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास रमाकान्त शास्त्री चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

वैदिक व्याख्यान विवेचन डा० रामगोपाल, दिल्ली, १९७६।

वैदिक सम्पत्ति (रघुनन्दन शर्मा) वैदिक सम्पत्ति, द्वितीय सं० १९९९ प्रकाशन सेठ सूरजीवल्लभदास बम्बई।

वैदिक साहित्य रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५०।

वैदिक साहित्य और संस्कृति (बलदेव उपाध्याय) शारदा संस्थान, वाराणसी, १९८०।

वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।

वैशेषिक दर्शन (कणाद) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८०।

व्याकरण महाभाष्य (कील हार्न) भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना।

शतपथ ब्राह्मण प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, १९७०।

शाबर भाष्य (शबर स्वामी) आनन्दाश्रम, पूना, १९७६।

शांखायन आरण्यक आक्सफोर्ड दिल्ली, १९०९।

आनन्दाश्रम पूना, १९२२, बर्लिन, १९००, कलकत्ता, १८६१।

शांखायन ब्राह्मण (सं० गुलाबराय वजेशंकर) आनन्दाश्रम, पूना १९११

शुक्ल यजुर्वेद संहिता (सं० दौलत राम गौड़) चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

शुक्ल यजुर्वेद सहिता (उवट महीधर भाष्य) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
श्रीमद्भगवद् गीता गीता प्रेस गोरखपुर २०१३ विक्रमी।
श्वेताश्वतर उपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
सत्यार्थ प्रकाश (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत १६७२।
सत्याषाढ श्रौतसूत्र (सत्याषाढ) आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १६३२।
सर्वानुक्रमणी (कात्यायन) आक्सफाड प्रेस लन्दन, १८८६ ई०
संस्कृत हिन्दी कोश वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६७३।
सामवेद उत्तरार्चिक स्वाध्याय मण्डल पारडी सूरत, १६५६।
सामवेद हिन्दी भाष्य स्वाध्याय मण्डल पारडी १६५६।
साख्य शास्त्र भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६७७।
सिद्धान्त कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित) मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १६६६।
सत्यन्नव्यामन्तव्य प्रकाश (दयानन्द) द्रष्टव्य सत्यार्थ प्रकाश।
गुरुकुल पत्रिका (मासिक), हरिद्वार मार्च अप्रैल, १६६६, ई०, १६७३ ई० मई, १६७४ ई०।
धर्मयुग, २८ जुलाई, १६८५।
वेदवाणी, (वदिक वृष्टि विज्ञान) मार्च, १६७२ व वर्ष २० अंक ६ रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।

ENGLISH BOOKS

A Comparative Analytical Study of the Vedas (Ed Dr Raghuvir) Nag Publishers, Jawahar Nagar Delhi

An Encyclopaedia of Indian Literature Ganga Ram Gar Mittal Publishers Delhi 1982

Dayananda and the Vedas Dr Parmananda Indovision Pub pvt. Ltd Ghaziabad

Religion and philosophy of the Vada (A B Keith) Hardward Oriental Series No 32 33 1925

Rgveda Samhita (H H Wilson) Nag Publishers Delhi, 1977

Sanskrit English Dictionary V S Apte Motilal Banarsidass Delhi 1976

Sanskrit English Dictionary Monier Williams Motilal Banarsidass, Delhi, 1976

The Concept of God in Vedas (D D Mehta) The Academy of Vedic Researches New Delhi

The Sacred Books of the East Motilal Banarsidass, Delhi,

The Vedas F Max Muller, Susil Gupta Calcutta, 1656

The Vedic Gods as Figures of Biology V G Rele, Vedic India, Macdonell & Keith

Vedic India (Louis Renou), Calcutta 1957

Vedic India (Legozin N A), Delhi 1971

Vedic Mythology Macdonell Varanasi 1963

The Religion of Rgveda (Griswold, H D), Varanasi 1971